# गुजरात के गौरव

# गुजरात के गौरव

## भाग २

के. एम. मुन्शी

रजनी साहित्य सदन
२६६, चावड़ी बाजार, दिल्ली
प्रमुख वितरक
नवयुग प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक
रजनी साहित्य सदन

मूल्य पाँच रुपए

नूतन प्रेस दिल्ली

# दूसरा भाग

अक्षयतृतीया की सांझ थी। भृगुकच्छ में गंगानाथ का विशाल मेला हो रहा था। कई दिन से दूर गाँव-गाँव से लोग इस उत्सव में भाग लेने के लिये चले आ रहे थे। किसी भी अक्षयतृतीया पर इतने अधिक लोग एक साथ एकत्रित हुये हों ऐसा किसी को याद नहीं आता था।

रेवा स्नान का पुण्य प्राप्त करने के बहाने, लाट की राजधानी में घूम आने के बहाने, सैर तफरीह करने के बहाने, व्यापार वृद्धि करने या 'आढ़त' मात्र-निश्चित करने के बहाने, देव-स्थानों का दर्शन करने के बहाने, या साल-भर के लिये अनाज भर ले जाने के विचार से—ऐसे ही अनेकों कारणों से लोग अक्षयतृतीया पर लाट में एकत्रित होते थे; ऐसे समय पर रेवास्नान का माहात्मय भी बढ़ जाता था; और गाँव-गाँव से ब्राह्मणों के संघ श्रद्धा प्राप्त करने या श्रद्धा का प्रचार करने आ पहुँचते थे। तीन या चार दिन के लिये यात्री उत्सव में रंग जाते थे; और प्रत्येक प्रकार के रास-रंग में स्वच्छंद होकर निमग्न हो जाते थे।

रेवा के विशाल तट पर फूस की काम चलाऊ कुटिया बनाकर लोग ठहरे थे; सम्पूर्ण गाँव में चींटियों के समान लोग विचरण कर रहे थे। रात-दिन कीर्तन भजन होते थे। मंदिरों और घाटों पर लोगों की भीड़ लगी रहती थी।

इस वर्ष मेले में दो वस्तुऐं असाधारण थीं। मेले में आने वाले स्त्री बच्चों को बहुत कम ला रहे थे; और इतने बड़े मेले में विदेशियों की दुकानें इनी-गिनी ही थीं। लूट लिये जाने की अफवाह भी कुछ-कुछ उड़ चुकी थी, किन्तु ऐसी अफवाह पर अधिक विश्वास नहीं किया जा रहा था। लोगों में इतना अधिक उत्साह था, और नगर के रसिक लोग इस अवसर पर आमोद-प्रमोद में इतने व्यस्त हो गये थे कि कोई भी यह नहीं देख सका कि इस मेले में कुछ-न-कुछ असाधारणता अवश्य है।

अक्षयतृतीया की सांझ को सरिता तीर पर लोगों की विचित्र भीड़ थी। 'गंगानाथ की जय' निनादों के बीच, कितनी ही भजनमंडलियाँ कीर्तन कर रही थी। कुछ रसिक लोग चक्राकार बैठकर इधर-उधर की बातें कर रहे थे, कई सरिता मे जलते हुये दीपक छोड़ने की तैयारी में लगे हुये थे, आतिशबाजी छोड़ने के लिये अँधकार की प्रतीक्षा की जा रही थी; धीवरो से सरिता मे घूमने का मोल-भाव किया जा रहा था।

फिर भी न जाने क्यों कई विदेशी मौन होकर चुपचाप इधर-उधर घूम रहे थे। ज्यों ही अधेरा होने लगा त्यो ही वे शीघ्र गति से छिप-छिप कर गलियो में छुपने लगे।

पट्टणी सैनिक भी इस पर्व का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिये गले में हार डाले, हाथ में छड़ी लिये अन्य व्यक्तियो के साथ मिल-जुल कर आनन्द से घूम रहे थे।

रात होने आई। नगर में दीप मालिका जैसा प्रकाश हो गया।

इस मेले का मुख्य अग गगानाथ महादेव और नर्मदा की मूर्ति की आरती थे। महादेव की आरती मे पुरुष जाते थे और नर्मदा की आरती में केवल स्त्रियाँ जाती थी। गगानाथ का प्राचीन मंदिर छोटा परन्तु सुन्दर था। मध्य द्वार छोटा होने के कारण उसके अंदर के अंधेरे स्थान मे विशाल शिवलिंग बड़ी कठिनाई से दिखाई पड़ता था। इस समय लिंग पर रूपहरी झालर झूल रही थी, और चार दीपकों का अस्थिर और मंद प्रकाश अदर के अंधकार को भेद रहा था। तीन ब्राह्मण सिर नीचा किए रुद्री जप रहे थे।

बाहर मंडप मे वेदी के निकट दो दीपकवृक्षों में जलते हुये अनेक दीपक मामूली सा प्रकाश करते हुये वातावरण को पूज्यभाव उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान कर रहे थे। ऐसे वातावरण मे रह-रहकर भक्त जन सजलनयन होकर पतित पावनी गंगा के स्वामी के दर्शन करके पापमुक्त हो रहे थे।

रात होते ही दर्शनार्थियों को अन्दर आने से रोक दिया गया।

जितने मण्डप में शेष थे बस वह ही खड़े रहे। देखते-ही-देखते मन्दिर के सामने दर्शनार्थियों और मेले के सैलनिओं का झुण्ड जम गया। आरती का समय हो गया था और नगर के अग्रगण्य नागरिक आ गए थे। नगरसेठ तेजपाल और उसके लाट तथा अन्य नगरो से आये हुए अतिथि, पट्टणी सेना का नायक भटराज माधव और लाट का सेनानायक रुद्रमल्ल, कोठरी भामा सेठ और दो-चार अग्र-गण्य नागरिक आदि सभी आ गए थे।

गंगनाथ महादेव की अक्षयतृतीया की आरती पुरातनकाल से बहुत महत्वपूर्ण एवं पुनीत अवसर माना जाता था। लाट के स्वतन्त्र राजा सभासदो सहित इस अवसर पर उपस्थित रहते थे और आरती समाप्त होने के पश्चात् नगर मे राजा की 'सवारी' निकलती थी। लाट की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाने के पश्चात् भी पट्टणी सत्ताधीशों ने इस आरती के महात्म्य को ज्यो-का-त्यो बना रखा था। केवल आरती के पश्चात् सवारी निकालने की प्रथा उन्होने बन्द कर दी थी।

सभी अग्रगण्य नागरिक आ गए थे किन्तु दुर्गपाल आँबड़ महेता नही आए थे। इन तीन दिनों में मेले का सम्पूर्ण उत्साह उनमे भी भर गया था और वह भी आमोद-प्रमोद से निमग्न हो गए थे। माधव भी रसिक व्यक्ति था और उसने भी जी भर कर रस लिया था किन्तु दण्डनायक और दुर्गपाल दोनो की अनुपस्थिति मे पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि स्वरूप कोई-न-कोई तो आरती में होना ही चाहिए यह सोचकर वह आ गया था। प्रात:काल उसने आबड महेता से आरती के विषय में पूछा था उस समय उन्होने आरती उपस्थित रहने की अनावश्यकता जताते हुए देवभद्र सूरि के उपाश्रय मे उपस्थित रहने की घोर आवश्यकता के विषय में माधव को समझाया था। माधव को यह अच्छा नहीं लगा, किन्तु दुर्गपाल और महेता के पुत्र को उपदेश देना उचित न समझा। तेजपाल सेठ ने अपने भावी जामाता के विषय में पूछताछ करवाई किन्तु कुछ पता न लगने के कारण उन्होने इसकी

चर्चा ही छोड देना उचित समझा ।

किसी को आरती की तैयारी न करते देख तेजपाल ने मध्य द्वार में गर्दन डालकर कहा—'क्यों गौढ जी कितना विलम्ब है ?'

एक अधेड़-वय के ब्राह्मण ने गर्दन उठाई, आज तो पिता जी आने वाले हैं ।

तेजपाल सेठ की आँखे तनिक चौडी हो गई । जब से लाट की स्वतन्त्रता नष्ट हुई तब से वृद्ध रोजगार ने किसी भी समारोह मे भाग लेना बन्द कर दिया था । आज उसकी आरती करने की इच्छा से वह तनिक शंकित हो उठा । उसने चारो ओर देखा । वहाँ कुछ विदेशी व्यक्ति थे और कुछ नगर के अग्रगण्य नागरी थे । उसे शंका निरर्थक लगी ।

इतने मे पौत्र का सहारा लेकर चलता हुआ, लगभग अन्धा राजगोर आया । सभी ने स्वागत किया । जय-जयकार को स्वीकार करते हुए वह अन्दर गया । उसके पुत्र ने पूछा, 'पिता जी आरती आरम्भ करूँ ?'

'हाँ ! संध्या हो गई है । किन्तु—किन्तु···।' वह चारो ओर देखने लगा ।

उसका पुत्र दीपवृक्ष प्रज्वलित करने लगा । बाहर लोग बात करते करते रुक गए । राजगोर ने आरती लेने के लिए हाथ बढाया ही था कि द्वार के एक गम्भीर और प्रौढ स्वर सुनाई पडा, 'गुरु ! तनिक रुकिए । स्वामी महाराज ब्रह्मानन्द सरस्वती को आ जाने दीजिए ।'

सबको ऐसा लना मानो मन्दिर घूम रहा हो । चकित होकर सबने द्वार की ओर देखा । रेवापाल द्वार मे खडा हुआ था । उसके गम्भीर मुख पर अमानवीय गांभीर्य था उसकी आँखो मे गहन आवेश था । ब्रह्मानन्द सरस्वती— पूर्वाश्रम के ध्रुवसेन सेनापति—नष्ट हुए लाट की अमर महत्ता की सजीव मूर्ति-इस समय यहाँ ? तेजपाल सेठ के मस्तिष्क में कुछ प्रकाश-किरण सी चमकीं । उन्होने घबरा कर अपने पुत्र की भयंकर मुख-मुद्रा की ओर देखा । माधव भटराज का कपाल

आकुंचित हो गया। उसे लगा वह स्वयं वहां न आया होता तो अच्छा होता।

ब्रह्मानन्द सरस्वती ने हाथ में दण्ड लेकर प्रवेश किया। सबने विशेष सम्मान से उनके लिए मार्ग छोड़ दिया। मन्दिर के वातावरण में पूज्यभाव और भी प्रबल हो गया। ब्रह्मानन्द धीरे-धीरे चलते हुए वेदी के निकट पहुँचकर तेजपाल सेठ के पास ही बैठ गए। रेवापाल—काल-भैरव के समान भयानक और अचल—द्वार के सामने खड़ा रहा।

स्वामी जी के आने से बाहर खड़े लोगों में कुछ हलचल मची। इस धमाचौकड़ी का लाभ उठाकर एक नवयुवक योद्धा मण्डप के द्वार तक आ गया। यह था सोमेश्वर—काक का शिष्य और नए गढ़ का गढ़रक्षक, आरती में विलम्ब से पहुँचने के डर से दौड़ा-दौड़ा आया था। वह अब द्वार के अन्दर आगया था। उसने रेवापाल को देखा। उसने अन्दर ब्रह्मानन्द सरस्वती को वेदी की ओर जाते हुए देखा। शिवलिंग के सामने वृद्ध राजगोर आरती की तैयारी करते हुए देखा और पिछले दिनों में देखी हुई कई अपरिचित वस्तुओं और सुनी हुई कई अफवाहों का स्मरण करने लगा। उसकी आँखें चमक उठीं। वह कुछ-कुछ समझ रहा था। वह अन्दर घुसकर माधव के निकट जाने लगा। रेवापाल ने हाथ लम्बा करके द्वार खोल दिया।

'सोमेश्वर आगे स्थान नहीं है।' सत्ता-मय स्वर में रेवापाल बोला।

सोमेश्वर ने क्रुद्ध होकर रेवापाल की ओर देखा। उसने रेवापाल की आँखों में अग्नि समान तेज देखा। वह रेवापाल का स्वभाव जानता था। शंका के कारण शीघ्रता करके झगड़ा मचाने में उसे कोई तथ्य नहीं दिखाई पड़ा। वह रेवापाल के पीछे खड़ा रहा। सबको वातावरण रहस्यकय और क्षुब्ध सा लगने लगा। राजगोर ने कांपते से हाथों से आरती ली और थर-थर कांपते हुए खड़े हुए। खड़े होते समय पांव

फिसल गया और आरती हाथ से गिर पड़ी···।

इसके पश्चात् क्या हुआ कोई नहीं समझ पाया। वातावरण भयंकर स्वप्न के समान हो गया। मन्त्र पढ़ने वाले ब्राह्मणों ने फूँक मारकर दीपक बुझा दिए। रेवापाल ने वेग से अगला द्वार बन्द कर दिया। सम्पूर्ण मंडप में प्रगाढ़ अंधकार से भर गया। कहीं लोगों की आवाज़—पगध्वनि—कहीं भाग-दौड़—एक-दो चीत्कार और धक्कम-धक्का कीऔर रेवापाल का प्रेतलोक में प्रतिध्वनि के समान अपार्थिव स्वर सुनाई पड़ा—'राजगुरु! स्वतन्त्र लाट की ओर से अब गंगनाथ भगवान् की पूजा करो।'

ब्राह्मणों ने पुनः दीपक जलाए। मण्डप में एकत्रित हुए नागरिकों ने आँखें खोलीं। वहाँ खड़े हुओं में से अधिकतरों के हाथ में नंगी तलवारें थीं और तेजपाल, माधव, रुद्रमल और भामासेठ—पाटण की सत्ता के प्रतिनिधि—वहाँ से अन्तर्धान हो गये थे। वेदी के सम्मुख ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हो गए, लाटवासियो घबराने की नहीं खुशी की बात है! लाट आज स्वतन्त्र हो गया है। राजगुरु, आरती प्रारम्भ करो। रेवापाल! मैं कल जोमिया उतार दूँगा।'

'गुरुदेव की जय?' गंगानथ भगवान की जय!' उत्साह से रेवापाल ने नारा लगाया।

'गंगनाथ भगवान की जय!' वहाँ खड़े सब लोग बोल उठे।

राजगुरु ने खड़े होकर आरती प्रारम्भ की। रेवापाल बाहर निकला। गंगानाथ की छत पर जाकर उसने एक अग्नि चक्री लेकर छोड़ी। 'चक्री' उड़कर ऊपर गई और फट पड़ी। सम्पूर्ण नदी-तीर पर उसका प्रतिबिम्ब पड़ा। नीचे नदी-तीर पर सहस्त्रों व्यक्ति आनन्द कर रहे थे। उन्होंने 'चक्री' को फटते हुए देखा।

सोमेश्वर यह सब देखने के लिए खड़ा नहीं रहा। उसने राजगुरु को जान-बूझ कर आरती बुझाते देखा, ब्राह्मणों को दीपक बुझाते देखा, और रेवापाल को द्वार बन्द करने के लिए हाथ बढ़ाते देखा। वह सब

समझ गया। बलपूर्वक मार्ग बनाते हुए वह साम्बा बृहस्पति के बाड़े की ओर भागा।

नदी-तीर पर आनन्द मनाते पट्टणी सैनिक रेवापाल द्वारा छोड़ी हुई 'चक्री' देखकर हँसने लगे। किन्तु हास्य पूरा होने के पहले ही दो हजार सशस्त्र व्यक्ति उन पर टूट पड़े और कुछ क्षणों में हाथ बाँधकर उन्हें ले चले। मेले में हाहाकार मच गया। लोगों में भगदड़ मच गई। नगर में द्वार बन्द होने प्रारम्भ हो गए।

'चक्री' उड़ाकर रेवापाल छत पर खड़ा रहा। फिर वहां एकत्रित हुए व्यक्तियों से कहा, 'लाटवासियो! आज हम पशु न रहकर फिर मनुष्य हो गए हैं। आज हमने पट्टणी सेना को भृगुकच्छ से उखाड़ फेंका है। इस समय खेटकपुर वटप्रद जम्बूसर, अंकलेश्वर और नांदोद, मांडवी और कामरेज—सब स्थानों पर उनकी सेना का विनाश प्रारम्भ हो गया होगा।

बन्धुओ! लाट की गुलामी की शृंखलाएं आज टूट गई हैं—कल प्रातःकाल स्वर्ण उदय होगा। हाथों से निकला सम्पूर्ण लाट कल प्रातः काल तुम्हारे हाथों में होगा। गुरुदेव ध्रुवसेन सेनापति कल जोगिया उतार देंगे और लाट पर उनका अधिकार होगा। जाओ आनन्द करो और बोलो—गंगानाथ भगवान की जय!'

वहाँ खड़े हुए कई व्यक्ति कथन का अर्थ समझे। कई न समझते हुए भी खड़े रहे। परन्तु सबने दुहराया—'गंगानाथ महादेव की जय! ध्रुव-सेन सेनापति की जय!'

आनन्दमग्न भृगुकच्छ में घबराहट फैल गई। लोग बिना समझे-बूझे भागने लगे। उनका उत्साह त्रास में परिवर्तित हो गया। कई दुकान-दारों ने दीपक बुझा-बुझाकर दूकाने बन्द करनी आरम्भ कर दी। यात्री कुछ समझ नहीं सके। किसी के बच्चे खो गये, किसी ने माँ-बाप खो दिये, कोई समझ नहीं पाया कि कहाँ जायँ। किसी ने कहा पट्टणी मार डाले गये, किसी ने सुना कि पट्टणियों ने मारकाट आरम्भ कर दी है।

कसी ने 'ध्रुवसेन सेनापति की जय' सुनी, किसी को विश्वास हो गया कि बेचारे ध्रुवसेन सेनापति परलोकवासी हो गये। प्रत्येक व्यक्ति भागने लगा, प्रत्येक का मन कांपने लगा। सब अपने घर या सुरक्षित स्थान का ओर भागे।

थोड़ी देर में नगर में सशस्त्र व्यक्ति चक्कर काटने लगे और पट्टणी सत्ताधीशों के घरों की तलाशी लेने लगे। जहाँ पट्टणी पगड़ी पहने किसी को देखा उसे बन्दी बनाना आरम्भ किया।

तीन चार घड़ी पश्चात् कुछ मनुष्यों के साथ रेवापाल गंगानाथ के मन्दिर से बाहर निकला और घोड़े पर चढ़कर नगर का निरीक्षण करने के लिये चल दिया।

## २

मृगुकच्छ में नये दुर्गपाल आंबड़ महेता ने अक्षयतृतीया के उत्सव के दिन पूरा-पूरा आनन्द लेने का निश्चय किया था। प्रातःकाल जब जी करता उठता और शरीर पर उबटन करवाने के पश्चात् स्नान करके पालकी में बैठकर स.म्बा बृहस्पति के बाड़े में जाकर दरबार लगाता था। स्थान-स्थान से आये हुये निमन्त्रणों को स्वीकार करने में और माधव नागर के संग मेला घूमने में दिन व्यतीत हो जाता था। संध्या को सरिता में नौका विहार होता और इच्छा होने पर सरिता में दीपक विसर्जन का काम भी हँसते-हँसते अपने ही हाथों करता।

आंबड़ महेता के हृदय में अविमुक्तेश्वर के मन्दिर में आरती के समय दर्शन करने के लिये जाने में विचित्र श्रद्धा जाग पड़ने के कारण सरिता से वह वहां जाता, और घूमते-फिरते रात्रि को तेजपाल नगर-

सेठ के यहां सोने के लिये पहुंच जाता। मार्ग में चलते हुये व्यक्तियों का उपहास उड़ाना, सुसज्जित दूकानों में चले जाना, जहाँ भजन कीर्तन हो रहा हो वहाँ सुनने के लिये खड़े हो जाना, रात को द्वीप पर जाकर आतिशबाजी छोड़ना, स्वच्छंद होकर घूमना और हंसना—नवीन दुर्गपाल का यह आचरण अब शिष्टाचार का रूप लेने लगा। उसकी वेशभूषा की नवीनता, उसकी पगड़ी का रंग, उसके चलने का ढंग, उसकी निःसीम उदारता, इन सब में कुछ ऐसी मोहक निर्लज्जता थी कि भृगुकच्छ के इने-गिने रसिकों ने पाटन और खंभात के अग्रगण्य रसिक के सामने सिर झुका दिया और उसके रहन-सहन का अनुकरण करने पर लाट की रसिकता में बड़े वेग से पटणीत्व का समावेश होने लगा। गम्भीर, वयोवृद्ध और शुष्क नागरिकों ने परम्परा से चली आयी प्रतिष्ठा की भावना को इस प्रकार भँग होते देखकर निःश्वासें लेना आरम्भ कर दिया था।

नेरा तोतला अब दुर्गपाल का अनुचर बन गया था। उसका हसता हुआ मुख और हँसी छूट जाय वैसा शरीर दुर्गपाल की रसिकता में अभिवृद्धि करते थे।

आँबड़ महेता मेले का आनन्द लेकर दिन में दो बार मंजरी के घर जाता। किन्तु विद्वता और संस्कार की निरन्तर सेवा में परिपक्व बनी हुई मंजरी की रसिकता और पति-वियोग से हतोत्साह हुई उसकी रसवृत्ति को आम्रभट की यह रसिकता दुःसह हो उठी थीं। नूतन दुर्गपाल को यह मनोदशा परखने जितना अवकाश नहीं था। अक्षयतृतीया के दिन भी आँबड़ महेता अपने पूरे रंग में था। उसकी विशेषतायें अवश्यकता से अधिक ध्यान आकर्षित कर रही थीं। दुर्गपाल के उदाहरण से लाट के अन्य युवकों को भारी प्रेरणा मिली।

आँबड़ ने प्रातःकाल नेरा को बुलाया। नेरा नूतन दुर्गपाल का विश्वासपात्र अनुचर और सलाहकार जो हो गया था।

'क्यों रे नेरा ! क्या आज ?'

'ब...ब...बापू ! सं...संध्या' नेरा ने स्वर धीमा करके कहा, 'को दे ..दे...देवी रे ... रेवा जी की आरती में जायंगी । आ...अ....आप तो गं...गंगानाथ की आरती में ज...ज...जायंगे न ?'

आम्रभट तनिक कुढ़ गया ।

'मैं गंगानाथ की आरती में नहीं जाऊँगा, किन्तु रेवाजी की आरती में केवल स्त्रियाँ ही जायंगी, वहाँ मैं कैसे जा सकता हूँ ?'

नेरा के मुख पर विशाल हास्य फैल गया । 'न...नेरा पर विश्वास रखिये मेरे अन्नदाता ! प...पड़ोस में एक घ...घ...घर है । वहाँ से स...स...सब कुछ दिखाई देता है ।'

'किन्तु घर के लोग भी तो जान जायंगे ?'

'कै...कै ..कैसी बात करते हैं मेरे स...स्वामी !' नेरा ने थोड़े ही दिनों में आंबड़ महेता के साथ मित्रता कर ली थी, 'पूरे घ...घ...घर में मात्र हम दो ही तो होंगे ।'

'वाह, नेराभट ।' आंबड़ ने संतुष्ट होकर कहा ।

'ब...ब...बापू को घणीखम्मा' कहकर नेरा ने झुककर प्रणाम किया ।

आंबड़ ने बड़ी चतुराई से तेजपाल सेठ को अलग किया, माधव को चकमा दिया और संध्या होने पर नेरा को साथ लेकर पैदल ही देवभद्र सूरि के उपाश्रय की ओर चला । मेले का दिन था । अतः दुर्गपाल को इस प्रकार जाते देखकर किसी को विस्मय नहीं हुआ । उपाश्रय के निकट एक निर्जन पथ था । वहीं दोनों गली में मुड़ गए । आम्रभट ने अपनी सुसज्जित वेशभूषा उतार कर नितांत सादी वेशभूषा से पहन ली । दोनों जल्दी-जल्दी चलकर फिर नदी के किनारे आकर नर्मदा के मन्दिर के निकट आगए । मन्दिर के सन्मुख एक छोटा-सा घर था । नेरा ने कुंजी निकाल कर ताला खोला । दोनों ने अन्दर जाकर द्वार बन्द कर लिया । द्वार के निकट ही एक खिड़की थी नेरा ने उसे खोल दिया और उसी के निकट एक गद्दी-तकिया रख दिया ।

खिड़की में से रेवा जी का मन्दिर दिखाई पड़ता था। यह मंदिर छोटा अवश्य किन्तु सुघड़ था और मूर्ति भी बहुत पुरानी थी। गत वर्ष ही त्रिभुवनपाल दडनायक ने पाटण से कारागर बुलवाकर उसका पुनरुद्धार करवाया था। उसका सुन्दर शिखर ऐसा लग रहा था मानो वह रूद्रदुहित नर्मदा की लावण्यमय देह की साकार प्रतिमा हो। मंदिर का मंडप इतना छोटा था कि ऐसे अवसर पर दर्शन करने के लिए आने वालों को बाहर के चबूतरे पर ही खड़ा रहना पड़ता था।

लगभग पच्चीस-एक स्त्रियाँ आ पहुँची थीं, और धीमे-धीमे आ ही रही थीं। आँबड़ ने तकिए पर सिर रखकर आगन्तुक स्त्रियों को देखना प्रारम्भ किया। वहाँ निर्धन स्त्रियाँ भी थीं और आभूषणों के भार से झुकी हुई धनाढ्य स्त्रियां भी थीं धनवानों की कुलवधुओं में होड़ भी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनमें एक-दूसरे को चका-चौंध करने के प्रयत्न भी चल रहे थे। निर्धन से धनी बनी स्त्रियों का आडम्बर और परम्परा से धनी और संस्कारशील स्त्रियों के आभूषण पहनने की सरलता, निर्धन होते हुए भी धनवान समझे जाने के लिए व्याकुल स्त्रियों का ठाठ और धन रहते हुए भी सादगी से रहने वाली बुद्धिमान् स्त्रियों की छटा, सभी छटा वहाँ दिखाई पड़ रही थी। कई वृद्ध होते हुए भी तरुणियों में गिनी जाने के लिए व्यग्र थीं और कई तरुण होते हुए भी वयभार से दबी हुई और बुद्धिमान होने का स्वांग भरती थीं, कितनी ही रूपगर्विताओं की भंगिमा स्पष्ट दिखाई पड़ती थी और कई लजीली युवतियां नीचा मुँह किए अपना रूप छिपाने का निष्फल प्रयत्न में लीन थीं। एक बहुत ही मोटी स्त्री, भारी भरकम वेशभूषायें कर, बहुत शीघ्रता से चलने का असफल प्रयत्न करती हुई चली आ रही थी। दो सुन्दर बहिनें, एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर पवन में झूमती दो लताओं के समान चलकर वहाँ पहुँचीं। छोटी बच्चियों का भी एक समूह कूदता, किल्लोलें करता आ पहुँचा। आँबड़ महेता मंजरी की प्रतीक्षा में अनुभवी रसिक की सूक्ष्मता से यह सब

देख रहा था ।

नगरसेठ के घर से भी स्त्रियाँ आ गईं । रेवापाल की स्त्री बेनां आगे आई । आंबड़ महेता इस स्त्री को देखते ही उकता जाता था और उसके संसर्ग से कैसे दूर रहे इसकी युक्ति भी कभी की सोच ली थी । उसके पीछे उसकी सोलह वर्ष की भावी पत्नी उछलती-कूदती आई । आंबड़ विचार करने लगा कि उसके साथ जीवन भली प्रकार व्यतीत होगा या नहीं—उसका चित्त व्यग्र हो उठा । फिर तीन स्त्रियाँ और आईं । उसका हृदय उछल पड़ा ।

तीनों में सबसे आगेवाली देवदार के समान लम्बी और सुघड़ थी । जहाँ वह डग रखती वहाँ छटा छा जाती और जिधर वह घूमती उधर रस झरने लगता था । राजहंसिनी जैसे तैर कर आती है वैसे ही वह आ रही थी—धीमी, स्वाभाविक किन्तु गर्व भरी गति से । उसके मुख पर तेजोमय हास्य दीप्त था । उसका स्वर बात करती हुई अन्य स्त्रियों की किलकारियों से अलग वीणा के कोमल स्वर के समान सुनाई पड़ता था । मंजरी सादे और श्वेत वस्त्र धारण किए हुए थी । उसके अंग पर नाम मात्र के आभूषण थे । इस अवसर के लिए उसने थोड़ा-सा भी श्रृंगार किया हो ऐसा नहीं लगा । फिर, उसकी सादगी की विशिष्टता में कुछ निराला ही आकर्षण था ।

मंजरी आई—निरभिमान रूप से सबको चकाचौंध करती हुई । स्त्रियों में शान्ति छा गई । आंबड़ महेता के हृदय में झंझावात उठा ।

वह और उसकी सखियाँ अपनी परिचित स्त्रियों के साथ हंसती-बोलती हुई आईं ।

'कैसी हो बेनां भाभी ?' मंजरी पूछ रही थी ।'

'अच्छी हूँ ।'

'और प्राणकुंअर तू···?' आंबड़ की भावी पत्नी से मंजरी ने पूछा ।

'मंजरी दीदी ! आज उत्सव के दिन इस प्रकार सादगी क्यों ?'

वह मंजरी के श्वेत वस्त्रों और निराभूषण अंगों की ओर देखकर बाली। •

मंजरी मुस्कराई। मुस्कराहट में ग्लानि व समावेश था 'बहन ! यह समझने में अभी तुझे समय लगेगा।'

'मंजरी देवी ! आपके बिना तो सब अंधेरा था।' एक वृद्ध स्त्री ने कहा। आँबड़ ने यथा स्थान बैठे मौन स्वीकृति दी।

'देवी !' पुजारी आगे आया,' देवी ! अब आप आरती प्रारम्भ करिए। आपके बिना कोई आगे बढ़ती ही नहीं।'

हाँ देवी !' मोटे वलय वाली स्त्री का मोटा और कठोर स्वर गूँजा, 'आपकेसिवा जनता ही कौन है ?' आँबड़ के हृदय में गर्व छलक उठा।

'अच्छा, मैं जो कुछ बोलूँगी उसे तुम दुहराओगी न ?'

'नहीं, देवी ! आप ही प्रारम्भ करिए। हम फिर कुछ बोलेंगी।' दो-तीन स्त्रियों ने आग्रह किया।

बेनां को यह लोकप्रियता अच्छी न लगी, यह उसके मुख से स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अच्छा ठहरो,' मंजरी ने हंसकर कहा, 'मुझे पुराण की एक बहुत प्राचीन प्रार्थना याद है वही सुनाती हूं, बस ?'

'हाँ—हाँ' सब एक साथ बोल उठीं। छोटी बच्चियां तालियाँ बजाने लगीं, हाँ, देवी, हाँ, देवी।' उत्तर में मँजरी स्नेह से मुस्करा उठी।

पल-भर वह मौन रही और फिर गला ठीक किया। आंबड़ मेहता हृदय में जाने संगीत के स्वर बजने लगे !

वह मंद प्रकाश में स्वर्ग से उतरी अप्सरा के समान मंजरी के अनुपम सौंदर्य को देखने लगा। इन सुन्दरियों के समूह में भी ऐसा लगा मानो उसका मुख किसी अपूर्व तेज से प्रकाशमान हो। उसके विशाल परन्तु चंचल नेत्रों में अन्तर में दबाये हुए भावों की तनिक खिन्नता-भरी छाया थी। वह इस प्रकार झुकी मानो अपने होठों की अकल्पित रसमयता डालने को तत्पर हुइ हो। उसकी लम्बी ग्रीवा की

मोहक भंगिमा उसने मन में अन-देखे स्वप्न जाग्रत कर रही थी। किसी चतुर शिल्पी द्वारा निर्मित अपूर्व मूर्ति को देखकर विलासवृत्ति नष्ट होकर निर्मलता या सौंदर्य-भक्ति जाग पड़ती है, आंबड़ की ऐसी ही दशा थी। आंबड रसिक था परन्तु उसकी प्रकृति जड़ नहीं हो गई थी। उसके रसिक स्वभाव में सौंदर्य परखने की, सौंदर्य की पूजा करने की शक्ति समाई हुई थी। विलासी जीवन में यह शक्ति कम हो गई थी, किन्तु जब मंजरी दूर और दुष्प्राप्य लगी और जब उसने देखा कि उसके दर्शन और उसकी प्रशंसा पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा तो उसकी यह शक्ति सतेज हो उठी थी।

वह भक्त जैसे आत्मसमर्पण से उस सुन्दरी को देख रहा था। अपने बड़प्पन की बात वह भूलगया। उसकी लालसा नष्ट हो गई। उसके हृदय के अशुद्ध भाव दब गए। वह तो इतना ही सोच रहा था कि जिसे वह सौंदर्य और छटा मानता था, लावण्य और गौरव मानता था उन सब लक्षणों की विशुद्ध और अपूर्व प्रतिमा इस समय उसके सामने खड़ी हुई थी। अर्घ्य अर्पण करते-करते उसका मन, विनम्र होकर प्रणाम करने लगा।

## ३

बसंतागमन के पहले जैसे कोयल कुहुक उठती है वैसे ही मंजरी कुहुक उठी। उसके स्वरों ने आँबड़ के हृदय में जाने किन-किन प्रतिध्वनियों को अंकुरित कर दिया। उत्साह, आकांक्षा, विजय सुख, प्रेम—सभी भाव जागृत हो उठे। उसने अपनें वक्षःस्थल पर हाथ रख कर दबा दिया; और ऐसे पड़ गया मानो मूर्छित हो गया हो।

आँबड़ के हृदय में उठते हुए भावों से अनभिज्ञ मंजरी ने आरती श्लोक आरम्भ किए ।

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता ।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वेरेण महात्मना ।
कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्मांक च विशेषतः ।।
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी ।
रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया ।।
सर्वपापहरा नित्यं-सर्व देवनमस्कृता ।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ।।
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनी ।
नमस्ते पाप शमनि नमो देवि वरानने ।।
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते नमोऽस्तु ते शंकरदेहिनःसृते ।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रिपावने ।।

स्वर का जादू भंग हुआ । वहाँ फैली शांति में बाधा उपस्थित हुई दो आदमी दौड़ते-दौड़ते और चीत्कार करने लगे । 'जेली—जेली—' सब विस्मित हो गईं । कुछ ने उनकी ओर देखा । मंजीर गाती-गाती रुक गई । पुजारी आरती करता-करता अटक गया ।

सब अपने-अपने घर जाओ । देखती क्या हो ? गंगानाथ में विपल्व हो गया है । ध्रुवसेन ने जोगिया उतार दिया है—बहुत से लोग लहू-लुहान हो गए हैं—भागो । जेली की माँ—' कहकर वह जेली और उसकी माँ को लेकर वहाँ से चलता बना ।

तीन-चार स्त्रियों ने दूसरे मनुष्य को घेर लिया और उसके साथ जल्दी-जल्दी चलने लगीं । सब घबराकर एक दूसरे की ओर देखने लगीं । नदी तीर से गड़बड़ की स्पष्ठ आवाजें आ रही थीं । दूर से कुछ चीत्कारें भी सुनाई पड़ रहीं थीं । कुछ स्त्रियों के घर निकट थे अतः वह अकेली ही चल दीं । मंजरी ने गर्व से चारों ओर देखा । व्याकुल हिरणी

की भाँति सभी स्त्रियाँ भयाकुल आंखों से चारों ओर देख रही थीं।

'बहनों, घबराओ मत। मुझे तो गप्प मालूम होती है। हमें कौन छेड़ सकता है।

'ओ देवी—देवी—मंजरी देवी चीत्कार करता हुआ मणिभद्र हाँपता-हाँपता आया। उसके कन्धे पर मंजरी की पुत्री महाश्वेता थी और काँख में मंजरी का पुत्र वासरि। उसकी आँखें भय से फटी हुई थीं।

मंजरी का मुख कुछ उतर गया। 'मणिभद्र ! क्या है ?'

देवी ! देवी ! हो न ? रेवापाल ने सब पट्टणियों को मार डाला। नगर में लूट-पाट मची हुई है। अपना घर लूटने आये थे। मैं छत पर होकर इन दो को ले आया हूँ। देव, चलिए भाग चलें।'

मंजरी के होंठ फड़के। उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उसने बेनां की ओर क्रोध से देखा, 'बेनां देवी, यह क्या है ?'

बेनां कुछ-कुछ जानती थी। वह निश्चिन्त होकर खड़ी-खड़ी देखती रही। 'है क्या ?' उसने अपमान-भरे स्वर में कहा, 'सौ दिन सुनार के और एक दिन लुहार का। आज पाटण का दिन अस्त हुआ और लाट का दिन उदय हुआ है। बहनो, चलो मेरे साथ। किसी का कुछ नहीं होगा। आज से रामराज्य आरम्भ हुआ है।'

'मंजरी घबराई, क्षुब्ध होकर पल-भर तक खड़ी रही। सब घबरा कर बेनां की ओर गईं और वह सबसे आगे आकर खड़ी हो गई। मंजरी ने तुरन्त मन को स्थिर किया और मणिभद्र से वौसरि को ले लिया।

आंबड़ ने सब सुना। उसके जैसे प्राण ही निकल गए। किन्तु इस समय पाटण या स्वयं की चिन्ता से अधिक तो उसे मंजरी की चिन्ता थी। वह एकदम उठा, नेरा को लेकर द्वार खोलकर घर के बाहर आया।

बेनां थोड़ी देर खड़ी रही, हंसा, और गौरवनष्ट, घबराई हुई मंजरी की ओर देखने लगी। एका-एक उसे उसके पति काक को दिया हुआ

वचन याद आया और वह उसके पास जाकर कुछ अभिमान से बोली—
'मंजरी भाभी ! तुम्हारे जेठ ने मुझ से कहा है कि तुमको मैं अपने घर ले जाऊँ। अब यहाँ पाटण का कोई शेष नहीं जो तुम्हारी सहायता को दौड़कर आ सके। इस समय तो तुम्हारे घर का भी ठौर ठिकाना नहीं कि वहाँ जाकर रह सको। मेरे साथ चलो। मेरे देवर इस समय यहाँ नहीं हैं। आ भी नहीं सकेंगे।

एक-एक शब्द मंजरी को शूल के समान चुभा। उसका गर्वीला स्वभाव यह डंक सहन नहीं कर सका। उसका क्षोभ जाता रहा। गर्दन ऊँची करके एक तिरस्कार-भरी दृष्टि से उसने बेनां को उसके आडम्बर और उसकी अल्पता का भान करा दिया।

'किसकी मजाल है जो दुर्गपाल की स्त्री को छू भी सके ?' उसने क्रोधित होकर पूछा। उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा था, उसकी आँखों में विद्युत चमक उठी।

बेनां तिरस्कार से मुस्कराई। आम्रभट से नहीं रहा गया। मंजरी की असहायावस्था और गौरव देखकर उसका हृदय वीरता से उमड़ पड़ा। वह आगे आया।

'बेनां देवी ! कौन कहता है पाटण निराधार हो गया है ?' उसने पूछा।

मैं इस विषय पर विवाद नहीं करूँगी,' बेनां बोली, 'पुरुषों की बात पुरुष जानें। मुझे तो तुम्हारे भाई ने कहा था···।'

उसकी बात अधूरी रह गई। सोमेश्वर हाथ में नंगी तलवार लेकर आया। वह हाँप रहा था, उसके केश बिखरे हुए थे और उसके मुख से रक्त बह रहा था। उसे देखकर सब स्त्रियाँ चीत्कार कर उठीं।

'देवी हैं न ? भाई, बहन, सभी हैं ? देवी !'

'क्या है भाई ?' मंजरी ने पूछा।

'अच्छा हुआ आप मिल गईं। अपने बाड़े में लूट मची हुई है। समस्त पट्टणी सेना बन्दी बना ली गई है। आंबड़ महेता ! आप यहाँ

कैसे ? भागो । रेवापाल ने लाट का झण्डा उठाया है । कोई आपको देख लेगा तो मार डालेगा ।'

आँबड़ की आँखों में क्रोध चमका ।

'क्या कहता है ? तो पाटण के सैनिक···।'

'पाटण के सैनिक !' सोमेश्वर ने कठोरता से हँसकर कहा—आप 'आप, मैं और यह मेरा तोतला । किन्तु देवी का क्या होगा ?'

'मैं वही तो कहती हूं,' बेनां ने कहा, तुम्हारे भाई ने कहा है कि मंजरी बहू और बच्चों को साथ लेती आना ।

क्रोध में मंजरी ने होंठ काट लिये ।

'बेनां देवी ! रेवाभाई से कहना कि दुर्गपाल की स्त्री और बच्चे यहीं रहेंगे जहाँ पाटण के सैनिक···।' कहकर वह एक पग सोमेश्वर की ओर बढ़ी । सब यह पागलपन देखकर चकित हो गए । सोमेश्वर से न रहा गया—'देवी ! बेनां देवी सत्य कहती हैं । रेवाभाई के घर को छोड़कर इस समय आप कहीं न रह सकेंगी । प्रातःकाल होने से पहले ही हम तो मर जायेंगे ।'

'सोमेश्वर !' गर्व से मंजरी ने कहा, यह सब तुम्हारे विचारने की बात नहीं है । जहाँ मेरे दुर्गपाल का स्थान है वहीं मेरा भी है । बेनां-देवी, जाओ !' कहकर उसने बेनां की ओर इस प्रकार तिरस्कार-भरी दृष्टि डाली मानो वही विजयी साम्राज्ञी थी । बेनां यह सहन नहीं कर सकी । क्रोध में वह वहाँ से चल पड़ी । सब स्त्रियाँ भी उसके साथ चली गईं । आँबड़ का हृदय इस योगमाया का आवेश देखकर स्तब्ध हो गया ।

'देवी ! यह क्या किया ?' सोमेश्वर ने निराश भावना से सिर पीट लिया ।

'सोमेश्वर ! जानूं तो यह कायरता किस गुरू से सीखी ?' मंजरी ने तिरस्कार से पूछा । तेरे गुरू और पाटण की सत्ता एक ही है । पाटण की सत्ता चली जाने पर तू शायद जी सके किन्तु मुझसे कैसे जिया

जायेगा ?'

आँबड़ महेता पक्का पट्टणी था। जब तक पाटण की सत्ता है तब तक उसका जीवन है, यही उसका सिद्धान्त था। मंजरी के शब्दों ने उसके हृदय में प्रतिध्वनि की।

'और देवी ! पाटण की यह सत्ता जाने से पहले हम मरने के लिए तैयार हैं।

'कि···कि···किन्तु यहाँ से तो च···च···चलिए।' नेरा से काँपते होंठों से बिना बोले न रहा गया।

'चुप, पागल !' आँबड़ गरजा।

'सोमेश्वर ! नए गढ़ की कुंजी तुम्हारे पास है ?'

'हाँ। अच्छी याद दिलाई। चलिए, वहाँ देखा जायेगा। मणिभद्र, बहन को उठा। देवी ! वौसरि को मुझे दे दीजिये। गढ़ में बैठे-बैठे हम सम्पूर्ण लाट को छका देंगे।'

सोमेश्वर ने वौसरि को लिया, मणिभद्र ने महाश्वेता को लिया और सब शीघ्र गति से गढ़ की ओर बढ़ चले।

४

सोमेश्वर पथ से परिचित था इसलिए मुख्य मार्गों से बचते हुए, गली-कूचों में होकर वह सबके साथ खाई के सामने जा पहुँचा। कहाँ से खाई सरलता से पार की जा सकती थी यह भी सोमेश्वर जानता था, फलस्वरूप अक्षयतृतीया का ज्वार होते हुए भी एक व्यर्थ की पड़ी डोंगी में बैठकर वह खाई पार कर गए। चन्द्रमा का प्रकाश तो नाम मात्र ही का था। अतः अन्धकार में सब से आगे सोमेश्वर, फिर महाश्वेता को कन्धे पर लिए मणिभद्र, फिर मंजरी, फिर आम्रभट और

नेरा, इस क्रम से वह खाई से द्वार तक की चढ़ाई चढ़े। आम्रभट आगे चलती मंजरी की ओर देख रहा था। कहीं उसके पाँव में कंकड़ न लग जायें, कहीं वह फिसल न जाय, इस डर से उसका मन अधीर हो रहा था। किन्तु मंजरी जितनी सुकुमारी थी उतने ही दृढ़ मन की भी थी। उसके कोमल पाँव शीघ्रता से और सावधानी से उठ रहे थे। अन्त में वह गढ़ के द्वार तक आए। सोमेश्वर उन्हें एक छोटी खिड़की के सामने ले गया। उसने खिड़की खोली।

'कौन है ?' देवानायका स्वर आया।

'सोमेश्वर।'

'इस समय कैसे ?' शंकित होकर देवा ने पूछा।

'देवी और बच्चे, तथा नए दुर्गपाल आए हैं।' देवा ने शीघ्रता से सिर पर साफा बाँधा और चकमक से मशाल जलाई। 'देवी ! आप इस समय यहाँ ?'

'हां' मुस्करा कर मंजरी ने कहा, तेरे भाई चले गए इसलिए तेरे संरक्षण में आए हैं।'

'कौन, नए दुर्गपाल—' देवा कठोर होकर बोला, 'और नेरा तोतला !'

'देवा ! नगर में विप्लेव हो गया है, रेवापाल ने पट्टणी सेना को बंदी बना लिया हैं, काकभट और दूसरे पट्टणी अधिकारियों के घर लूट लिए हैं, अब असमर्थ होकर देवी की रक्षा के लिए हम गढ़ में आए हैं।" सोमेश्वर ने खिड़की अन्दर से बन्द कर ली।' अब पाटण से जब तक सहायता न आ जाय तब तक यहीं रहेंगे।' देवा की आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। वह सिर पर हाथ रखकर निकट के चबूतरे पर बैठ गया—'हे मेरे भगवान्।'

मंजरी ने निकट जाकर स्नेह-भरे स्वर में पूछा—'देवा, क्या बात है ? ऐसे क्यों करता है ?'

'देवी ! बुढ़ापे में देवा की भी बुद्धि मारी गई थी।'

'कैसे ?'

'मैंने भाई की आज्ञा नहीं मानी ।' देवा की वाणी काँप रही थी, मैंने आप सबको बेमौत मार डाला ।'

'किन्तु बात क्या है ?' मंजरी ने पूछा ।

'उस रेवापाल के कहने से मैंने कोठार में का अनाज फेंक दिया ।'

'कोठार का अ···अनाज फें···क दिया—' सब चकित होकर पीछे हट गए ।

देवा ने कपाल ठोंक लिया—'मुझे अब जीवित नहीं रहना चाहिए । रेवापाल ने कहा था कि मेरे भाई तो पाटण में बन्दी बना लिए गए और यह मेरा तोतला यहां भट बन कर आने वाला है । भाई के लौट आने पर उसने कोठार फिर भर देने का वचन दिया था । मैं भुलावे में आ गया । देवी मैं आपको और कीकाबाई को खिलाऊँगा क्या ?"

'वर्ष भर चल सके उतना सामान फेंक दिया ? आँबड़ महेता ने आगे बढ़कर क्रोध में कहा, 'पापी ! किसके कहने से ?' कहकर उसने तलवार निकाल ली ।

'मार डालो बापू !' देवा बोला,—'मुझे गला घोंट कर मर जाना चाहिए—' ।

आँबड़ तलवार उठाने जा रहा था कि उसकी दृष्टि मंजरी पर पड़ी । उसकी आँखों में झलकता तिरस्कार देखकर वह रुक गया ।

'आँबड़ महेता !' संयत किन्तु रोष भरी वाणी में मंजरी बोली, 'अपनी तलवार म्यान में रखो, निश्चय ही तलवार के बहुत से काम 'अपनी देवा ! गढ़ में थोड़ा-बहुत अनाज तो है ?'

'इतने आदमियों के लिए तो आठ दिन भी नहीं चलेगा ।'

सोमेश्वर बोले—'इस गढ़ में आये हैं यह नगर का कोई व्यक्ति नहीं जानता है । मैं जाकर थोड़ा-बहुत अनाज ऊपर ले आने का प्रबन्ध करता हूं ।'

'परन्तु तुम बाहर पकड़े गये, तो ?'

'जैसी भोलानाथ की इच्छा । ग्रांबड़ महेता···।' उसके सामने देख-कर सोमेश्वर तनिक ग्रटका, 'ग्राप यहाँ रहकर देवी को सँभालिएगा। मणिभद्र तू भी यहीं रह । नेरा आ तू मेरे साथ चल ।'

'मैं चलूं ?' ग्राँबड़ ने पूछा ।

'नहीं । हम दोनों में से एक को तो यहां रहना ही चाहिए । यह भी तो संभव है कि गढ़ में कोई विपत्ति ग्रा जाए ।

'ग्रच्छा । नेरा तू सोमेश्वर भट के साथ जा ।'

'ब···बापू—' पीछे खड़े नेरा को गढ़ से बाहर जाना ग्रच्छा ही लगा।

'जी !' ग्राँबड़ ने ग्राँखें निकाली । नेरा नीची गर्दन करके सोमेश्वर के साथ बाहर गया ।

'देवा ! कहीं बैठने का ठिकाना-विकाना है ? बच्चे बेचारे थक गए है ।' मंजरी बोली ।

'ग्रवश्य है देवी !' कह कर देवा सबको थोड़ी दूर पर एक छोटे से घर में ले गया । ग्रावश्यक वस्तुएं निकाल दीं । कोई घेरा डाल दे तो पट्टणी सेना के लिए गढ़ में ऐसी सुविधाएं थीं कि रहने-करने के लिए तो किसी को कोई कठिनाई हो ही नहीं सकती थीं । मणिभद्र पानी ले ग्राया । मंजरी हतप्रभ हुए बच्चों को सहलाकर सुलाने लगी । देवा ग्रौर ग्राँबड़ महेता गढ़ को देखने के लिए निकल पड़े ।

ग्रब ग्राँबड़ गम्भीर हो गया था । पाटण की सत्ता को गढ़ में रहते-रहते ही टिका रखना था, ग्रौर जब तक पाटण से सहायता न ग्राए तब तक मंजरी की रक्षा करना उसका सर्वोदायी कर्तव्य था । इन दो उद्देश्यों ने उसके पौरुष को जाग्रत कर दिया था । यह गढ़ सुरक्षित था ग्रौर सरलता से ग्रधिकृत नहीं किया जा सकता था । किन्तु तीन-चार व्यक्तियों की सहायता से उसे टिकाए रखना कोई सरल बात नहीं थी । फिर, खाद्य समाप्त होने पर क्या होगा यह उसे नहीं सूझ पड़ा;

किन्तु फिर भी उसमें साहस था। मंजरी की दृष्टि के सामने इस गढ़ को टिका रखना, अपना शौर्य दिखाना और समय आने पर मर जाना— इससे बढ़कर उसकी और इच्छा नहीं थी।

किसी की सहायता प्राप्त न होने के कारण उसने बहुत मन लगाकर गढ़ को देखा। किस दिशा से धावा किया जा सकता है, कहाँ से रक्षा भली प्रकार की जा सकती है, और किस स्थान से चारों दिशाओं पर भली प्रकार दृष्टि रखी जा सकती है—यह सब उसने जान लिया। उसने नगर की ओर कोट पर जाकर नीचे देखा। अब मध्य रात्रि हो रही थी, फिर भी नगर में स्थान-स्थान पर जलती मशालें इधर-उधर जाती दिखाई पड़ रहीं थीं। किसी-किसी स्थान से रह-रह कर चीत्कार भी सुनाई पड़ता था। केवल नदी-तीर पर पूर्ण शान्ति थी।

घूमते-घूमते आँबड़ महेता देवा से बात-चीत करने लगा। जैसे-जैसे वह बात करता गया वैसे-वैसे देवा के हृदय, उसके अनुभव और गढ़ के विषय में जानकारी प्राप्त करने का एक मार्ग मिलता गया। बात करते-करते वृद्ध देवा को आवेश आ जाता था, और गढ़ पर से कैसे शत्रुओं को छकाया जा सकता है इसका कुछ-कुछ धुँधला चित्र थोड़े से शब्दों में वह उसके मस्तिष्क के सामने खड़ा कर देता था। परन्तु प्रत्येक बात का सार और प्रत्येक बात की 'आत्मा' उसके 'भाई' में ही निहित। 'भाई' ने मार्ग दिखाया और 'भाई' ने ही कंगूरा बनवाया; 'भाई ने ही कहा था कि इस कोने में खड़े हो कर तीन आदमी तीन सौ आदमियों को ठिकाने लगा सकते हैं, और 'भाई' का विचार था कि दीवाल को गिरवा कर दूसरी बनवा दी जाय। आँबड़ इस बात से कुढ़ता अवश्य था किन्तु इस परिस्थिती में काक की प्रशंसा सुनकर उसका उत्साह बढ़ रहा था। चारों ओर घूम कर वे खिड़की के निकट आकर सोमेश्वर की प्रतीक्षा करने गगे। किन्तु सोमेश्वर नहीं लौटा। प्रतीक्षा करते-करते थक आंबड़ देवा द्वारा दिखाये हुए कमरे में सोने चला गया और देवा खिड़की के सामने सोमेश्वर की प्रतीक्षा करते-करते

सो गया :

आम्रभट लेटा अवश्य किन्तु उसे नींद नहीं आई। विचार करते-करते उसे पिछले पन्द्रह दिवसों में किए गए अपने मूर्खता-भरे कार्यों की याद आई। पन्द्रह दिन में उसने सम्पूर्ण सेना को निर्बल कर दिया, और सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ले ली। उसके आचरण से सब लोग भ्रम में पड़ गए और क्रान्तिकारियों को उत्तेजना मिली। अपनी कुबुद्धि से उसने पाटन के मित्रों को छेड़ा और शत्रुओं को चढ़ बैठने का अवसर प्रदान किया। एक घड़ी में रेवापाल ने सम्पूर्ण लाट पर अधिकार कर लिया और उसके जैसे पाटण के सत्ताधीश को उदा, महेता के पुत्र को इस प्रकार चोर के समान गढ़ में घुस कर बैठना पड़ा।

रात्रि एकांत में उसने अपने पिता और काक के कार्य के साथ अपने कार्य की तुलना की। दोनों ने अपरिचित उद्गम से जीवन-सरिता प्रारम्भ की और इस उन दोनों के प्रताप से चारों दिशाएँ फल-फूल रहीं थीं। छोटी उम्र में उसे पिता के प्रताप से मान, सम्पत्ति और सत्ता मिली किन्तु इन सब पर उसने अपनी मूर्खता से पानी फेर दिया।

उसे अपनी निर्बलता का भान हुआ और साथ ही मंजरी का स्मरण भी हुआ। उसके अंगों में एक आनन्द-लहर दौड़ गई। इसे पूरे गढ़ में वे दोनों एक साथ रह रहे थे। जिस अवसर के लिए वह व्याकुल था वह इतना निकट आ लगा था और जाने कितने दिन तक यह यों ही चलता रहेगा' और रात-दिन अपनी हृदय साम्राज्ञी की चरण बन्दना करने का लाभ प्राप्त होगा। मंजरी उस पर प्रसन्न होगी! वह समझ न पाया किन्तु अभिमान त्याग कर वह आत्म-तिरस्कार से वह मुस्करा दिया। उस पर प्रसन्न हो! यह गर्विष्टा, विद्वान्, तेजस्वी और पति-परायणा मंजरी उस पर प्रसन्न हो! क्यों न हो? वीरता दिखाने और मंजरी की उपकार-वृत्ति को जागृत करने का अवसर हाथ जो लग गया था। चाहे प्राण ही क्यों न चले जायें किन्तु मंजरी को प्रसन्न करने का उसने मन-ही-मन संकल्प कर लिया।

न जाने क्यों मंजरी उसे रहस्यमयी लगी ? उसने गृह-कुशल गृहिणियाँ देखी थीं, अनाज पीसकर पति की सेवा करने वाली सतियाँ देखी थीं, पति-विरह से पीड़ित बधुएँ देखी थीं, और शास्त्र का अभ्यास करने वाली साध्वियाँ भी देखी थीं। किन्तु उसने ऐसी स्त्री नहीं देखी थी। काक के वियोग में उसने आभूषण त्याग दिए थे, इसे छोड़ वह पति के लिए और कुछ करती हो ऐसा नहीं दिखाई पड़ा। फिर भी उसे देखते ही काक का स्मरण हो आता था और काक को देखकर उसका। उसने अपनी और अपने बच्चों की रक्षा करने के बदले अपरिचित व्यक्ति के साथ गढ़ में आना पसन्द किया था। यह विचित्रता आँबड़ की समझ में न आई। यह स्त्री अन्य सब स्त्रियों से किस प्रकार विभिन्न थी।

उसे ऐसे कितने विचार आए किन्तु कोई परिणाम न निकला। वह थक गया, उसे झपकी आ गई। नीचे कुछ गड़बड़ सुनकर वह उठ बैठा।

'कौन सोमेश्वर ?' उसने पुकारा।

'न···नहीं ब···बापू !' नेरा का हाँपता और रुआंसा स्वर आया, 'यह तो मैं हूँ। स···स···सोमेश्वर भट जी छूट गए।'

'हैं ! तो मेरे साथ कौन है ?' आँबड़ ने बिस्तर पर खड़े होते-होते कहा।

'म···महाराज, म···म···मेरी घ···घर वाली।' नेरा ने उत्तर दिया।

## ५

सोमेश्वर और नेरा शीघ्रता से नीचे उतरे, उसी डोंगी में बैठकर खाई पार की और नगर में जा पहुंचे। वे एक-दो गलियाँ पारकर एक

परिचित बनिए की दूकान के सामने गये। सोमेश्वर ने नेरा से कई बार उसे बुलवाया, उसने स्वयं सांकल खड़खड़ाई, किन्तु उसने दूकान न खोली। एक दूसरी दूकान पर जाकर उसे बुलवाने का प्रयत्न किया किन्तु सफल नहीं हुए। कुछ देर तक अन्दर सोये हुए लोगों ने चुप-चाप बात की और फिर अन्त में एक स्त्री का स्वर आया वह तो घर में नहीं हैं और स्त्रियां अकेली कैसे द्वार खोल दें ? सम्पूर्ण नगर में भयपूर्ण वातावरण था।

सोमेश्वर के पीछे नेरा मौन होकर चल रहा था वह अत्यन्त भयभीत हो गया था। पाटण बन्दी हो गया और दुर्गपाल भाग गया था उसको किसी की भी सहायता नहीं मिल सकती थी। उसने इस नगर में रह कर ऐसी निर्लज्जता की थी, और लोगों में उसके प्रति ऐसी तिरस्कार भावना थी कि प्रातःकाल यदि वह किसी को दिखाई पड़ जाता तो कोई उसे जीवित नहीं छोड़ता, यह निश्चित था। आँबड़ महेता के साथ गढ़ में जाए बिना और कोई चारा नहीं है इतना वह स्पष्ट समझ गया।

समय जा रहा था और काम बन नहीं पा रहा था, सोमेश्वर अधीर हो गया। पकड़ा जाने के डर से वह प्रतिष्ठित लोगों के घरों की ओर जा नहीं सकता था और छोटे लोगों से कोई सहायता की आशा थी नहीं।

'ब···ब···बापू !' नेरा ने धीमे-से सोमेश्वर के कान में कहा—'आ···आप कहें तो म···म···मैं अनाज-पानी ले आऊँ।'

'कहाँ से ?' तनिक चिढ़कर सोमेश्वर ने कहा।

'म···म···मेरी ससुराल यहीं पर है।' उसके स्वर से लगा कि नेरा के गोल-मटोल मुख पर लज्जा छा गई। नेरा की पत्नी उसे छोड़कर अपने भाई के पास यहीं-कहीं रहती थी यह वह जानता था। सोमेश्वर इस पर विश्वास न ही करता था, किन्तु इस समय जैसे हो अनाज एकत्रित करना ही था।

'हाँ, हाँ, तो ले आ न !'

'त···तो आ···आइये ।' कहकर नेरा आगे हो गया और थोड़ी ही देर में एक निर्धनों के मुहल्ले में वे आ पहुँचे । नेरा एक छोटे घर के द्वार के सामने जा खड़ा हुआ, 'अरी ओ···।'

किसी ने उत्तर नहीं दिया । नेरा ने धीमे-से कड़ा खड़खड़ाया और फिर बोला—'यह तो मैं हूँ ।'

'मुए ! इस समय तू कहाँ से ?' एक कठोर स्वर आया ।

'अरी ओ ! मैं म···मरने···को···हूँ । देख स···स···सुन, मुझे अनाज चाहिए । फिर म···मैं चला जाऊँगा, देख !'

'अभी मैं अनाज कहाँ से लाऊँ ?'

'ज···जो घर में हो वही दे दे । देख मैं आंबड़ महेता का विश्वास-पात्र बन गया···औ···और भ···भट बन गया, और त···त···तू मुझ से ऐसा व्यवहार करती है ?' नेरा ने रुआंसे स्वर में कहा ।

'मुझे ढोंग दिखाने आया है ।'

'र···र···रेवा मां की सौगन्ध !' कहकर नेरा सिसकियां भरने लगा ।

'देख तुझे सोने की ल···लड़ी देता हूँ ।' कहकर उसने सोमेश्वर के कान में कहा, 'ब···बापू ! अ···अपनी लड़ी देना तो ! यह क··· क···कच्ची नहीं है । यों नहीं मानेगी ।'

'सोने की लड़ी कहाँ ले लाया ?'

'यह रही, देख तो स···सही ।' कहकर नेरा ने लड़ी द्वार से लगा कर हिलाई ।

अब नेरा की अर्धांगिनी को कुछ विश्वास हुआ । उसने दीपक की बाती उकसा करके द्वार की दरार में से झांका और किसी दूसरे को भी साथ देख कर पूछा—'दूसरा कौन है ?"

'य···यह मेरे मित्र हैं ।'

सोमेश्वर के जी में तो आया कि इस बातूनी को एक थप्पड़ मार

दे किन्तु किसी प्रकार उसने अपने आपको किया।

'देखूं, लड़ी ला।'

'ऊंह, पहले आ···नाज तो दे।'

नेरा की स्त्री को कुछ विश्वास हुआ और उसने द्वार खोल दिया।' अन्दर आ जाओ।

नेरा को और सोमेश्वर को जैसे ही उसने देखा वैसे उसने घूंघट खींच लिया। 'पधारिये बापू,' वह बोली और खड़ी रह गई।

'मुझे पहचानती है ?' सोमेश्वर ने पूछा।

'क्यों नहीं ? मेरा भाई आपका तेली है, बापू ! आप कहाँ से ?'

वि···विदेश में जाने कैसे ब्याह ह···हो जाता है ?' नेरा ने अपना बचाव करने के लिए कहा किन्तु किसी ने सुना नहीं।

'तू पांचा की बहिन है ? तो चल शीघ्रता कर। तेरे यहाँ जितना अनाज हो ले आ। बदले में मेरी यह लड़ी और अंगूठी लेले।'

'किन्तु बापू, इस समय आप कैसे ?' फिर अपने पति की ओर संकेत करके पूछा—'और इसके साथ ?'

'देख, हम सब गढ़ में चले गए हैं। वहां आवश्यक अनाज नहीं है। इस समय कोई बनिया दूकान नहीं खोल रहा है।'

'हाय ! हाय ! क्या वहाँ तुम्हारी मां भी है ?' तेलन ने कहा।

'नहीं। उन्हें कोई कुछ नहीं कहेगा। किन्तु मंजरी देवी और भटराज के बच्चे हमारे साथ हैं। और हम चार व्यक्ति हैं। पाटण से सेना आए तब तक अनाज पहुंचता रहना चाहिए।'

'मंजरी देवी ?' सम्मान से तेलन बोली और उसकी दृष्टि के आगे दूर से देखी एक गौरवर्ण, लम्बी और स्वस्थ स्त्री आ गई।

सोमेश्वर को एक बात सूझी।

'देख, मंजरी देवी अकेली है। तू हमारे साथ चली चल ? थोड़े ही दिनों में पाटण की सेना आकर हमें छुड़ा लेगी।'

तेलन ने भयभीत दृष्टि से नेरा की ओर देखा। सोमेश्वर उस

दृष्टि का अर्थ समझ गया ।

'मैं हूँ, नए दुर्गपाल आंबड़ महेता हैं, देवा नायक है और एक दूसरा ब्राह्मण है घबराने की कोई बात नहीं है ।'

'किन्तु पाटण से सेना न आए ?'

'जो हमारा होगा वही तेरा होगा । और देवी की रक्षा में हम मरेंगे तो तू भी मर जाना ।'

क्षणभर के लिए तेलन के मस्तिष्क में उहापोह मची । मंजरीदेवी के निकट रहन, बड़े-बड़े दुर्गपालों के साथ गढ़ में रहना, और पाटण से सेना आजाय तो बाजे-गाजे के साथ लौटना ! उसके क्षुद्र जीवन में यह भव्य भविष्य तो एक स्वप्न-सा लगा ।

'क···किन्तु काक भटराज व···बंथली में हैं वह क्या···क्या छुड़ाए बिना रहेंगे ?' नेरा ने अर्धांगिनी की संगत की लालसा से आशा दिलवाई ।

तेलन ने विचार किया—काकभट छुड़वायेंगे अवश्य । और मंजरी देवी के साथ ! उसके मुंह में पानी आ गया ।

'चलिए ! मैं आती हूँ ।' फिर धीमे-से बोली, 'वह लड़ी तो दे दीजिए ।' उसने लड़ी ली और अन्दर के कमरे में जाकर उसे कहीं छिपा आई । उसने वर्ष-भर का अनाज निकाला और तीनों से बंध सका उतना ले लिया । तेलन खूब बलवान थी । बचपन से मजदूरी करती थी इसलिए उसने बहुत सारा बोझ बड़ी सरलता से उठा लिया ।

तीनों ने अनाज बाहर निकाला । तेलन ने द्वार बन्द कर कुंजी द्वार के नीचे सरका दी और तीनों गढ़ की ओर चल दिए । वह खाई तक आ पहुँचे खाई के निकट पीछे से पांच-सात मनुस्यों की पगध्वनि सुनाई दी । सोमेश्वर चमका । तीनों के कंधों पर बोझ था ।

'नेरा !' सोमेश्वर ने धीमे स्वर में कहा, तू और तेरी पत्नी जाकर उस डोंगी में बोझ रख आओ और फिर मेरा बोझ ले जाओ ! मैं इसे यहीं पटकता हूँ । सम्भव है कोई आ रहा हो तो मैं रोक रखूंगा ।'

आगन्तुक निकट आये। ध्वनि से मालम होता था कि उनके पास शस्त्र हैं।

'कौन है ?' उनमें से एक चिल्लाया। सोमेश्वर ने उत्तर नहीं दिया उसने घूमकर देखा तो नेरा और उसकी पत्नी डोंगी में अपना बोझ डाल रहे थे। उत्तर न मिलने के कारण आगन्तुकों में से एक ने चकमक से मशाल जलाने की तैयारी की। सोमेश्वर ने देखा कि मशाल जल उठेगी तो सत्यानाश हो जायगा डोंगी कुल दस पग ही पीछे थी। एक छलांग में वह वहां पहुँचा और नेरा के कान में कहा—'नेरा ! ले यह गढ़ की खिड़की की कुंजी। तुम एक दम अनाज लेकर ऊपर जाओ तब तक मैं इन लोगों को रोक रखता हूँ। नहीं तो अनाज बिना ऊपर सब मर जायंगे।' इतना कहकर उसने डोंगी को धक्का दिया। समय देख-कर नेरा ने भी बिना कुछ कहे बाँस लेकर डोंगी खेना प्रारम्भ किया।

सोमेश्वर कूदकर आगे आया। प्रगाढ़ अन्धकार में मशाल जलने से आगन्तुकों के चकाचौंध हो जाने का लाभ उठाकर वह तलवार लेकर मार्ग रोककर खड़ा हो गया।

'तू कौन है ? उस गढ़ में किसको भेजा है ?'

'इससे तुम्हें मतलब ? रेवाभाई की आज्ञा है।' सोमेश्वर ने चाल चली।

परन्तु उसका झूठ बोलना काम नहीं आया। पीछे खड़े हुए एक व्यक्ति ने आगे आकर कहा—'अरे ! यह काकभट का सोमेश्वर-दुर्गरक्षक है ! पकड़ो इसे।'

'तुम कौन हो ? मुझे पकड़ने वाले तुम कौन !' साहस से समय व्यतीत करने के हेतु सोमेश्वर ने कहा, 'उत्तर दो !'

'अरे, किन्तु वह जा रहे हैं उन्हें तो पकड़ ले'—कहता हुआ एक व्यक्ति दौड़कर आगे बढ़ा।

'सावधान !' सोमेश्वर मार्ग रोक कर खड़ा हो गया, 'तू कौन है ? बिना बताए आगे नहीं जा सकता।'

'पकड़ो इसे।' एक व्यक्ति ने कहा और दूसरा आगे बढ़ा।

'मुझे पकड़ना इतना आसान नहीं है।' कहकर सोमेश्वर उन पर लपका। वह लोग पीछे हटकर तलवारें निकालने लगे। पतवार के स्वर से सोमेश्वर को लगा कि डोंगी वेग से खाई के उस पार जा रही थी। वह पाँचों का मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। विदेशी सैनिक अनुभवी योद्धा नहीं थे इसलिए उन्हें रोकना सरल हो गया। थोड़ी देर में डोंगी के उस पार पहुँचने का स्वर आया और नेरा और उसकी स्त्री अनाज के थैले उठाते अस्पष्ट से दिखाई पड़े। सोमेश्वर को लगा कि अब यदि वह खाई में गिर जाता है तो सरलता से तैरकर पार पहुँच जाता है, उसने धीरे-धीरे पीछे हटना आरम्भ किया। अक्षयतृतीया के ज़्वार का पानी पीछे हट गया था और खाई से दूर इधर भूमि गीली और चिकनी थी। सोमेश्वर यह सब भूल गया और पीछे हटते समय उसका पैर फिसल गया। वह सैनिक एकदम उस पर टूट पड़े और उसे बन्दी बना लिया। सोमेश्वर ने कान लगा कर सुना—नेरा और उसकी पत्नी वेग से ऊपर चढ़ रहे थे।

'अब वहाँ तक कैसे पहुँचें?' विदेशी सैनिकों में से एक बोला।

'अभी कैसे जायें? प्रातःकाल देखा जायेगा। इसी को पकड़ कर ले जायेंगे।' दो आगन्तुक सोमेश्वर का हाथ पकड़ कर चलने लगे। सोमेश्वर ने देखा कि अभी एकदम गढ़ में लौटने के लिए व्याकुल होना व्यर्थ है। वह चुपचाप चलता रहा। उन लोगों ने नदी की ओर का मार्ग पकड़ा।

सोमेश्वर को लगा कि यदि यह लोग उसे रेवापाल के पास ले जायेंगे तो वह अवश्य उसे प्राणदण्ड देगा, किसी-न-किसी प्रकार भागे बिना कोई और चारा नहीं था। इतने में वह नदी के ढाल पर आ पहुँचे। सोमेश्वर ने नदी की ओर देखा और मन ही मन एक निश्चय किया उसने एक अप्रत्याशित झटके से अपना हाथ छुड़ाया और उसे पकड़ने वाले के सम्भलने से पहले ही वह नदी में कूद पड़ा। सैनिक

पहले तो तनिक विचार में पड़ गये किन्तु फिर दो ने हथियार निकाल कर सोमेश्वर के पीछे कूदने का निश्चय किया। किन्तु इस नदी से वे अपरिचिन थे रात अन्धेरी थी, ज्वार का पानी सागर के समान फुंकार मार रहा था, फलस्वरूप निश्चय ज्यों-का-त्यों रह गया। लज्जित होकर वह अपने मार्ग चले गए।

कोई पीछे कूदे तो उससे बचने के लिए पहले तो सोमेश्वर जल्दी-जल्दी दूर गया किन्तु जब उसे विश्वास हो गया कि कोई कूदा नहीं है तो वह खाई की ओर चला। किन्तु भाग्य अनुकूल नहीं था। जागने और लड़ने के कारण वह थक गया था। पाँवों में ऐंठन आ गई। वह बड़ी कठिनाई से तैर सका। कई बार तो वह चित्त होकर पड़ा रहा और नदी के प्रवाह के साथ बहता रहा। बहाव प्रतिकूल था, वह भृगुकच्छ से दूर चला गया।

इतने में उसे किसी डोंगी के आने का स्वर सुनाई पड़ा। उसने ध्यान से सुना तो रातों-रात भृगुकच्छ से भागने वाले यात्रियों की नौका जान पड़ी। कोई रास्ता न देखकर उसने नौका वालों को पुकारा और नौला वालों ने दया करके उसे नौका में ले लिया। नौका लखी गाँव जा रही थी। सोमेश्वर ने सोचा कि वहाँ से फिर भृगुकच्छ जाकर गढ़ में घुसना तो मूर्खता होगी। उसने निश्चय किया लखीगाँव जाकर अखात पार करके इस झगड़े की सूचना काक को क्यों न दी जाय? उसे यही बात अच्छी लगी मौन रहकर सम्पूर्ण रात उसने नौका पर व्यतीत कर दी। रात भर वह चिन्ता करता रहा कि आंबड़ के संरक्षण में मंजरी की क्या दशा होगी।

६

एक पल के लिए भी मंजरी सो नहीं सकी। बेनां का संरक्षण छोड़ने में उसने संकट अवश्य अपनाया था किन्तु इसका पश्चात्ताप नहीं था। चार मनुष्यों के साथ गढ़ में बैठना उसने सहन कर लिया, वह उठता था—'दुर्गपाल की अर्धांगिनी और उनके गौरव की रक्षा करने का समय आ गया है।'

इस काश्मीरी पण्डित की कन्या के जैसा संस्कार और स्वभाव था वैसा ही असाधारण इसका विकास था। जिस माता ने पिता को भुला दिया उसे इसने छोड़ दिया, जिस उदा महेता ने बलपूर्वक इसका पाणिग्रहण करने की आशा बाँधी उसे इसने खूब छकाया, जिस अपरिचित सैनिक ने उसकी रक्षा करने के कारण उससे ब्याह किया उस काक को उसने तिरस्कार से जलाया। परन्तु काक के शौर्य से वह चकित हो गई, उसका बुद्धिबल देखकर उसकी प्रशंसा करने लगी, उसकी चतुराई ने उसे मोहित कर दिया। काक के हृदय की विशालता का अनुमान लगाते-लगाते वह अपना गर्व खो बैठी, उसकी कर्त्तव्यपरायणता और एकनिष्ठा परखते-परखते अपना अभिमान भुला दिया और उसके प्रेम-प्रवाह में बहते-बहते अपना स्वप्ने खो बैठी। जिस सैनिक को उसने विवाह से पूर्व उसने श्वान कहा था उसी की विवाह के पश्चात पूजा करने में गौरव समझने लगी।

काव्य और शास्त्र के अभ्यास से सुसंस्कृत हुई उसकी आत्मा ने पति को ईश्वर मानने और ईश्वर जैसे पति के बिना कुंआरी मरने का निश्चय किया था। जिसे पत्थर समझा था उसी पति को ग्रहण करने पर वही पत्थर ईश्वर दिखाई देने लगा। उसने उस परमेश्वर की भक्ति करना अपना जीवन मन्त्र बना लिया।

भक्ति के विभिन्न प्रकार होते हैं। डस लेने के डर से कुछ लोग नाग की भक्ति करते हैं और नागपंचमी मनाते हैं। सुख की आशा से

कई इष्टदेव की आराधना करते हैं। फल प्राप्ति से उत्पन्न कृतज्ञता के कारण कई वरदाता की भक्ति करना आरम्भ कर देते हैं। कई भक्त नरसी के समान देवता के पीछे पागल होकर उमड़ते हृदय से भक्ति में लीन हो जाते हैं। कोई-कोई ऐसे विरल भक्त भी होते हैं जो भक्त और भगवान का अन्तर ही तोड़ देते हैं, देवता के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जिनकी पूज्य-भावना गर्व-भरी श्रद्धा का रूप लेती हैं, जिनके सेवा धर्म में अधिकार का प्रताप होता है, जिनका जीवन सदा देवमय होता है और सहृदय सदा देवरस में डूबा रहता है।

मंजरी की पति-भक्ति का प्रकार अन्तिम है। उसकी पति-भक्ति परपुरुष के समागम के अभाव में प्रकट नहीं हुई थी अज्ञान अवस्था में पति के संग रहने के कारण भी वह उत्पन्न न हुई थी। सशक्त पुरुष से भय का भी उसमें अंश नहीं था, पालन करने वाले के प्रति उपकार वृत्ति का लेश भी न था, सन्तान के पिता के प्रति होने वाली भावनाओं पर भी वह नहीं पनपी थी। यौवन की उछलती तरंगों को झलते या रसिकता के अद्भुत रंगों को शोभा प्रदान करने का साधन मानकर भी यह भक्ति न जन्मी थी। मृत्यु के पश्चात् सुख पाने का लोभ, या ईश्वर को रिझाने की इच्छा इस भक्ति की प्रेरणाएं न थीं।

मंजरी भक्ति का मूल अनिर्वचनीय प्रणय था, इसकी रचना पति के स्वभाव और जीवन-क्रम के साथ ऐक्य स्थापित करने से हुई थी; इसकी पोषण सर्वव्यापी, एकनिष्ठ और उमड़ती हुई रसिकता और संस्कार करते थे। काक के निरंतर साथ की इच्छा, उसी के जीवन में रस, उसी की सेवा की इच्छा, उसी पर सत्ता जमाने की आकांक्षा, उसी की अर्धांगिनी बने रहने का लोभ—यह सब भक्ति के अंग थे। किन्तु इन अंगों से बनी देह में निवास करती आत्मा निराली थी। इस आत्मा की ज्वलत शक्ति के कारण वह बिना प्रयास के आत्म-समर्पण साधती और देह और स्वभाव की भिन्नता भूलकर काक की अर्धांगिनी बनी रहती।

जिस समय बेनां ने मंदिर में उसका अपमान किया उस समय पति की भक्ति ने उसके हृदय में अद्भुत प्रेरणा का संचार किया था। जिस वीर का वह अंग थी उसकी प्रताप की उसमें प्रेरणा हुई। वह निःशस्त्र और निराधार स्त्री न रही, और कालभैरव को पराजित करने वाले और नवघण रा' को बन्दी बनाने वाले महारथी के साहस और उसकी अडिगता की मूर्ति बन गई।

रात-भर वह सोचती रही। पांच-दस दिन में वंथली समाचार पहुँचेगा, उसके पश्चात् दस-बारह दिन में सेना उन्हें छुड़ाने के लिए आ पहुँचेगी। कुल बीस-पच्चीस दिन इस घेरे का सामना करना होगा। पांच आदमी और एक स्त्री मिलकर यह भगीरथ-कार्य कैसे पूरा करें यह वह शेष रात्रि सोचती रही। गढ़ दृढ़ था। देवा नायक और सोमेश्वर प्रवीण गढ़ रक्षक थे। आंबड़ महेता को भी घेरे का सामना करने की थोड़ी बहुत कला आती होगी। उसे पश्चात्ताप होने लगा। काश्मीरा देवी कई बार उसे युद्ध-कला सीखने और शस्त्रों का प्रयोग करना सीखने के विषय में कह चुकी थी किन्तु अपनी विद्वता और पति के शौर्य के विश्वास पर उसने उसका कहना न माना था। इस समय वह पति की प्रतिष्ठा इस जरा सी भूल के कारण नष्ट करने बैठी थी। जैसे-जैसे रात व्ययीत होती गई वैसे-वैसे उसे अपनी निर्बलता पर क्षोभ होता गया।

प्रकाश होते-होते उसने देवानायक को उठाया।

'देवा ! सोमेश्वर कहां सोया हुआ है ? मुझे गढ़ देखना है।'

'देवी !' देवा ने गर्दन हिलाई, उसकी वाणी में अशांति थी।

'क्यों ?'

'सोमेश्वर भाई तो पकड़ा गया।'

'हैं !' मंजरी के माथे पर पसीने की बूंदे झलकने लगी।

'हां।'

'सोमेश्वर को किसने पकड़ा ?'

'अनाज लेकर लौटते समय नगर के चौकीदार मिल गए। सोमेश्वर भट ने नेरा और उसकी पत्नी को ऊपर भेजा, और स्वयं लड़ने के लिए रह गए। उसके पश्चात् उनका क्या हुआ यह नेरा को नहीं मालूम।'

इस अप्रत्याशित दुर्घटना से मंजरी का साहस डिग गया।

'देवा! भगवान् की क्या इच्छा है?'

'देवी!' जो भगवान् करे अच्छा है।'

'किन्तु अपना क्या होगा?' चिन्ता-भरे स्वर में मंजरी ने कहा। उसके अंतर में शनैः शनैः निराशा अपना प्रभाव जमा रही थी।

'हमारा?' देवा बोला, 'भाई आएं तब तक गढ़ को टिकाए रखना, और क्या?'

देवा के यह सामान्य शब्द सुनकर मंजरी लज्जित हो गई। जितनी श्रद्धा एक सैनिक को उसके पति में थी उतनी भी उसमें नहीं है! उसके अंतर की गहराई से प्रेम और श्रद्धा उमड़ पड़े। उसके हृदय में एक वेगवती लहर आई। उसका मुख लाल हो गया।

'देवा!' वह गर्व-भरे स्वर में बोली' 'ठीक है। तेरे भाई आएं तब तक हम गढ़ की रक्षा करेंगें। तू मेरे साथ चल, मैं गढ़ देखना चाहती हूँ।'

'अभी देख कर क्या करोगी?'

'मुझे दुर्गरक्षक जो बनना है,' मँजरी ने मुस्कर कर कहा।

देवा मंजरी से ईर्ष्या करता था। वह समझता था कि उसने उसके भाई से ब्याह करके अनधिकार चेष्टा की है। उदार होकर उसने अपने इस विचार के परिवर्तन का श्री गणेश आरम्भ कर दिया।

'चलिए!' कह कर वह आगे-आगे चलने लगा।

मंजरी और वह गढ़ पर घूमने लगे। जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता गया वैसे-वैसे गढ़ के कंगूरे नीचे का नगर और दूर-दूर के गांव स्पष्ठ दिखाई पड़ने लगे।। धीरे-धीरे रेवा का पाट चाँदी की मेखला के समान पृथ्वी

को शोभित करने लगा। और दूर दिखाई पड़ते पर्वतों की शृंखला के ऊपर ऊषा प्रकाश रक्तिम होने लगा।

मंजरी गढ़ देखने लगी। कहाँ से क्या होता है, किस स्थान से किस पथ की रक्षा होती है। और किस स्थान से किस प्रकार दूर तक के गांव पहचाने जा सकते हैं—यह सब ज्ञान वह बड़े विवेक से प्राप्त करने लगी। फिरते-फिरते जब वह उस स्थान पर आये जहाँ से वह चढ़े थे तो देवा ने सोमेश्वर और चौकीदारों में हुई टक्कर का संभावित स्थान उसे दिखाया। उस स्थान को ध्यान से देखने के लिए मंजरी ने तनिक ऊंची हो कर कोट पर दृष्टि दौड़ानी आरम्भ की।

'देवी यह क्या कर रहीं हैं ? इतनी नीचे न झुकिये, नहीं तो कोई निशाना साध कर तीर चला सकता है।' पीछे से आंबड़ का स्वर आया। मंजरी ने चमक कर पीछे देखा। आम्रभट दौड़ता हुआ रहा था। मंजरी जैसे ही पीछे हटी वैसे ही सन करता हुआ एक तीर आया, और जहाँ मंजरी झुकर खड़ी हुई थी वहां पत्थर से टकराया।

'देवा। देखता नहीं वहाँ खड़ा-खड़ा ताक रहा है।' आम्रभट ने क्रोधित होकर पूछा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही देवा से तीर कमान लेकर तीर छोड़ दिया। तीर नीचे खड़े हुए सैनिक के हाथ पर लगा। वह चीख कर दूर भागा।

'आंबड़ महेता !' मंजरी ने मुस्कराकर कह, 'भाई तुम धनुष इतना कड़ा क्यों पकड़ते हो ?'

आम्रभट ने मंजरी की ओर इस प्रकार देखा मानो किसी ने उसका अपमान कर दिया हो। बचपन से धनुष को कड़ा पकड़ने की उसकी कुटेव थी। गुरू के रह-रह कर सावधान करने पर भी वह इस कुटेव को छोड़ न सका था।

'आपने कैसे जाना ?' चकित होकर उसने मंजरी से पूछा।

तुम्हारे दुर्गपाल बहुत ही हल्का पकड़ते हैं उसी से।' मंजरी स्पष्ट किन्तु धीमे स्वर में बोली।

आम्रभट को तनिक क्रोध आ गया। 'तुम्हारे दुर्गपाल' वंथली में कट मरने गए हैं फिर भी यह स्त्री बार-बार उसे बात के बीच में लाती है। उसने मंजरी पर एक दृष्टि डाली। मंजरी का अभिप्राय अपमान करने का नहीं था। काक प्रतीष्ठा बढ़ाने का भी अभिप्राय उसका नहीं था। जिस प्रकार माँ अपने पुत्र को सलाह दे ऐसी ही सरलता से उसने यह बात कही थी।

'यदि आपने हल्का पकड़ा होता,' देवा नायक कहने लगा, 'तो उसकी मृत्यु निश्चित थी।

यह बात आंबड़ बहुत पहले समझ गया था, किन्तु देवा का इस प्रकार स्पष्ट कहना उसे बहुत बुरा लगा। किन्तु मंजरी के सामने इस विचित्र परिस्थिती में, क्रोध दिखाना उसने उचित नहीं समझा। उसने हँस कर कहा।

'देवी। मेरी यह टेव किसी प्रकार नहीं मिटती। हाँ, आप इस समय कैसे निकल पड़ीं ? अभी कुछ हो जाता तो ?'

'मैं तो गढ़ देखने निकली हूँ।'

'हम सब क्या मर गए हैं ?'

'नहीं किन्तु सोमेश्वर नहीं है तो उसके स्थान पर दुर्गरक्षक मैं ही हूँ न ?'

आम्रभट तनिक हंस दिया।

'बहुत खूब ! इससे अच्छा और क्या हो सकता है ?'

'हंसने की बात नहीं,' मंजरी ने गम्भीर होकर कहा, 'तुम्हारे दुर्ग-पाल के आने तक इस गढ़ की रक्षा करती ही है।'

'तुम्हारे दुर्गपाल' ने फिर आम्रभट पर आघात किया।

'परन्तु, यदि खाद्य समाप्त हो जाय तो—'

'तो भूखे पेट, मंजरी ने हंसकर बात पूरी की 'चलो मैं नहाकर नित्यकर्म करलूँ, फिर मुझे शस्त्र प्रयोग करना सिखाओ।'

'आप शस्त्र चलाना सीखना चाहती हैं ?' मंजरी का शिक्षकपद

लेने की आशा से आम्रभट का हृदय उछल पड़ा।

'हाँ, एक ही घर में हम दोनों को योद्धा बनना है।'

अनुपस्थित काक की निरंतर उपस्थिति से बेचारा आँबड़ कट गया, और कोई उपाय न सूझने पर मौन ही रहा।

७

आम्रभट ने जिस समय युद्ध कला सिखाने की स्वीकृति दी उस समय तीन बातों पर उसने विचार नहीं किया था। एक तो उसकी शिष्या को धूप, परिश्रम, थकान की मंजरी को चिन्ता नहीं थी। अपरिचित व्यायाम से हाथ थक जाते, अंग-अंग में पीड़ा होने लगती, सिर दुखता, किन्तु रात होने तक वह पल-भर के लिए भी विश्राम नहीं लेती थी और न आँबड़ और देवा को विश्राम लेने देती थी।

और मंजरी की बुद्धि? उसने कभी शस्त्र न चलाए थे, किन्तु काक को, त्रिभुवनपाल को ओर काश्मीरादेवी को शस्त्रों का प्रयोग करते बड़े ध्यान से देखा था। कई बार यह भी पता नहीं लगता कि वह मंजरी को सिखा रहा था या मंजरी अपने आप सीख रही थी।

मंजरी आँबड़ के धीरज की कठोर परीक्षा ले रही थी। घूमना-फिरना, हंसना-बोलना, उसे शस्त्रों का प्रयोग सिखाना और सिखाते-सिखाते अनजाने में उसका शरीर छू लेना—फिर भी, अपने और अपना प्रियतमा के मध्य में एक अनुपस्थित व्यक्ति द्वारा निमित अभेद्य वातावरण को सदा देखते रहना—आम्रभट का विश्वास था कि जब से प्रणयसृष्टि का निर्माण हुआ तभी से ऐसी विचित्र कसौटी पर अन्य कोई प्रेमी न चढ़ा था। कुछ समय तक उसने इस अभेद्य वातावरण को भेदने का भी यत्न किया। उसने कई व्यक्तिगत बातें कहीं, जीवन के बहुत से प्रसंग सुनाए, आशाओं के सुनहले रंगों को चित्रित करने का

प्रयत्न किया। इन सबके प्रति मंजरी ममता से देखती, हंस देती, बोलतीं, सहानुभूति प्रदर्शित करती और सलाह देती—किन्तु उसके आस-पास का काकमय वातावरण जैसा था वैसे ही रहा। आम्रभट के सभी प्रयत्न निष्फल हुए।

दो-चार दिन व्यतीत हो जाने पर भी देख-भाल करने के कारण रेवापाल ने गढ़ को जीतने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इसलिए आम्रभट का संपूर्ण समय मंजरी को शस्त्र-कला सिखाने में ही व्यतीत होता था। इन दिनों उसका धीरज धरम सीमा पार कर गया था। दिन भर उसे काक के विषय में सुनना पड़ता था। रात को स्वप्न में भी काक ही दिखाई पड़ता था। काक के प्रति उसका मानसिक वैर बढ़ता गया।

उसे रह-रहकर यह विचार आता था—काक जूनागढ़ के घेरे में मर जाय तो? एक बार आने के पश्चात् यह विचार रह-रह कर आने लगा। वह उसे घायल अवस्था में देखने लगा, मरा हुआ देखने लगा। उसने उसके शव को चिता पर जलते देखा। उसे बड़ा आनन्द हुआ। इस विचार के आने के थोड़ी ही देर पश्चात् उसकी मंजरी से भेंट हुई। उसे दूसरा विचार आया—काक मर जाय तो मंजरी का क्या होगा। उसकी क्या दशा होगी? फिर उसके प्रेम का परिणाम क्या होगा?

संध्या हो गई थी। मंजरी तनिक उदास थी। दोनों गढ़ के द्वार की ओर निकल पड़े। चार-पांच दिन के साहचर्य के कारण दोनों खुलकर बातें करते थे। आंबड़ को तो एक ही विचार आ रहा था—काक मर जाय तो मंजरी की क्या दशा हो? बात करते-करते मंजरी पुराने प्रसंगों को स्मरण करके सुना रही थी। आम्रभट का ध्यान एक बात पर विशेष रूप से जाता था, मंजरी की बातों में उदा महेता का नाम कभी न आता था। कई बार ऐसे प्रसंग आ जाते थे जहां उसका नाम लेना आवश्यक हो जाता था किन्तु ऐसे अवसरों पर जबान पर आ जाने पर भी वह उसका उच्चारण नहीं करती थी।

आज आम्रभट से नहीं रहा गया, 'देवी! हमारे खम्भात में भी

दुर्गपाल के विषय में कई बातें प्रचलित हैं।' वह बोला।

मंजरी ने तनिक प्रयत्न करके पूछा, 'ऐसा ?'

'आपको वह वहीं से लाए थे न ?'

'हाँ।'

'मेरे पिता सदा आपका गुण-गान करते रहते हैं।' आंबड़ ने सफेद झूठ बोला।

मंजरी मौन रही। उसकी आँखें स्थिर हो गईं।

'आप खम्भात से कैसे भागीं कहिए न ?' आँबड़ ने नया प्रश्न किया।

मंजरी तनिक मुस्कराई—'दुर्गपाल ले आए।' उसके स्वर में मधुरता थी।' मुझे अगले दिन साध्वी बनाने वाले थे और साध्वी बनने से पहले मैं मरने का निश्चय कर चुकी थी। यह तो तुम्हारे हेम-चन्द्राचार्य को लेने के लिए आए थे। किन्तु उसने जाने से मना कर दिया बस उसके स्थान पर मुझे उठा लाए।' वह हँस पड़ी। उसके हास्य में प्रणय की मधुर झंकार थी। खंभात से हम डोंगी में चले। जिस समय मुझे चेत हुआ तो इनके प्रति मुझे तिरस्कार था—वह फिर हँसी और आंबड़ के कान में मानो रस-सागर उछल पड़ा।

'और अब······?' परोक्ष कटुता से आंबड़ ने पूछा, किन्तु साथ ही हँस दिया।

उस शांत और नीरव संध्या में भी उसने मंजरी का मुख आलौकिक प्रकाश से चमकता हुआ देखा।

'अब, उसके स्वर में वीणा जैसी झन्कार थी' 'वह मेरे देवता हैं।'

'दुर्गपाल अद्भुत व्यक्ति है,' आंबड़ ने कहा।

'अद्भुत !' मंजरी ने चमकती हुई आंखों से कहा, 'तुम सब उन्हें क्या जानो ? वे जीते हैं इसलिए मैं भी जीती हूं।

पल-भर तक मंजरी शांत रही। आम्रभट का हृदय भर आया। उसके मस्तिष्क में चक्कर काटता हुआ विचार बाहर निकल पड़ने के

लिए आतुर हो गया। वह कुछ समझा कुछ न समझा और बोल पड़ा 'ईश्वर न करे—उन्हें कुछ हो गया तो ?—वह बोला और फिर पछ-ताया। कैसा प्रश्न था ? और वह भी किस से ? उसका अपनी चिह्वा खींच लेने का मन हुआ। मंजरी क्रोधित नहीं हुई। ऐसा लगा, यही प्रश्न उसके मस्तिस्क में भी घूम रहा था। पल भर के लिए उसकी आँखों में घबराहट भी आई, उसके स्वर में शब्दों से भी अधिक करुणा का हृदयद्रावक भाव सुनाई पड़ा।

उसने सिर ऊपर उठाया।

'उनके मरने पर, मैं भी मर जाऊँगी।'

शब्द सीधे स्पष्ट और सरल थे। उनके उच्चारण में अपूर्व शांति थी, फिर भी आम्रभट की दृष्टि में सौंदर्य की यह अप्रतिम मूर्ति—इन शब्दों में ही मानी स्वयंभू अग्नि में जलती दिखाई दी वह एक भी शब्द नहीं बोल सका। मंजरी म्लान मुख से रेवा की ओर देखने लगी।

'देवी !' स्वर संयत करके आंबड़ बोला, 'दुर्गपाल को कुछ नहीं होगा, वह तो अमर हैं।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।' मंजरी ने अस्पष्ट और खिन्न वाणी में उत्तर दिया 'यम को उनके निकट आते डर लगता है।' दोनों वहाँ से मुड़े और अपने स्थानों पर चले गए।

आंबड़ की चेतना में काक के मरने पर निराधार बनी मंजरी आकर खड़ी हो गई। यह गर्विष्ठा और सुन्दर स्त्री, सूखी और जलते पत्तों के समान, बिना अग्नि के जल जाने वाली थी। फिर भी ऐसी स्त्री को—जो ऐसे प्रसंग में जीवित रहने की कल्पना तक नहीं कर सकती थी—ऐसी स्त्री को वश में करने की आशा की जा सकती हैं ? आंबड़ का सिर घूमने लगा। मंजरी काक के वातावरण से ही आच्छादित रहने वाली, और यदि काक अग्नि की भेंट हो जायेगा तो उसकी आंच से प्रज्वलित इसी वातावरण में वह जल मरने वाली थी। वह विचार आते ही अल्पता की अधम-से-अधम दशा में जा गिरा। जिस मनुष्य

ने इस स्त्री पर विजय प्राप्त की थी वह उससे इतना बड़ा, बुद्धिशाली और शूर वीर था कि उसके स्थान को स्पर्श करने तक की योग्यता उसे अपने आप में नहीं दिखाई पड़ी। उसका हृदय बैठ गया, आशाएँ धूल में मिल गईं, अल्पता में मंजरी के प्रेम बिना जीवन व्यतीत करना उसे व्यर्थ-सा लगा।

'मंजरी! मंजरी!' अपने कमरे में वह मन-ही-मन चिल्लाया 'तुझे भगवान् ने ऐसा क्यों नहीं बनाया?' उसकी निद्रालस आँखों ने एक लम्बी और तेजस्वी देवी, आत्मतेज से अन्धकार को चीरते हुए, दूर, दूर जाती हुई देखी। उसके कल्पना मन्दिरमें उसने उसे सिंहासन पर बैठे देखा। उसने नमस्कार किया। आँखें कब बन्द हुईं यह वह न जान सका किन्तु जब वह उठा तो उसका उद्वेग कुछ-कुछ कम हो गया था। निराधार हृदय की शक्ति उसे अनुभव हुई। उसे अपनी चिन्ता नहीं थी। भले ही काक मंजरी को ले जाय, भले ही मंजरी उस पर ध्यान न दे—किन्तु वह हतोत्साह व्यक्ति, उसके लिए अपने प्राण अवश्य देगा। उसके भाग्य में कोई रस शेष नहीं रह गया था। काक और मंजरी के जीवन-रस में वह क्यों न वृद्धि करे? उसके मस्तिष्क में विचित्र पवित्रता भरे विचार उठने लगे। वह अपने आप को काक और मंजरी के सुख का अधिष्ठाता समझने लगा, और इस पद को निभाने के लिए उसने सर्वस्त्र होम देने का निश्चय किया। विचारों की धुन में वह समर्पण के शिखर पर पहुंच गया था।

जिस समय आँबड़ महेता इस प्रकार विभिन्न भावों और विचारों के झूले में झूल रहा था उस समय रेवापाल लाट पर एकछत्र अधिकार स्थापित कर रहा था। प्रत्येक गाँव में पट्टणी अधिकारियों को बन्दी बनाने या मार डालने और उनके स्थान पर लाट के अधिकारियों को नियुक्त करने में व्यस्त था। पट्टणी सेना के खम्भात तक आ जाने की शंका से उसने अपनी सेना खेटकपुर के निकट एकत्रित करनी आरम्भ कर दी थी। भृगुकच्छ का गढ़ लेने की आवश्यकता नहीं समझी। गढ़

में नाममात्र के लोग हैं यह वह जान चुका था। दूर-दूर तक उसकी आज्ञा का ढिंढोरा पीट दिया गया था। अतः किसी के लिए नदी पार करके गढ़ में जाना सम्भव न था।

गढ़ में अनाज नहीं था, अतः कुछ दिनों पश्चात् शस्त्र डाल देने के सिवा गढ़वासियों के लिए और कोई चारा नहीं था।

८

वंथली में अक्षय तृतीया के अवसर पर खूब हलचल रही। एभल नायक मर चुका था और उसे लौटाने की जूनागढ़ में किसी को चिन्ता नहीं थी। जगदेव परमार के घाव अभी भरे नहीं थे वह वहाँ की हलचल में भाग न ले सकने के कारण बिस्तर में पड़-पड़ा कुढ़ रहा था।

राजा का स्वास्थ्य सुधर गया था जब से उनका स्वास्थ्य सुधरा तब से पट्टणी सेना में विचित्र उत्साह आ गया था। ऐसा मानो वह गिरनार को कंकड़ के समान उठा फेंकेंगे। इसका कारण राजा और रानी दोनों थे। पत्थर की चौकी के सामने लड़ते समय राजा के स्वभाव में कुछ परिवर्तन हो गया था। परिपाटी के अनुसार युद्ध करने की प्रणाली ही उन्होंने स्वीकार की थी और गर्व-भरा शौर्य दिखाने और घेरे की योजना बनाने को ही राजा के योग्य गौरव मानने थे। किन्तु चौकी के सामने उनके सिंह के समान स्वभाव ने व्यतिगत पराक्रम के रक्त का आस्वादन किया था, तब से राजसी ठाठ घेरा डालने में उन्हें निर्बलता दिखाई पड़ी। मन्त्रियों और सेनापतियों की वीरता के यश से लाभ उठाना उन्हें कायरता लगा।

अब उनके हाथ प्रलय ढाने को व्यग्र हो गए। उनका हृदय युद्ध में कूद पड़ने के लिए व्याकुल था। उनकी इच्छा अपने ही हाथों से खेंगार का मानमर्दन करने के लिए उछलने लगी। स्वयं ही गिरनार को भूमि-

सात् करने की उनकी महत्वाकांक्षा थी। उन्होंने सेना के व्यूह रचने आरम्भ किए, सेनापतियों को आज्ञाएं देनी प्रारम्भ कीं और खेंगार को उसके गढ़ में कुचल डालने का महाप्रयास प्रारम्भ किया।

राजा की इन सभी योजनाओं में जीजादेवी का भी हाथ था। कुछ लोग अन्दर-ही-अन्दर यह भी कहते थे कि ये सब योजनाएं उन्हीं के कारण बन रही हैं। वह निर्बल भी हो गई थीं। आँखें अधिक स्थिर एवं अधिक अन्दर धंस गई थीं। जो जूनागढ़ के घेरे का विचार तक न करती थी वही आज जूनागढ़ के लिए काल बन बैठी। उसके शांत और गहन हृदय में से द्वेष और आवेश की लहर पर-लहर आने लगी, जिनमें सम्पुर्ण पट्टणी सेना भी बह रही थी। इस आवेश और द्वेष का मूल निकट रहने वाले चतुर लोग सरलता से देख सकते थे। आज कितने ही दिन हो गए काक का कोई समाचार नहीं मिला था। कोई बोलता न था किन्तु सबके मन में यह विश्वास जम गया कि काक मर गया। जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते गए और यह विश्वास दृढ़ होता गया वैसे-वैसे जूनागढ़ के प्रति लीलादेवी का क्रोध और द्वेष बढ़ता ही गया। राजा ने प्रथम बार भावहीन रानी में उत्साह के अंकुर देखे, रानी ने प्रथम बार जयदेव को राज्यपद के आडम्बर से अलग आत्म-शौर्य में शोभित देखा। शरारत करने पर तुले दो बालकों पर जैसे रंग छा जाता है वैसे ही इन दोनों पर भी रंग छा गया था। इन दो के साथ और दूसरे दो व्यक्ति मिल गए थे। त्रिभुवनपाल दण्डनायक और काश्मीरादेवी। उत्तर में एक सेना के साथ होने पर भी काक के विषय में सुनकर वह आ पहुंचे और रानी के निश्चय को और भी दृढ़ बनाने लगे।

मुंजाल महेता यह उत्साह देखकर बहुत प्रसन्न थे। उन्हें जूनागढ़ के घेरे से अधिक जयदेव के स्वभाव की चिन्ता थी। जयदेव में शौर्य प्रकट हुआ देखकर वह निश्चिंत हो गए। जयदेव को व्यर्थ आडंबर रखने का इस समय अवकाश नहीं था। बाबरा भूत था जगदेव परमार

की सहायता से भय उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं थी वह पट्टणी सेनापतियों के साथ मित्र के समान हिलते-मिलते थे और युद्ध की योजना बनाते थे। अपने ही शौर्य से अपनी सर्वोपरिता को प्रमाणित करने के लिए उनके प्राण व्याकुल थे। राजा और रानी में सम्बन्ध प्रगाढ़ हो रहा था यह भी उनकी दृष्टि के बाहर नहीं था। विश्वकर्मा के गर्व से वे सभी समस्याओं में रस लेते थे।

## ६

एक दिन मध्यरात्रि को समर्थ खिड़की खोलकर बाहर झाँक रही थी। उसे ऐसा लग रहा था मानो पृथ्वी अपनी धुरी से खिसक गई हो। उसके पिता का जी ठिकाने नहीं था इसलिए वह दिन-भर बाहर रहते थे। राजा को जाने क्या उछल-कूद करने की सूझी थी। लीलादेवी तो विकराल जगदम्बा-सी लगती थी। 'प्रेमकुँअर,' समर्थ बड़बड़ाई, 'वह पेमला' पागल हो गई थी क्योंकि उसके 'महेता' को घोड़े पर चढ़कर मेंदरढ़े जाना पड़ा था। रहा वाहड़महेता तो वह जाने कहाँ पाताल में घुस गया था कि दिखाई ही न पड़ता था। बाहर से सभी शांत रहने का प्रयत्न कर रहे थे किन्तु अन्दर-ही-अन्दर सभी अस्थिर थे। एक घेरे के लिए कैसे लोग इतने पागल हो जा सकते हैं यह वह न समझ सकी, और इतना दुःख किसी और पर पड़ा हो यह भी समर्थ न जानती थी।

कभी-कभी वाहड़ महेता इस खिड़की के सामने आया था, अब क्यों नहीं आता, सजल-नयन होकर समर्थ ने विचार किया। 'काक पकड़ा न गया, और वाहड़ महेता का दादा मन्त्री नहीं था—अतः उसके स्वप्न तो नष्ट होगए अब उसका और उसके महेता का क्या होगा?' पशोपेश में पड़कर उसने प्रश्न किया। उत्तर में किसी की पग-ध्वनि सुनाई

पड़ी। यदि यह पग-ध्वनि वाहड़ की निकल आए तो उसने तुरन्त शासनदेवी पद्मावती को चुनारी चढ़ाने को मनौती मानी। उसने अंध-कार में बहुत ध्यान से घूरकर देखा और नवपद का जाप किया।

मनौती और जाप फलीभूत हुए। शीघ्र ही वाहड़ महेता का स्वर आया—'समर्थ !'

'अरे !' कहकर समर्थ खिड़की से आधी बाहर लटक गई, 'मैंने मनौती मानी ही थी कि तुम आगए।'

'धीरे बोल।'

'क्यों धीरे बोलूँ ?' अनभिज्ञता और सरलता से समर्थ ने पूछा।

'मैं एक शुभ-समाचार देने आया हूं।' कवि का हृदय उमड़ा।

'क्या ? बताओ—बताओ—जल्दी बताओ ?'

:अरे ! तू धीरे बोल, नहीं सम्पूर्ण गढ़ एकत्रित हो जायगा।'

'हाय ! आदत जो पड़ी है ऐसे बोलने की, क्या है ?'

'किसी को कहना मत !'

'तुम तो मुझे बिल्कुल मूर्ख समझते हो।' होंठ चबाते हुए समर्थ बोली।

'देख, मैं एक समाचार लाया हूं जिससे हमारा ब्याह पक्का हो जायगा।' उत्साह से भरकर वह बोला।

'सच ?'

'अरे ! धीरे, मुझे समाचार मिला है कि काक भट जीवित है।'

'चूल्हे में जा···।'

'सुन ! उसे बन्दी बनाकर रा' के महल में रखा गया है।'

'झूठ !' समर्थ बोली।

'अरे, मैं अपने कानों से सुनकर आया हूँ। मैं पिताजी के साथ जूनागढ़ गया था वहीं सुना कि उसे चोट तो बहुत लगी है, किन्तु खेंगार उसे महल में रखकर उसकी टहल कर रहा है। अब मैं उसे छुड़ा लाऊं बस फिर—'

'फिर पिताजी मुझे तुम्हारे साथ ब्याह देंगे । ठीक है न ?'

'अरे धीरे—' कुढ़कर वाहड़ बोला ।

'हाँ... अच्छा ! धीरे... ।' चिढ़कर समर्थ ने कहा, 'जन्मी तभी से मैं तो ऐसे ही बोलती आई हूँ ।'

'अब मैं जाता हूँ, ' वाहड़ ने कहा, 'तू आराम से सोना ।'

'महेता—ओ महेता !'

'क्या है ।'

'मैं अब समझी ?'

'क्या ?'

'मेरे पिता जी मुझे ब्याहते क्यों नहीं, यही......।'

'क्यों ?'कुछ चिन्तातुर मुख से वाहड़ ने कहा ।

'हम कुछ मनौती जो नहीं मानते इसीलिए ।'

'इससे क्या है, तू कहे वह मनोती मान लूँ । तेरे बिना मेरा जीवन सूख जायगा ।' भावुक वाहड़ बोला, 'कठिन-से-कठिन मनौती मानूँ—तू कहे तो ।'

'अच्छा एक काम करो । किसी तीर्थ का उद्धार करने की मनौती मानो ।'

'मैं तो अड़सठ ही तीर्थों का उद्धार कर दूँ......'

'हाय—हाय—इतना अधिक नहीं ।'

'तो ?'

'एक पर्याप्त होगा ।'

वाहड़ इस भोली लड़की की ओर प्रशंसा-भरी दृष्टि से देखने लगा । उनके हृदय में तीव्र प्रणय-संगीत गूँज उठा ।

'अच्छी बात है समर्थ, तू मिल जाय तो मैं शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करवाऊँ—बस ?' गम्भीर स्वर में वाहड़ बोला । उसका तेजस्वी मुख दीप्त हो उठा ।

समर्थ को संतोष हुआ, 'महेता ! अब मेरा गीत पूरा हो जायगा ।'

'ऊँह !' कहकर वाहड़ महेता कल्पना के घोड़े पर चढ़कर विहार करता हुआ वहाँ से चला। समर्थ के हर्ष की सीमा न रही। उसे लगा कि वाहड़ अवश्य ही काक को छुड़ायगा। फिर उसका पिता उसके साथ उसका ब्याह कर देगा, और फिर वह दोनों मिलकर शत्रुंजय का जीर्णोद्धार करेंगे। उसके नन्हें-से हृदय के लिए यह बात बहुत बड़ी थी, उसे लगा कि इस समय सम्पूर्ण राजगढ़ को खुशी से नाच उठना चाहिए। काकभट जीवित हैं यह उसके वाहड़ ने पता लगा लिया। कितनी अच्छी बात है ! किन्तु यह अच्छी बात जानने-सुनने वाला है कौन ? वह एकदम उठी, कुछ हँसी और कूदकर बाहर निकली। 'प्रेमकुंअर क्या कर रही होगी ?' सोचते हुए वह चुपचाप पिछली सीढ़ियों से जहाँ शोभ महेता रहते थे, वहाँ गई।

शोभ महेता तो मेंदरड़े गए हुए थे इसलिए उसने साहस करके धीरे-से कड़ा खड़खड़ाया।

'कौन हैं ?' प्रेमकुंअर का घमंड-भरा प्रश्न सुनाई पड़ा।

प्रेमकुंअर को राज्य-कार्य के प्रति एकदम तिरस्कार हो गया था। उसके महेता को मेंदरड़े भेजा गया, भला यह भी कोई बात है ? उसकी न जाने कितनी भावनाएँ दबी पड़ी रह गयी थीं—कि किसी ने कड़ा खड़खड़ाया। उसका हृदय धड़क उठा—'क्या उसके महेता आगए ?' एक निःश्वास लेकर उसने द्वार खोला कि समर्थ उससे लिपट गई। पति की प्रतीक्षा करती प्रेमकुंअर को समर्थ के आलिंगन से कंपीकपी छूट गई। उसने अपने को एकदम छुड़ाया और बड़बड़ाई—तू पगली कहाँ से आगई ?'

'प्रेम भाभी ! प्रेम भाभी !' समर्थ प्रेमकुंअर के कन्धे पर सिर रखकर हर्ष से हाँपने लगी, 'मेरा ब्याह पक्का हो गया।'

'किसके साथ ?' तिरस्कार से प्रेमकुंअर ने पूछा। अपने ब्याह को छोड़ दूसरों के ब्याह का कोई महत्व हो भी सकता है यह वह न समझ सकी।

'वाहड़ महेता। वह काकभट को छुड़ाकर लाने वाले है।'

'काकभट ?' चतुर नागरनी के कान खड़े हो गए।

हाँ, उसे बन्दी बनाकर रा' ने महल में जो रखा है। मेरे वाहड़ महेता उससे भेंट कर आए हैं।'

'हैं!'

'हाँ, तू देखती जा बस।' कहकर समर्थ पागल-सी हँसने लगी। प्रमकुंअर इस बात का महत्व समझती थी।

'जाकर सो जा, नहीं तो पागल हो जायगी।' कहकर गर्व से प्रेम-कुंअर समर्थ को झिड़कती हुई वहाँ से चली गयी।

'किन्तु किसी को कहना मत, भाभी तुम्हें मेरी सौगन्ध है।'

'तेरी सौगन्ध,' कहकर प्रेमकुंअर अदृष्ट हो गई और इस हृदय-हीन मित्र के प्रति मौन तिरस्कार प्रकट करती हुई समर्थ वहां से चली गई।

लीलादेवी होंठ पीसती हुई अपने कमरे में इधर-से-उधर घूम रही थी। उसकी आँखों में नींद नहीं आती थी। उसका हृदय उद्विग्न था। उसे विश्वास हो गया था कि काक अब संसार में नहीं है। उसको झुकाने वाला, लाट की महत्ता का प्रतिनिधि, उसकी महत्वाकांक्षा को उत्तेजित करने वाला वीर इस ससय किसी घाटी में मरा पड़ा होगा। श्वान या सियार उसके मांस को सूँघ रहे होंगे। भृगुकच्छ में उसकी स्त्री आशा-भरे हृदय से उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। उसके शांत और कठोर हृदय में मंजरी के लिए भी अनजाने ही तनिक सा स्थान बन गया।

कमरे में एक छोटा दीपक जल रहा था। एकाएक द्वार खुला और प्रेम आई। रानी ने बनावटी शाँति से उसकी ओर देखा। रानी का कठोर और भावहीन मुख देखकर प्रेम तनिक संकुचित होकर खड़ी हो गई।

'देवी! एक शुभ-समाचार लाई हूँ।'

रानी को इस समय विनोद पसन्द नहीं था। उसने कठोर होकर पूछा—'क्या है ?'

'समाचार मिला है कि काकभट जी जीवित हैं। प्रेमकुंअर जल्दी-जल्दी बोली।

लीलादेवी चौंकी, 'सच ?'

'हाँ, जूनागढ़ में रा' के महल में बन्दी हैं। अस्वस्थ भी हैं।'

रानी के भाल की नसें उभर आईं— 'किसने कहा ?'

'समर्थ ने।'

रानी निराश हो गई, 'उसने कैसे जाना ?'

'वाहड़ महेता ने उससे कहा।'

'वाहड़ ?' लीलादेवी ने अधीर होकर पूछा, 'उसने कैसे जाना ?'

'वह जूनागढ़ में काक से भेंट कर आया है।'

'जूनागढ़ जाना क्या इतना सरल है। कि वहाँ जाकर उससे भेंट कर आया ? चल यहाँ से, ऐसी व्यर्थ की गप्पों पर कहीं विश्वास किया जाता है ! जा, जाकर सो जा।' तिरस्कार से रानी ने कहा, 'प्रातःकाल बात करूँगी।'

प्रेमकुंअर अपमानित हुई, इसलिए नाक चढ़ाकर वहाँ से चली गई। 'कितना घमंड है,' मन-ही-मन वह बड़बड़ाई, 'यह तो सोलंकी के घर आई है इसलिए सब कुछ निभ जाता है।'

लीलादेवी की अधीरता बढ़ी। उसकी अकुलाहट की सीमा न रही। अन्त में उसे एक मार्ग सूझा और उसने मंगी को बुलाया—'मंगी ! जा, देख आ, महाराज क्या कर रहे हैं ? कहना मुझे एक आवश्यक काम से तुरन्त भेंट करनी है।'

'इतनी रात गए ?'

'इससे तुझे क्या ?'

मंगी तुरन्त गई और शीघ्र ही लौट आई।

'देवी ! देवी! महाराज पधारे हैं।' जयसिंहदेव उत्साह से डग भरते हुए आए। उनकी आँखें अधीरता से चमक रही थीं।

'मैंने नींद से तो नहीं जगाया ? रानी ने मुस्करा कर पूछा।

'नहीं रे, मैं अभी-अभी एक झंझट से छूटकर आ रहा हूँ। क्यों, क्या बात है ?' रानी की गोद पर हाथ रखकर वह बैठ गए।

'एक समाचार मिला है।'

'क्या ?'

'काक जीवित है और रा' के महल में बन्दी है।

'राजा ने आंखें फाड़कर देखा, 'कौन यह गप्प लाया है ?'

'बताती हूँ किन्तु यह गप्प है या नहीं यह खोज निकालना आपका काम है। शोभा बहू प्रेमकुँरी यह समाचार लाई है।'

'उसे यह समाचार कहाँ से मिला ?'

'समर्थ से, और समर्थ से कहा वाहड़ ने। कहते हैं वाहड़ ने उससे जूनागढ़ में भेंट की है। ऐसे कैसे हो सकता है ?'

राजा खिलखिला कर हँस पड़े, वाहड़ तो कवि का कवि रहा ! तब तो बात सच है। वाहड़ शंका समाधान करने अभी अपने बाप के साथ जूनागढ़ जाकर आया है। मैं उदा महेता से अभी-अभी यही बात कर रहा था।

'समाधान !' लीलादेवी के सहृदय में होली सुलग उठी।

'वह तो व्यर्थ में प्रयत्न कर रहे हैं, रा' ने स्पष्ट ना कर दी है। हाँ, तुम्हारी बात ठीक लगती है। सम्भव है वाहड़ को कुछ पता लगा हो।'

'ठीक-ठीक पता लगवाइए।'

'अभी लो। मंगी ! जा, बाहड़ को बुला ला। महाराज ने आज्ञा दी।

१०

राजा में बहुत पतिवर्तन हो गया था। उनकी एकाग्र आंखें, फूलते नथुने, और उनके शरीर की धनुष-सी सुघड़ता उनके हृदय के उत्साह को प्रकट करते थे। वह न थकते थे, न सोते थे, न उनकी शक्ति कम होती थी, न कोई वस्तु उनके ध्यान से बाहर रहती थी और न किसी साधन का प्रयोग करना ही वे चूकते थे। विलास और सत्ता के प्रेमी-से वह एकदम प्रलय के समान बन गए।

अधिकांश मनुष्यों के स्वभाव ऐसे होते हैं कि उन में निरन्तरता, एक-तारपन सदा ही दृष्टिगोचर होता है। या तो उनमें उग्र एकाग्रता, या स्थिर कर्तव्य परायणता, या सुमधुर रसिकता या निश्चिन्तता या निर्बलता निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। कुछ ऐसे भी होते हैं जिन के स्वभावों में विभिन्न समयों पर विभिन्न तरंगें आ जाती हैं; इतना ही नहीं कभी-कभी तो यह तरंगें इतने वेग से आती हैं कि देखने वाले को यह भ्रम हो जाता है कि यह व्यक्ति कहीं पागल न हो जाय। जयसिंह-देव महाराज ऐसे ही तरंगी स्वभाव के व्यक्ति हैं। स्वाभिमान को छोड़ कर उनके स्वभाव में और कोई वस्तु स्थायी न थी। पाटण प्रतापी नरेश, सोलंकी कुल-शिरोमणि, विजय-सेना के नायक, और गुजरात की अतुल समृद्धि के स्वामी अपने ही गर्व में निमग्न रहते थे। किन्तु तरंगें आते ही वह सब छोड़कर विलासी बन जाते, घड़ी में स्वार्थी और शंकाशील हो जाते, घड़ी में उदार और निर्मल हृदय बन जाते। कभी तो उनके चातुर्य की प्रतापी चमक सभी को चकाचौंध कर देती, कभी औदार्य की ही जलधारा चारों ओर बहने लगती। जो बाबराभूत की की सहायता से अमानवीय होने का दम भरते थे वह कभी-कभी मानव हृदय की सद्भावनाओं को बड़ी सरलता से प्रकट कर सकते थे। हिमालय के प्रदेश में प्रकृति जैसी अनिश्चित होती है वैसी ही महाराज की थी। पल में प्रखर तप छा जाता है और पल में आकाश मेघाच्छन्न

हो जाता है, अटूट वर्षा थम जाती है और प्रकृति मुस्कराने लगती है हरियाली और हिम दोनों का सौंदर्य वहाँ दिखाई पड़ता है और सब परिवर्तन अनजाने ही हो जाते हैं। इन स्वप्नों में से किसी का भी विशेष समय पर जो स्वरूप होता है वह प्रचंड तो होता ही है। महाराज को भी ऐसी ही प्रचण्ड धुन लग गई थी। उन्होंने जूनागढ़ का विनाश करने के लिए तांडव-नृत्य इस प्रकार प्रारम्भ किया मानो वह स्वयं रुद्र के अवतार हों।

बीमारी से उठने के पश्चात् महाराज में यह तरंग इस प्रकार उठी कि जो लोग उनसे वर्षों से परिचित थे वह भी चकित हो गए। बड़े-बड़े शूरवीर महारथी इस ज्वलन्त प्रताप को देखकर चकाचौंध हो गए थे। जो जगदेव की तल वार या बाबरा के आतंक से कभी भयभीत न हुए थे वह महाराज की इस धुन से डर गए। पुत्र की बीमारी से मीनलदेवी को जितनी चिन्ता हुई थी उससे भी अधिक चिन्ता यह धुन देख कर हुई। किन्तु उठती लहर को रोक देने वाला भी उनकी इन तरंगों को न रोक सकता था। जिसके उत्साह को उकसाने की आवश्यकता थी आज उसी के उत्साह को कोई कम कर दे तो अच्छा, ऐसा उन्हें लगा। चतुर, दूरदर्शी लीलादेवी इस तरंग को देखकर चकराई तो नहीं, हाँ वह भी कुछ विस्मित अवश्य हो गई। उसके चतुर हृदय को यह नवीनता, देखकर कुछ आनन्द हुआ, उसकी महत्वाकांक्षा कुछ-कुछ सन्तुष्ट हुई। उसे लगा यदि महाराज सदा ही ऐसी ही तरंग में भरे रहें तो पाटण कदापि दुस ह न हो।

मंगी के बाहर जाने पर महाराज रानी की ओर मुड़े। 'उदा एक नई युक्ति लाया है,' वह बोले।

कुछ भवें सिकोड़कर रानी ने पूछा, 'क्या ?'

'उदा ने रा' के भाणेजों को अपने हाथ में कर लिया है।'

'देशल और वीशल को ?'

'हाँ, वह दोनों हमारी महायता के लिए तैयार हैं।'

'किन्तु मुझे ऐसे देश-द्रोहियों पर विश्वास करना अच्छा नहीं लगता।'

राजा गर्व से हँसे, 'मैं उन पर विश्वास करूँगा ? मैं उन्हें भली भाँति जानता हूँ। खेंगार बड़ा भोला है कि आस्तीन के साँपों को घर में रख छोड़ा है। किन्तु उनके कारण जूनागढ़ हाथ लग सकता है।'

'किस प्रकार ?' तनिक अधीर स्वर में रानी ने पूछा।

'गढ़ में उन्होंने कितने ही सैनिकों को अपनी ओर मिला लिया है।'

अर्थात्,' तनिक तिरस्कार से रानी ने कहा, 'चुपचाप गढ़ में प्रवेश किया जा सकेगा ?'

'हाँ,' मुस्करा कर राजा ने कहा।

'महाराज !' रानी ने शांत स्वर में हृदय वेध डाले, ऐसे वाक्य कहे 'विश्वासघात से गढ़ लेना बुरा नहीं, किन्तु खेंगार की कीर्ति आपकी कीर्ति को मन्द कर देगी।'

ये शब्द महाराज को कोड़े-से लगे उन्होंने रानी की ओर कुछ अधीर होकर, कुछ क्रोध में, देखा। किन्तु रानी के तिरस्कार में सदा ही ऐसी तटस्थता रहती थी कि राजा प्रायः उससे अन्दर-ही-अन्दर डरता था।

'कीर्ति !' अधीर होकर जयसिंहदेव ने कहा, 'मेरी कीर्ति को खेंगार मन्द करेगा ?' देवी, युद्ध में कीर्ति विजेता को प्राप्त होती है। पराजित की कीर्ति कैसी ? जूनागढ़ जानता है और जिस-किसी साधन से वह जीता जा सके वही मेरा हथियार है।'

'हाँ,' हंसकर लीलादेवी बोली, 'किन्तु आपके पास जब आपको शोभा दे ऐसा अस्त्र है तो अशोभनीय अस्त्र उठाते ही क्यों है ? यदि आप गढ़ को शक्ति से तोड़ सकते हैं तो लोगों को फुसलाकर छिपकर प्रवेश करने से क्या लाभ ?'

उत्तर की प्रतीक्षा में रानी पल-भर के लिए रुकी। राजा ने उत्तर नहीं दिया। शक्ति और भेद दोनों का प्रयोग वह क्यों करना चाहते थे यह बात रानी को बताने जैसी नहीं थी। क्रोध, शत्रुता, आवेश के

धुँआधार में कभी-कभी उन्हें अपने हृदय में राणक देवी की ध्वनि दिखाई दे जाती थी, और जिस स्त्री ने बचपन में उनका तिरस्कार किया था उसे झुकाने की लालसा सदा से उनके हृदय में विद्यमान थी। यह सब वह कैसे लीलादेवी को बता सकते थे ?

कुछ देर पश्चात् राजा ने उत्तर दिया, 'जूनागढ़ गिर जाय तभी मुझे कुछ सूझेगा।'

'अच्छा ?' उत्तर की असंबद्धता देखकर रानी ने उदासीनता से कहा।

'अन्नदाता ! वाहड़ महेता आ गए हैं।' मंगी आकर बोली।

'बुला ला !' राजा तनिक मुस्कराकर बोले। रानी के साथ अधिक वाद-विवाद करने में उन्हें सार न दिखाई दिया।

वाहड़ ने अन्दर प्रवेश किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

'वाहड़ ! तूने जूनागढ़ में काक के विषय में कुछ सुना ?' राजा ने पूछा।

वाहड़ चकित हो गया। भला राजा को यह बात कहाँ से मालूम हो गई ?

'क्या सुना ?' शांत और सत्ता-भरे स्वर में लीलादेवी ने प्रश्न में संशोधन किया।

'मुझे लगता है कि भटराज जीवित हैं।'

यह सुनकर रानी की आंखें चमकीं।

'तो मुझसे कहा क्यों नहीं ?' राजा ने तनिक क्रुद्ध होकर कहा। 'अभी-अभी मुझसे सब बातें करके गया किन्तु इस सम्बन्ध में एक अक्षर भी नहीं कहा। तू भी अपने बाप के समान सब कुछ चुप-चाप करना सीख गया है क्या ?'

'महाराज !' नीचे देखते हुए वाहड़ बोला, 'क्षमा कीजिए। मेरा विचार········!'

'क्या विचार था ?'

'कि भटजी को छुड़ा लाकर महाराज को प्रसन्न करूं।' वाहड़ बोला।

लीलादेवी हँस पड़ी। राजा की आंखों में भी हँसी चमकी, क्रोध जाता रहा।

'वाहड़ ! इसी समय जा—'

'जो आज्ञा।'

'देशल और वीशल के लिए संदेशा भी तू ही लेता जा।'

'जी।'

'उनसे कहना विलंब करना मुझे पसंद नहीं। मुझसे आकर भेंट करनी हो तो एकदम आएं। तू लेकर ही आना। परसों सब यहां एकत्रित होंगे। यदि समय पर आने का उनमें साहस न हो तो कह देना कि जयसिंहदेव सोलंकी धावा बोलने के पश्चात् किसी की चिंता नहीं करेंगे।'

'जी।'

'और उनकी सहायता से काक को अवश्य छुड़ाकर लाना।' राजा ने कहा।

'इस समय काक के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।' रानी ने बात पूरी की।

'देवी ! भटराज जीवित होंगे तो निश्चय जानिए खाली हाथ न लौटूंगा।'

'परसों तुम चारों को यहां देखना चाहता हूं।'

'जो आज्ञा।'

'जा, शीघ्र जा।'

वाहड़ प्रणाम करके वहां से चला गया और मंगी भी जाने लगी।

और महाराज भी उठे।

'क्यों, जा रहे हैं ?'

राजा मुस्कराए, 'परमारी रानी कई दिनों से रूठी हुई है। कितनी

ही बार संदेशा भी भेज चुकी है।'

लीलादेवी हँस पड़ी, 'मैं नहीं रूठने की। पधारिए !' वह शांत और तटस्थ बनकर खड़ी रही। राजा ने उसकी ओर देखा और उसकी शांति और स्थिरता देखकर कुछ चिन्तित भी हुए। यह स्त्री ठीक-ठीक समझ में नहीं आती थी। उनका मन रात यहीं काटने का हुआ, किन्तु इस तलवार की धार-सी तीखी, तेजस्वी, और भावहीन स्त्री के साथ रात काटने का वह धैर्य न संजो सके। उन्हें तो इस समय कोई ऐसी चाहिए थी जो उन्हें हँसा सके, रिझा सके, उनसे झगड़ सके। वह मुस्कराकर वहां से चले गए।

लीलादेवी कुछ देर तक सोचती रही। उसके होंठों पर मुस्कराहट छा गई। वह आत्मतिरस्कार से कुछ बड़बड़ाई—'यह हीरा अनपरखा ही रहे।' फिर वह मंगी की ओर घूमकर बोली, 'मंगी, मैं सोती हूं।'

'जैसी देवी की इच्छा।' कहकर मंगी ने द्वार के सामने अपना बिस्तर लगाना प्रारम्भ कर दिया।

रानी के हृदय में न असंतोष था, न ईर्ष्या थी। जूनागढ़ के विजेता की वह पटरानी थी और काक जीवित है इस बात से उसके हृदय में शांति छा गई थी। वह निश्चित होकर सोने की तैयारी करने लगी।

## ११

दूसरे दिन रात के समय······! देशलदेव जूनागढ़ में अपनी हवेली के सबसे ऊपर के कक्ष में बैठा था। पाटण के मंडलेश्वर का पुत्र और रा' खेंगार के भानजे का शरीर पन्द्रह वर्ष पहले पाटण में काक ने जैसा देखा था वैसा ही क्षीण था। उसका मुख स्वाभाविक कुरूपता

और आयु दोनों के प्रभाव से आकर्षणहीन था। उसकी आँखें पीली होते हुए भी तेजस्वी थीं। मूँछ मुँह में रखकर वह चबा रहा था।

वह आज व्यग्र था, मन के असंतोष को पाल-पोसकर उसने बहुत विशाल बना लिया था। इस असंतोष का मूल कारण उसका पाटण और सोरठ से सम्बन्ध था। इन दोनों प्रतापी सिंहासनों की छाया में उसका जन्म हुआ था।

वह सोचा करता था यदि कर्णदेव महाराज निपूते मर गए होते, अथवा जयसिंहदेव बाल्यावस्था में मर गया होता अथवा त्रिभुवनपाल जैसे वर्णशंकर और मुंजाल जैसे मत्र की उसे सहायता न होती तो आज वह पाटण का स्वामी होता। यदि खेंगार निपूता मर जाय या उसके पुत्र मर जायं तो वह जूनागढ़ का स्वामी भी बन सकता है। उसके दुर्भाग्य से दोनों सिंहासन उसकी दृष्टि के सामने थे फिर भी कभी निकट और कभी दूर दिखाई पड़ते थे।

इससे पहले वह ननिहाल में रहा, फिर पाटण में रहा किन्तु सोरठ को सहायता देने के कारण मुंजाल बिगड़ खड़ा हुआ और उसे पाटण से निकाल दिया गया। यहाँ आने पर उदार खेंगार ने आश्रय दिया किन्तु उसने भी पूर्णतः उस पर विश्वास नहीं किया। अन्त में थक-कर उसने पाटण और जूनागढ़ के बीच सन्धि करवा दी। जयसिंह-देव का कृपापात्र बनने का प्रयत्न किया। उसने उदा महेता के साथ सलाह करना प्रारम्भ किया, उसके द्वारा उसने जयसिंहदेव को मनाया, बड़ी कठिनाई से खेंगार के दृढ़ निश्चय को ढीला किया, परन्तु अब राणकदेवी बनी हैं। उसका असंतोष सीमा का उल्लँघन करने लगा। अब उसे किसी की चिन्ता नहीं है, चाहे जूनागढ़ पराजित हो चाहे पाटण उजड़ जाय और चाहे जयदेव राणकदेवी को उठा ले जाय—उसे किसी की चिन्ता नहीं। अब वह अपना अंतिम प्रयत्न कर रहा था—अपने भाग्य की अंतिम पँखुरी खोलने का निश्चय कर रहा है। किन्तु उसे खोलने की कोई युक्ति नहीं सूझती है। पिछले थोड़े दिनों

से एक योजना उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी और इस समय वही उसके मन में रमी हुई है। वह मूँछ मरोड़ कर मुस्कराया। कितनी सरल योजना !

कुछ दिनों पहले उसका भाई वीशल एक अच्छा समाचार लाया था और तभी से यह योजना उसके मस्तिष्क में आई थी। समाचार इतना ही था कि राणकदेवी छिपकर किसी परपुरुष की सेवा करती है। यह बात सुनकर देशलदेव को अपनी शंकाएं उचित लगीं? इस साध्वी दिखाई पड़ने वाली रानी की साधुता ही उसके किसी गुप्त पापाचार की साक्षी थी। अब यह पकड़ में आ गई है, ऐसा उसका विचार था।

वह जानता है जूनागढ़ की दुर्जयता का आधार वहाँ का गढ़ था, गढ़ का आधार उसके स्वामिभक्त योद्धा थे, यह योद्धा खेंगार की अडिगता पर टिके हुए थे और यह अडिगता देवड़ी की एकनिष्ठा पर निर्भर थी। यह एकनिष्ठा असत्य प्रमाणित हो तो खेंगार डिगे, खेगार डिग जाय तो सोरठी निराधार हो जायं, वह निराधार हो जायं तो गढ़ गिरे तो जयदेव को विजय प्राप्त हो—जयदेव जूनागढ़ ले ले तो फिर जूनागढ़ पर राज्य करने के लिए उसे किसी की आवश्यकता होगी ही। तो फिर-फिर एक सिंहासन तो हाथ में आएगा! देशलदेव को लगा कि जीवन के अन्तिम दिन निकट आते जा रहे हैं और थोड़े ही समय में उसकी आशाओं के महल मृत्यु की अपराजयता में मिल जायंगे। फिर फिर अवसर क्यों गंवाया जाय? उदा महेता को बुलाकर चुपचाप उससे मंत्रणा की और जयसिंहदेव को जूनागढ़ पर विजय प्राप्त करवा देने का वचन दिया। उदा महेता संदेश लेकर वंथली गये हैं।

स्पष्ट ही उसे अपना भाग्य चमकता दिखाई दे रहा था। एभल नायक गुम हो गया, और एभल नायक की चौकी पर पट्टणियों ने अधिकार कर लिया! यह चौकी जूनागढ़ की महत्वपूर्ण शक्ति थी, और इसी के कारण वर्षों से जूनागढ़ में कभी अनाज की कमी न हुई। एभल चतुर और बुद्धिमान सोरठी था और उसने चारों ओर ऐसा दबदबा फैला

रखा था कि पट्टणी सेना ने उसे पराजित करने की आशा कभी की त्याग दी थी। उसे कोई नहीं छेड़ता था। चोकी में बैठे-बैठे ही वह चारों ओर से अनाज, घास और अन्य आवश्यक वस्तुएं एकत्रित कर के गढ़ को टिकाए रखता था। एभल मरा कि जूनागढ़ का अन्नदाता मर गया। चौकी को फिर हाथ में करने के काम में खेंगार शीघ्रता और लगन से जुट गया और एभल के ग्यारह पुत्रों ने अपने पिता की आन की रक्षा के लिए चौकी पर अधिकार करने का बीड़ा उठाया। पहले दो पुत्र गये और लड़ाई में खेत रहे। उसके पश्चात् दूसरे दो गये। उनमें से एक तो कट मरा और दूसरा घायल होकर लौटा।

खेंगार ने दूसरे दो को जाने के लिए कहा। छत्रसाल ने स्वामी की आज्ञा स्वीकार की, किन्तु दादु डर गया। पन्द्रह दिन में पिता और तीन भाई मरे—और एक भाई घायल हुआ। खेंगार क्या करने पर तुला है? दादु दुर्गरक्षक देशलदेव का जामाता था। पति को मृत्यु के मुख में जाते देखकर उसकी पत्नी व्याकुल हो उठी। वह पिता के सामने जाकर रोने गिड़गिड़ाने लगी। दादु की रक्षा भी हो जाय और उपयोगी भी हो—ऐसा मार्ग उसे सूझा।

इस समय वह दादु की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था इस दुर्गरक्षक की सहायता से वह उदा महेता से जाकर मिल सकता था, और वह समझता था कि उदा महेता के दूत का संदेशा भी वह लेकर आ सकता था।

अन्त में देशलदेव अधीर हो गया। उसने पुकारा। 'भीमा!'

एक वृद्ध अनुचर उपस्थित हुआ।

'जा' दादुनायक को तुरन्त बुला ला। और छोटे बापू कहां हैं?'

'अन्नदाता! छोटे बापू अभी नहीं आए। दादुनायक को बुला लाता हूँ।'

किन्तु इतने ही में नीचे एक स्वर सुनाई पड़ा जिसे देशलदेव ने पहचान लिया।

'देख, हो-न-हो वह नायक ही है। ऊपर भेज दे।'

'बड़े बापू हैं क्या ?' एक स्वर आया।

'कौन नायक ! आओ।' देशलदेव बोला।

दो व्यक्ति अन्दर आए।

देशलदेव सावधान हुआ। उसने भीमा को नीचे जाने की आज्ञा दी।

## १२

देशलदेव कुछ चिन्तातुर होकर नवागन्तुकों की ओर देखने लगा। परीक्षा के समय उसका हृदय साहस खो बैठता था। वह कौन हो सकता है ? इसके आने से क्या होगा ? यह क्या संदेशा लाया होगा ?

'दुर्गरक्षक ! यह कौन ?'

वह व्यक्ति निकट आया, 'देशलदेव महाराज ! मैं हूँ।' मुँह पर से वस्त्र हटाते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

'अरे कौन वाहड़ महेता ?'

'जी हाँ।' कहकर वाहड़ निकट जाकर बैठ गया।

'महेता ! वस्त्र फिर बाँध लो।'

'जो आज्ञा।'

'कहो, क्या समाचार लाए हो ?'

'पिताजी ने महाराज से बातचीत की थी। महाराज आप पर प्रसन्न हैं, किन्तु कहते हैं कि आप वहाँ चलें तो फिर बातें हों। इस समय वह कोई वचन देना नहीं चाहते।'

देशलदेव ने मूँछ मरोड़ी, 'तो ?'

'पिताजी ने कहलाया है कि आप चले फिर जूनागढ़ के विषय पर आपके किसी सुझावों को महाराज निश्चय ही मान लेंगे।

थोड़ी देर तक देशलदेव मौन रहा।

'अर्थात् मैं जयसिंह देव पर विश्वास करूँ और वह मुझ पर भरोसा न करें, क्यों ?'

वाहड़ ने उत्तर नहीं दिया।

'और कुछ कहलाया है ?

'हाँ। मैं यहाँ आया था तब एक उड़ती बात सुनी थी कि काक भटराज को यहाँ बन्दी बनाकर रखा गया है।'

'काक भटराज ?' विस्मित होकर देशलदेव ने कहा।

'हाँ।'

'ऐसा नहीं हो सकता,।' हँसकर देशलदेव ने कहा। 'वह तो कभी के सुरलोक पहुँच गए।

'यह सच नहीं है। वह आपके गढ़ में बन्दी हैं। महाराज ने स्वयं मुझसे कहा है कि कुछ भी करके उसे लेते आना।'

'राजगढ़ में हों और मुझे मालूम न हो ऐसा कभी हो सकता है ?'

'देशलदेवजी ?' दादु गढ़रक्षक ने गर्दन हिलाते हुए कहा, 'महेताजी की बात सत्य मालूम होती है।'

'कैसे ?'

'पिता जी के मरने के पश्चात् उसकी चौकी पर से एक पालकी में बन्द करके मेरा भाई किसी को लाया अवश्य था।'

'कौन, छत्रसाल जी ?'

'हाँ।'

देशलदेव के माथे पर बल पड़ गए। वह जोर से मूँछ चबाने लगा। वीशलदेव की बात और इसमें कोई सम्बन्ध तो नहीं है।

'भृगुकच्छ वाला काकभट न ?'

'हाँ।' बाहड़ ने कहा।

'खेंगार जी से राणक देवी का ब्याह भी तो उसी ने कराया था।'

'ऐसा कहा अवश्य जाता है।' वाहड़ बोला।

'देख, हो-न-हो वह नायक ही है। ऊपर भेज दे।'

'बड़े बापू हैं क्या ?' एक स्वर आया।

'कौन नायक ! आओ।' देशलदेव बोला।

दो व्यक्ति अन्दर आए।

देशलदेव सावधान हुआ। उसने भीमा को नीचे जाने की आज्ञा दी।

## १२

देशलदेव कुछ चिन्तातुर होकर नवागन्तुकों की ओर देखने लगा। परीक्षा के समय उसका हृदय साहस खो बैठता था। वह कौन हो सकता है ? इसके आने से क्या होगा ? यह क्या संदेशा लाया होगा ?

'दुर्गरक्षक ! यह कौन ?'

वह व्यक्ति निकट आया, 'देशलदेव महाराज ! मैं हूँ।' मुँह पर से वस्त्र हटाते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

'अरे कौन वाहड़ महेता ?'

'जी हाँ।' कहकर वाहड़ निकट जाकर बैठ गया।

'महेता ! वस्त्र फिर बाँध लो।'

'जो आज्ञा।'

'कहो, क्या समाचार लाए हो ?'

'पिताजी ने महाराज से बातचीत की थी। महाराज आप पर प्रसन्न हैं, किन्तु कहते हैं कि आप वहाँ चलें तो फिर बातें हों। इस समय वह कोई वचन देना नहीं चाहते।'

देशलदेव ने मूँछ मरोड़ी, 'तो ?'

'पिताजी ने कहलाया है कि आप चले फिर जूनागढ़ के विषय पर आपके किसी सुझावों को महाराज निश्चय ही मान लेंगे।

थोड़ी देर तक देशलदेव मौन रहा।

'अर्थात् मैं जयसिंह देव पर विश्वास करूँ और वह मुझ पर भरोसा न करें, क्यों ?'

वाहड़ ने उत्तर नहीं दिया।

'और कुछ कहलाया है ?

'हाँ। मैं यहाँ आया था तब एक उड़ती बात सुनी थी कि काक भटराज को यहाँ बन्दी बनाकर रखा गया है।'

'काक भटराज ?' विस्मित होकर देशलदेव ने कहा।

'हाँ।'

'ऐसा नहीं हो सकता,।' हँसकर देशलदेव ने कहा। 'वह तो कभी के सुरलोक पहुँच गए।

'यह सच नहीं है। वह आपके गढ़ में बन्दी हैं। महाराज ने स्वयं मुझसे कहा है कि कुछ भी करके उसे लेते आना।'

'राजगढ़ में हों और मुझे मालूम न हो ऐसा कभी हो सकता है ?'

'देशलदेवजी ?' दादु गढ़रक्षक ने गर्दन हिलाते हुए कहा, 'महेताजी की बात सत्य मालूम होती है।'

'कैसे ?'

'पिता जी के मरने के पश्चात् उसकी चौकी पर से एक पालकी में बन्द करके मेरा भाई किसी को लाया अवश्य था।'

'कौन, छत्रसाल जी ?'

'हाँ।'

देशलदेव के माथे पर बल पड़ गए। वह ज़ोर से मूँछ चबाने लगा। वीशलदेव की बात और इसमें कोई सम्बन्ध तो नहीं है।

'भृगुकच्छ वाला काकभट न ?'

'हाँ।' बाहड़ ने कहा।

'खेंगार जी से राणक देवी का ब्याह भी तो उसी ने कराया था।'

'ऐसा कहा अवश्य जाता है।' वाहड़ बोला।

'अब मैं समझा।'

थोड़ी देर तक देशलदेव लेटा रहा। जैसे-जैसे उसके विचारों का वेग बढ़ता जाता था वैसे-वैसे वह मूँछें जोर से चबाता था। थोड़ी देर पश्चात् वह बोला, 'वाहड़ महेता! तुम इसी समय वापस जाने को तैयार हो न?'

'हाँ, क्यों?'

'तुम्हें यहाँ रखने में भय लगता है।'

'तो मैं जाता हूँ, किन्तु आप—'

जिस स्थान पर उस दिन मैंने तुम्हारे पिता जी से भेंट की थी वह स्मरण है?'

'हाँ।'

'कल रात को वहाँ आना। मैं वहीं आकर तुम से भेंट करूंगा।'

दादु चौंका किन्तु कुछ बोला नहीं।

'तो मैं जाऊँ?' वाहड़ ने पूछा।

'हाँ,' देशलदेव ने कहा। 'गढ़रक्षक! इन्हें कोट के बाहर छोड़ आओ। देखना, किसी को इनके आने की कानों-कान खबर न हो। मैं अभी महाराज के पास जाता हूँ और कुछ-न-कुछ पता लगाता हूँ।'

'मेरे विषय में कुछ निश्चय किया है?' दादु ने पूछा।

'हाँ हाँ? घबराते क्यों हो? जहाँ मैं वहाँ तुम। इनको पहुँचाकर राजमहल में आ जाना।'

'जी।' कहकर गढ़रक्षक वहाँ से जाने को तैयार हुआ।

'देशलदेव जी!' वाहड़ ने रुक कर पूछा, 'काक भटराज के विषय में आपने क्या सोचा?'

'क्या सोचूं?'

'उन्हें छुड़ाना होगा, नहीं तो…।'

'नहीं तो?'

'नहीं तो महाराज के क्रोध का पार न रहेगा? मुझे विशेष आज्ञा

दी है।'

'ठीक है। मुझसे जो हो सकेगा वह करूंगा। किन्तु काक भट के बिना क्या जयसिंहदेव का काम नहीं चलेगा ?'

वह महाराज के बहुत विश्वासपात्र हैं।'

'अच्छा।' कहकर देशलदेव ने वाहड़ को विदा दी। वाहड़ ने यह न सोचा था कि देशलदेव उसे इतनी जल्दी बिदा कर देगा। किन्तु इस समय उसने कुछ भी पूछना उचित न समझा। वह मौन होकर वहां से चला गया। देशलदेव शीघ्रता से उठा और तलवार बाँधकर पगड़ी बाँधी। मूँछों पर ताव देता हुआ वह घर से बाहर निकला और राज-महल की ओर चल दिया। उसकी चाल, उसके शरीर की भंगिमा से असाधारण क्षोभ टपक रहा था। वह जल्दी से राजमहल पहुँचा।

'महाराज हैं ?' उसने द्वार पर बैठे हुए सैनिक से पूछा।

'कौन देशलदेव महाराज! हाँ महाराज ऊपर बैठे हैं।'

'जा, पूछ आ कि आ जाऊँ ?'

'अरे बापू! आपको भी क्या आज्ञा लेनी पड़ेगी ? जाइए, ऊपर छत पर हैं।'

'क्या कर रहे हैं ?'

टहल रहे होंगे।'

'अच्छा।' देशलदेव जल्दी से अन्दर गया और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर छत पर चढ़ा। ऊपर चढ़कर उसने चारों ओर देखा। चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में देखा कि छत के पूर्व की ओर दो व्यक्ति खड़े हुए थे। वह धीरे-धीरे उस ओर गया। छत पर से चारों ओर का दृश्य देखकर देशलदेव के हृदय पर मानो भारी बोझ पड़ गया। उसका क्षोभ बढ़ गया और चिन्ता से वह चारों ओर देखने लगा। गढ़ के पीछे गिरनार दैवी रक्षक के समान खड़ा हुआ था। शुक्लपक्ष के अर्द्ध चन्द्र के प्रकाश में उसके शिखर सुन्दर लग रहे थे। उसकी तलहटी के वनों में समीर धीमा और मधुर स्वर कर रहा था। थोड़ी ही दूर पर सोनरेखा का

छोटा पाट कहीं-कही चमक रहा था ।

दो दिशाओं में चौकियों की शृंखला के मनके दिखाई पड़ रहे थे। मात्र मेंदरड़े के परे से कभी-कभी चीत्कार सुनाई पड़ती थी और कभी-कभी दौड़ते हुए घोड़ों की टाप की ध्वनि भी तेजी से सुनाई पड़ती थी। उससे परे—दूर वंथली के दीपक चमक रहे थे । इन दीपकों के विस्तार से वंथली की सीमा एकदम जानी जा सकती थी । वंथली के बजने वाले नगाड़े का स्वर भी आ रहा था ।

जूनागढ़ और वंथली में बारह वर्षों से वैर चला आ रहा था। पर्वतशृंग के निवासी गरुड़राज के समान खेंगार ने अपने दुर्गस्थान में बैठे-बैठे ही सदा शत्रुओं को छकाया था, वन में विचरते वनराज के समान जयसिंहदेव मैदान में निश्चित होकर बैठे-बैठे गरुड़राज को धमकियाँ दिया करते थे । किन्तु गिरिनिवासी के विहार की सीमा दिन-दिन कम होती जा रही थी—बचपन का प्रताप दिन-दिन बढ़ता जा रहा था ।

देशलदेव को वहाँ खड़े-खड़े पाटण के बढ़ते हुए प्रभुत्व का तीव्र विचार हुआ । जूनागढ़ के गले की फाँसी धीरे-धीरे कसती जा रही थी । एभल की चौकी हाथ से निकल जाने पर अब भूखों मरने का समय आने वाला था । यदि ऐसा ही चलता रहा तो थोड़े समय में गिरनार का गढ़ भी भूमिसात् हो जायेगा । देशलदेव के हृदय में चिन्ता बढ़ गई। खेंगार उसे न जाने दे तो ? जयदेव उसका स्वागत न करे तो ? उसके हृदय में रहा-सहा साहस भी जाता रहा । उसे वहाँ से भाग निकलने में ही मोक्ष दिखाई पड़ी । पश्चात्ताप भी हुआ । वह अब तक किस लिए बैठा है ? क्यों अब तक उसने खेंगार की चिन्ता की ? चारों ओर फैली चन्द्रिका ने उसे क्षुब्ध कर दिया । प्राण लेकर वहाँ से भाग जाने को उसका मन हुआ । उसे खेंगार कट्टर शत्रु सा लगा और उसकी रानी भी उसे भयंकर शत्रु प्रतीत हुई । वह अपनी निर्बलता का मूल समझ गया । इस राणकदेवी के जादू में वह भी फंसा था । वह सचमुच

जादूगरनी थी । वह जूनागढ़ को दुर्जय मानती थी और उसी के कारण औरोंको भी प्रेरणा मिलती थी वह पाटण से सन्धि नहीं करनेदेती थी इसलिए सब यही मानते थे कि सन्धि करना अधमता है । उसके द्वारा प्रसारित गर्व के वातावरण में किसी की मजाल नहीं थी कि कोई झुकने का विचार भी करे । उसी वातावरण में उसे भी कोई मार्ग न सूझा ।

वह तनिक काँप उठा । लोग इस देवड़ी को भवानी का अवतार मानते थे । क्या यह बात सच हो सकती है ? क्या वह सबको खप्पर में भरने के लिए यह वैर बनाए रख रही है ? क्या उसकी विचारधारा से वह परिचित होगी ? क्या वह उसे श्राप दे सकती है ?

विचार हृदय की गति को रोक देने वाले थे । देशलदेव को पसीना होने लगा । इस जगदम्बा के यहाँ से निकल भागूँ या उसके खप्पर में भरा जाऊँ ? यह छोटी-सी नारी क्या उसका, उसके भाई का और उसके पुत्र का प्राण लेकर रहेगी ।

वह घबराहट और अनिश्चिन्तता में थोड़ी देर तक खड़ा रहा और फिर उन दोनों का ध्यान आकर्षित करने के लिए गला खखारा ।

## १३

'रा' शांत और स्थिर खड़ा हुआ था । उसकी दाढ़ी सावधानी से से सँवारी हुई थी । उसके वस्त्रहीन शरीर पर आभूषण ऐसे समय में भी, उसके रसिक स्वभाव की साक्षी दे रहे । हाँ, उसका मुख उदास था और जब उसकी आँखें वंथली की ओर घूम जाती थीं तो उनमें खून उतर आता था । उसके निकट खड़ा हुआ व्यक्ति नाटा और बहुत ही बलवान था । उसकीं आंखों की विशाल पुतलियाँ बाहर निकल

पड़ती थीं। बड़ी-बड़ी मूँछें थीं और दाढ़ी। दाढ़ी अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त थी। उसका शरीर बैठा हुआ था। वह 'रा' की ओर बड़े सम्मान और प्रीति से देख रहा था।

जिस समय देशलदेव आया उस समय 'रा' शांत स्वर में वार्तालाप कर रहा था।

'छत्रसाल ! जो तू सोचता है वही मैं भी सोचता हूं। निश्चय ही जूनागढ़ के दिन आ गए हैं। एभल नायक की चौकी के गिरते ही सोलंकी ने सेना एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया है। हम त्रिभुवनपाल को भी बढ़ने से नहीं रोक सके। उसने वंथली की ओर उंगली से संकेत किया, 'चारों ओर से वहाँ सैनिक इकट्ठे हो रहे हैं।' मानो दिव्यचक्षु से सेना की गणना कर रहा हो, 'देखना यह है कि मेरा गिरनार कब तक टिका रहता है।'

'चूड़ासमा का राज्य अमर है बापू ! इतने वर्ष हो गए सोलंकी कुछ भी तो न कर सका।'

'छत्रसाल ! मुझे किसी का भय नहीं है। सोलंकी यहाँ भले आए। उसे भी खेंगार की तलवार का स्वाद चखने को मिल जायगा। किन्तु हमें हाथ-पर-हाथ धरकर न बैठ जाना चाहिए। कपाल पर आए हुए केश को हटाते हुए रा' ने कहा।

'देव ! आप जो आज्ञा दें मैं तत्पर हूं। कल मैं पिता जी की चौकी लेने तो जा ही रहा हूँ। यह चौकी हाथ में आई कि फिर सोलंकी की कुछ चलने की नहीं।' छत्रसाल ने मूँछों पर हाथ रखा।

'परन्तु तेरा दादु नहीं मानेगा।' हँसकर रा' बोला।

'उस मूर्ख में इतना साहस कहाँ ?' छत्रसाल ने कहा, 'वह तो महाराज, सदा से ही ऐसा है। फिर भी जो कहा जाता है करता है। साथ में आने से मार्ग पर लग जायगा।'

इतने में पीछे से देशलदेव की खखार सुनाई दी। दोनों घूमे।

'कौन है ?' रा' ने पूछा।

'मैं हूँ, महाराज' कहते हुए देशलदेव आगे आया। खेंगार के मुख पर तिरस्कार-भरी मुस्कराहट छा गई। 'कौन देशलदेव महाराज ? ओहो ! इस समय कैसे ?'

'कुछ आवश्यक काम है ?' कहकर देशलदेव आगे आया।

'कहो ?'

'महाराज ! छत्रसाल जी के सामने—'

'देशलदेव जी !' तनिक विनोद में रा' ने कहा, 'डरो मत। छत्र-साल तो मेरा मित्र है—मेरा दायाँ हाथ है।'

'कन्तु—किन्तु··· ।'

'अच्छी बात है,' रा' ने कहा, 'छत्रसाल ! नीचे चला जा। मैं अभी आता हूं।'

'जैसी महाराज की इच्छा।' छत्रसाल बोला और वहाँ से चला गया। जाते-जाते उसकी आँखों में क्रोध चमका और क्षण-भर के लिए उसने देशलदेव की ओर घूरकर देखा।

'कहिए देशलदेव जी ! क्या कहना है !' खेंगार ने पूछा। उसके शांत स्वर में हँसी छिपी हुई थी।

'महाराज ! मुझे जूनागढ़ की ग्रहदशा अच्छी नहीं लगती।'

'किसी ज्योतिषी ने बताया है ?' रा' ने सरल स्वर में पूछा।

'अन्नदाता ! हँसी छोड़िए। मुझे शकुन अच्छे नहीं लगते।'

देशलदेव जी !' गम्भीर होकर रा' ने कहा, 'अपशकुन की बात तो स्त्रियाँ करती हैं। तुम्हारे और मेरे जैसे पुरुष को ऐसी बातें शोभा देती हैं ?'

'महाराज ! क्या करूँ ? मुझे तो लगता है कि अब हमारा अन्त आ गया।'

'इसमें रोना क्या ? मैं और तुम क्या यों ही बैठे-बिठाए मर जाएंगे ? मरेंगे तो रण ही में।'

'ऐसा क्या कहते हैं अन्नदाता ?, अटकते-अटकते देशलदेव ने कहा,

'किन्तु मुझसे यह नहीं देखा जाता।'

'फिर करें क्या ?' हँसी में रा' बोला, 'जूनागढ़ को पराजित देख सकोगे ?'

'जूनागढ़ के गिरने में अब कसर क्या रह गई है ?'

'क्या कोई नई बात हुई ?'

'क्या कहूं महाराज ? मुझ से यह सब सहन नहीं होता।'

'क्यों ? जूनागढ़ छोड़ देना चाहते हो क्या ?' तिरस्कार से खेंगार ने पूछा।

'हाँ ! यदि अन्नदाता की आज्ञा हो।'

'क्या कहा ?' विस्मित होकर नीचे झुकते हुए रा' ने कहा। देशलदेव जान बूझकर पीछे हट गया।

'क्षमा ! देव ! मेरा विचार तो आपके साथ खड़े रहकर लड़ते-लड़ते मरने का ही था।'

'विचार परिवर्तित कैसे हो गया ?' पुनः तिरस्कार से रा' ने पूछा।

'जूनागढ़ की कीर्ति ? देशलदेव जी !' सीधे खड़े होते हुए खेंगार बोला, 'तुम घर के हो इसलिए छोड़ देता हूं, अन्य कोई होतां तो जीभ खींच लेता।'

'देव ! जबान खीच लेनी हो तो भले खींच लीजिए किन्तु हमसे तो यह देखा नहीं जाता, 'रा' खेंगार के विषय में क्या कहा जाता है, मालूम है ?'

खेंगार थोड़ी देर तक देखता रहा और फिर कुछ हँस दिया।

'क्या कहा जाता है ?'

'कहा जाता है······कह दूँ महाराज?—क्या करूँ, कहना ही पड़ेगा। महाराज ! सभी कह रहे हैं कि जूनागढ़ में पुरुष नही स्त्री राज्य करती है।'

'रा' कुछ देर मौन रहा, फिर सदा के समान शांत स्वर में कहा—

हाँ, ! मेरी सीता राज्य करती है। इसको मैं श्रेष्ठ भी समझता हूँ। देशलदेव जी ! तुम्हें भले ही बुरा लगे।'

'महाराज ! महाराज ! अधिक बोलने से क्या लाभ ? मैं कुछ-का-कुछ कह बैठूँगा। किन्तु मैं क्या करूँ ? सती के सामने कोई कुछ कह थोड़े ही सकता है ?' 'सती' शब्द पर भार देकर उसने कहा।

'क्या कहा ?' खेंगार गरज उठा। उसकी आँखें प्रज्वलित हो उठीं। अनजाने में ही उसने दाएं हाथ की मुट्ठी भींच ली। देशलदेव घबराया। कहने को तो कह गया किन्तु उसके शब्दों का क्या परिणाम होगा यह सोचकर वह काँप उठा।

'क्षमा कीजिए अन्नदाता ! देव ! मामा जी ! मैंने तो जो जनश्रुति सुनी वही कही। कोई कह रहा था कि सती किसी पर पुरुष की चुप-चाप सेवा करती हैं।'

'रा' मौन खड़ा रहा। वह कुछ देर तक इस नराधम की ओर देखता रहा।

'ऐसी बात है ?' उसने दाँत पीसते हुए उपहास के स्वर में कहा।

'महाराज···।'

'देशलदेव ! मैंने बहुत से नीच देखे किन्तु तेरे जैसा और न ही देखा।' असाधारण शांति से रा' ने कहा, 'देवड़ी को पगली कहते सुना—किन्तु कुलटा कहने वाला आज तू ही मिला।'

'महाराज !' महाराज !' काँपते हुए स्वर में देशलदेव बोला।' 'मुझे क्षमा कीजिए ! मुझे जाने दीजिए।'

'अब कहाँ जाता है ?' कहकर खेंगार आगे आया, 'मैं तुझे भली-भाँति जानता हूँ। चल !' कहकर रा' ने हाथ आगे किया।

'कहाँ ?'

'रनिवास में देवड़ी के निकट।'

'महाराज !' देशलदेव बोला, 'बापू···।'

'चल' कहकर खेंगार ने देशलदेव की भुजा पकड़ी।

देशलदेव निःसहाय होकर देखने लगा। रा' के स्वर में क्रोध भरा हुआ देखकर वह सचमुच घबरा गया और आगे-आगे चलने लगा। पीछे-पीछे खेंगार चला।

वह रनिवास की ओर जाने के लिए छत के एक कोने में सीढ़ियों के निकट आए। नीचे उतरने से पहले देशलदेव ने तनिक पीछे फिरकर देखा। रा' के विकराल नेत्र देखकर वह चुपचाप सीढ़ियां उतरने लगा। शांत, सुन्दर और गौरवशाली रा' गर्व से चल रहा था। बारह वर्ष तक कठिनाइयाँ भोगने के पश्चात् भी न उसने साहस खोया और न आन खोई। उसे देखकर देशलदेव के हृदय में द्वेश उबल पड़ा। उसे लगा कि जब तक यह रा' पृथ्वी पर है तब तक उसके अच्छे दिन नहीं आने के। यदि उसकी चले तो वह उसे हटा कर जूनागढ़ के सिंहासन पर स्वयं चढ़ बैठे। किन्तु करे क्या? वह मौन और मजबूर होकर चलने लगा वह रनिवास में आए।

'देवी! हो क्या?' खेंगार ने पूछा।

'पधारिए' अन्दर के कमरे से स्वर आया। स्वर में खिन्नता थी, मधुरता थी और था दबाई हुई भावनाओं को दर्शाने वाला कँपन था। रा' ने तनिक उत्साह से डग भरा, देशलदेव के हृदय से सारी आशा जाती रही। वह अन्दर गए। एक मन्द दीप जल रहा था। एक चौकी पर बैठी हुई राणकदेवी एक आले में स्थापित अम्बाभवानी की मूर्ति की पूजा कर रही थी। वह छोटी-सी स्त्री अपार्थिव लग रही थी। उसके श्याम वस्त्र उसकी देह की रेखाओं को रात्रि के अन्धकार के साथ एक कर दे रहे थे। और उसका छोटा और तेजस्वी मुख एक अपूर्व तेजपूर्ण चक्र के समान शोभायमान था।

'सोमली! चौकियाँ ला।'

'नहीं, आवश्यकता नहीं। हम चौकियों पर बैठने योग्य नहीं है। सती! तुम्हारा भाणेज तुमसे भेंट करने आया है। न जाने क्या-क्या जनश्रुति लाया है।'

राणकदेवी मुस्कराई। उसके मीठे मन्द हास्य में तटस्थ स्नेह था।

'यह कहता है जूनागढ़ का अन्त आगया है।'

मुस्कान में क्षमा प्रकट हुई, 'मेरे रा' के जीते जूनागढ़ को क्या हो सकता है? देशलदेव जी! ऐसी बात कैसे कह सके तुम?'

देशलदेव ने हृदय में उठती ज्वाला की भावना को दबाने का असफल प्रयत्न किया।

'मामी! लोगों की जीभ पर क्या ताले डाले जा सकते हैं?'

'तो लोगों से जाकर कहो कि जब तक मेरे रा' हैं तब तक ब्रह्मा भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।'

'अरे बात यहीं नहीं रुक जाती,' दाँत पीसकर खेंगार ने कहा। वह छलांग मार कर कमरे की ओर गया और किसी से कहा, 'तनिक बाहर तो आ।' इतना कहकर 'रा' पुनः लौट आया। उसका शांत मुख भभक उठा, 'सती! इस हीरे ने नई बात खोज निकाली है।'

खेंगार के स्वर से स्वाभाविक स्थिरता चली गई। उसके धीमे किन्तु भयंकर स्वर में प्रचण्ड क्रोध भर गया—उसका हाथ काँप उठा।

देशलदेव बीच ही में बोल उठा, 'महाराज...।'

दाँत पीसकर खेंगार उस पर गरजा, तू जहरीला नाग है देशलदेव! तुझे वर्षों तक दूध पिलाया, पाला-पोसा, आश्रय दिया, फिर भी तूने विश्वासघात करके द्रोह किया। शत्रु के साथ मैत्री की—किन्तु मैं अपने धर्म से नहीं डिगा और अब तू मेरी सती की कीर्ति को कलंकित करना चाहता है?'

'क्या कहते हैं?' तनिक खेद-भरे स्वर में राणक देवी बोली।

'इस पवित्रता के भक्त से तेरे जैसी कलंकिनी के नगर में कैसे रहा जा सकता है?' कटाक्ष करते हुए रा' आगे बढ़ा, तू तो पर-पुरुष की टहल करती है। देशलदेव की ओर फिर कर रा' ने क्रोध से कहा, 'वह कौन है यह जानता है? उसे देखा?' खेंगार ने निकट के द्वार की ओर संकेत किया। देशलदेव ने द्वार की ओर देखा तो एक लम्बा किन्तु

दुवला-पतला व्यक्ति द्वार पर खड़ा हुग्रा दिखाई दिया। उसके कपाल पर पट्टी थी। उसकी मुख-मुद्रा कठोर थी—फिर भी वह मुस्करा रहा था। देशलदेव को वह मुख-मुद्रा कुछ परिचित-सी लगी और ग्रनजाने ही उसके मुख से निकल पड़ा, 'भटराज काक !'

'हाँ।' खेंगार ने कहा, इससे 'पन्द्रह वर्ष पहले पाटण में भेंट हुई थी, याद है ? यह सती जिसकी टहल कर रही है यह वही है। दुष्ट ग्रब बोल क्या कहना है ?

देशलदेव को कुछ भी भान न रहा। भय, क्षोभ ग्राश्चर्य, ग्रौर निराशा के बीच उसे कुछ भी न सूझ पड़ा। उसने खेंगार के प्रदीप्त मुख की ग्रोर देखा मस्कराते हुए काक का मुख देखा। दोनों यमदूत के समान खड़े हुए थे।

'महाराज ! मामी ! मुझे क्षमा करो।'

'तुझे क्षमा करूँ ?' दांत पीसकर रा' ने कहा ग्रौर देशल के निकट जाकर उसका कान खींचते हुए कहा, 'नीच, क्या करूँ, तूने मेरी बहन के गर्भ से जन्म लिया है नहीं तो तेरे प्राण ले लेता। ग्रब मैं तुझे जीवन-भर के लिए बन्दी बना कर रखूँगा।'

'देशलदेव के होंठ फीके पड़ गये, महाराज ! महाराज !'

कान की वेदना दुःसह होने से वह काँपने लगा।

'अब महाराज हो गया ?' खेंगार ने तनिक शांत होते हुए कहा, 'तुझसे इस पापपूर्ण नगर में रहा कैसे जायेगा ? क्यों ठीक है न ? गिरनार में मेरे गढ़ का तलगृह है वहाँ तू रह सकेगा ?'

'क्या—मुझे—।' देशलदेव के पाँव लड़खड़ाने लगे।

'हाँ, तुझे !'

'मामी !—' देशलदेव बोला।

खेंगार ने राणकदेवी की ग्रोर देखा। पल-भर के लिए उसके नेत्र देशलदेव पर ठहरे।

'इसे छोड़ दो न।'

'क्या कहती हो ? सती ! यह काला नाग है ।'

राणकदेवी मुस्कराई । उसकी फीकी मुस्कराहट में मधुरता थी । इसकी क्या मजाल जो जूनागढ़ के स्वामी को डस सके ? इसको बन्दी बनाने से आपको लाँछन लगेगा । जैसा भी हो है तो भाणेज···।

'कभी भाणेज को कृतज्ञ होते भी देखा है ?'

'किन्तु मामा को क्षमा करने में ही बढ़ाई है,' राणकदेवी ने कहा, 'इसे अपने संबन्धियों के पास जाने दीजिए ।'

'अच्छा ।' हँस पड़ते हुए रा' ने कहा, 'इसके लिए वंथली बहुत अच्छा रहेगा । इसके भाई को भी निकाल देता हूँ । दोनों एक-से हैं ।' ताना मारते हुए उसने देशलदेव की ओर देखा—'भाणेज मेरे, सुना ? जाओ अपने बाप के यहाँ । ननिहाल में अब तुम्हारे लिए जगह नहीं ।'

'मैं कल··· ।'

'कल ?' तिरस्कार से रा' बोला, 'कुछ और गड़बड़ करनी है ? इसी समय—इसी घड़ी, चलो, चलते बनो, एक घड़ी भी अधिक नहीं । चल, मैं अभी छत्रसाल को कह देता हूं । वह विशलदेव को बुला लायगा ।' 'छत्रसाल ! छत्रसाल !' उसने पुकारा । छत्रसाल आकर द्वार में खड़ा हो गया । 'छत्रसाल ! इस मेरे सम्बन्धी को नगर के बाहर निकालना है । इसके भाई को भी बुला भेज । देख, इन दोनों में से कोई तनिक भी आनाकानी करे तो तुझे ठोकर मारनी आती है न ? अच्छी बात है, जाओ ।'

देशलदेव नीचा मुंह किए छत्रसाल के साथ जाने लगा ।

छत्रसाल देशलदेव को लेकर जब बाहर आया तो दादु गढ़रक्षक मिला ।

'दादु !' छत्रसाल ने कहा, 'तू यहीं रहना मैं अभी आता हूँ ।'

'अच्छा ।' दादु ने कहा ।

'छत्रसाल !' पीछे से रा' का स्वर आया, 'खड़ा रह ।' रा' बाहर आया, उस सामंत यादव को लौटते समय साथ लेते आना ।'

'जी ।'

इस समय का लाभ उठाकर देशलदेव ने दादु को धीरे-से कहा 'एक-दो रात तक गढ़ पर ही रहना ।'

दादु ने आँखों ही से 'हां' कहा ।

## १४

रा' जब फिर रनिवास में लौटकर आया उस समय काक का मुख गंभीर हो गया था ।

'क्यों ? तुझे अच्छा न लगा ?' खेंगार ने पूछा ।

'आपने भूल की । यह हरामखोर यहीं ठीक था ।'

'यह क्या कर लेगा ?' राणकदेवी ने पूछा ।

'इस समय आपको और कोई आपत्ति मोल नहीं लेनी चाहिए ।'

'अरे व्यर्थ ही डरता है । इससे कुछ नहीं हो सकता ।' खेंगार ने कहा, किन्तु उसके स्वर से लगा कि उसे सचमुच पश्चाताप हो रहा था । राणकदेवी भी धीरे-से रा' के निकट आई 'इन दो के चले जाने से निश्चिन्त तो हुए । हमारे धर्मयुग में यह दो कलंक थे, । उसने तनिक हँसकर कहा । पल भर के लिए उसकी आँखें रा' पर रुकीं । उनमें श्रद्धा और अडिगता थी । खेंगार ने अपनी पत्नी की श्रद्धा देखी और उमड़ते हृदय से उसके कंधे पर हाथ रखा ।

'सती ! सत्य है । ऐसों के स्पर्श से ही हम दूषित हो जाते हैं । काक !' खेंगार हँसकर बोला, 'जूनागढ़ के रा' सदा धर्मयुद्ध ही करते हैं ।'

'मैं जानता हूँ बापू ! जानता हूँ ।' कुछ कुढ़कर काक बोला, किन्तु मैं तो उसी युद्ध को धर्मयुद्ध मानता हूँ जिसमें विजय प्राप्त हो ।'

'काकभट जी !' राणकदेवी ने कहा, 'तुम्हारा विश्वास मैं जानती हूं। हम ऐसे नहीं हैं जिन्हें ठगा जा सके। चलो, ऊपर छत पर चलोगे ? बहुत उष्णता है।'

'आप दोनों जाइए मैं थोड़ी देर पश्चात् आता हूँ।'

राणकदेवी की आँखें रा' की आँखों से जा मिलीं। जो प्रेम मान संयम और विपत्ति में अदृश्य रहता था वह पल-भर में दिखाई दे गया। देवड़ी धीरे-से गर्व भरे डग भरती हुई आगे चली, खेंगार पीछे चला और काक की आँखें इस दंपति का ऐक्य देखकर सजल हो गईं। उसने निःश्वास ली। यह दो विपत्ति में भी साथ थे। ईश्वर ने उसे उसकी मंजरी के निकट रहने का सुख न दिया था।

खेंगार और राणक छत पर गये। राणकदेवी ने स्नेह से गिरनार की ओर देखा। उसके मन में वह निर्जीव पत्थर का समूह न होकर उदार इष्टदेव था। प्रातःकाल और सन्ध्या को वह उसकी ओर देखती थी और विभिन्न समय के रंग उस पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव डालते थे इस समय चंद्रिका में वह उसे मुस्कराता हुआ लग रहा था।

'तुम्हें देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा ?' खेंगार ने स्नेह से उसके कंधे पर हाथ रखा, 'सती ! सोचता हूँ आज तुम न होतीं तो मेरा क्या होता ?'

'वाह रे मेरे सोरठ के स्वामी !' मन्द हास्य करती हुई वह बोली। 'आप भी पत्नी के दास हो गए हैं ?' तनिक कटाक्ष करती हुई वह बोली। किन्तु उसकी आँखों में गहन एवं गंभीर स्नेह था। उसने खेंगार के हाथ-पर-हाथ रख दिया।

'तुम्हारे पीछे पागल होने में मैं अपना सम्मान समझता हूँ। किन्तु देवी ! हमारा क्या होगा ?'

'क्यों ?' आश्चर्य से देवड़ी ने पूछा।

'क्या क्या ? वह वंथली देखी ? उसकी सीमा दिन-दिन बढ़ती जाती है। और हमारी चौकियाँ देखीं ? दिन-दिन पीछे हटती जा

रही हैं।'

'मेरे रा' !' उसने धीरे-से अपना भाल खेंगार के कंधे से अड़ा दिया, 'आपके हृदय में भी भय उत्पन्न होने लगा ?'

'नहीं।' गर्व से रा' ने कहा, 'देवी ! मेरे बाप दादा लड़ते आए हैं और युद्ध करते ही मरे हैं भला मैं सोलंकी के सामने झुकूंगा ! किन्तु आंखों से देखा अनदेखा तो नहीं हो सकता न ?'

स्नेह से देवड़ी ने खेंगार के गले पर हाथ रखा, 'मेरे रा' ! मैं तो अबला हूँ। अधिक तो क्या कहूँ, हाँ झुकने से तो मृत्यु भली !' खेंगार इसे निर्बल दिखाई पड़ने वाली स्त्री की ओर देखने लगा। उसके हृदय में भावनाएं प्रचण्ड वेग से उठीं ' उसने देवड़ी को हृदय से लगा लिया। उनके भावों और उनकी बातों में संयम और गाँभीर्य था। उन्हें एक-दूसरे में अगाध श्रद्धा थी।

'देवी ! तुम रहोगी तब तक मैं इसी प्रकार अटल रहूंगा।'

'मैं रहूं या नहीं किन्तु मेरा रा' तो सदा इसी प्रकार टेक पर दृढ़ रहेगा।

कुछ क्षणों तक दोनों में से कोई न बोला। वातावरण में भी असाधारण गांभीर्य था—वह इस प्रकार खड़े थे मानो सृष्टि के छोर पर खड़े होकर अनंत व्योम में उड़ जाने को तैयारी कर रहे हों।

कोट के बाहर दूर कोई चीत्कार सुनाई पड़ा। रा' ने देखा। तीनेक कोस दूर पर दिखाई पड़ता एक दीपक बुझ गया।

'सती !' होंठ पीसकर रा' ने कहा, 'हमारी एक चौकी गई।'

'कल प्रातःकाल पुनः ले लेना, 'देवड़ी ने तुरन्त उत्तर दिया।

'रा' ने कुछ नहीं कहा। दोनों बड़ी देर तक मौन खड़े रहे। इतने में बाहर की सीढ़ियों पर किसी का पगरव सुनाई दिया।

'कौन है ?' रा' ने पूछा।

'महाराज ! सामन्त आए हैं।'

'कौन दादु ?'

'हाँ, देव !'

'जा, सामन्त को ले आ ।'

'जी !' कह कर दादु चला गया ।

'मैं चली जाऊँ ?'

'नहीं । तुम्हारा काम पड़ेगा, बैठो ।' खेंगार ने कहा और दोनों वहाँ बिछी हुई गद्दी पर बैठ गए ।

सामन्त थानेदार वजेसंग नायक को साथ लेकर ऊपर आया । दोनों वृद्ध थे और दोनों की सफेद दाढ़ी, उनका गौरव बढ़ा रही थी । पीछे-दादु भी आया ।

'महाराज, आजाऊँ ?'

'कौन, काका ?'

'हाँ, देव !' नायक ने उत्तर दिया ।

'आओ, आओ ।' खेंगार ने हँसकर कहा । दोनों आगे आए । दोनों ने पहले राणकदेवी को झुककर प्रणाम किया ।

राणकदेवी सोरठियों के लिए रानी न थी, स्त्री न थी । वह उसे सती और माता मानते थे । वृद्ध, बालक, पुरुष, स्त्री, सभी उसे पूज्य मानते, इतना ही नहीं, वह यह भी मानते थे कि उसके पास ईश्वरीय शक्ति है । सम्पूर्ण सोरठ में उसके नाम की मनौती मानी जाती थी और दुःखी लोग उसके आशीर्वाद प्राप्त करके दुख टालने को इच्छा करते थे । वह झूठी प्रतिष्ठा नहीं पालती थी। कई बार नगर के लोग उससे भेंट करने आते थे ।

देवड़ी को बैठे हुए देखकर ये दो वृद्ध भी तनिक संकोच प्रकट करते हुए बैठ गए । वह अपने रा' से स्नेह करते थे किन्तु अपनी रानी की पूजा करते थे ।

'क्यों काका जी ! सब प्रसन्न तो हैं ?' राणकदेवी ने पूछा ।

'हां, देवी, आपके प्रताप से सब प्रसन्न हैं । देव ! अच्छे तो हैं ?'

'आनन्द में । देशलदेव को निकाल दिया यह तो तुमने सुन ही लिया

होगा ?'

'जीते रहो मेरे सोरठ के स्वामी ! आपके धर्मराज में वह कलंक था।'

'अरे, यह दादु झुंझला उठेगा।'

'यह तो देव ! आप उदार हृदय हैं नहीं तो आप इतने वर्ष इसको आश्रय न देते। यह तो कहिए कि दादु गढ़रक्षक भाग्यशाली है, नही तो इसकी सात पीढ़ियों का भी पता नहीं चलता।'

दादु तनिक घबराया। उसके बाप की चौकी फिर लेने के लिए तो उसे नहीं भेज रहे हैं ?

'महाराज !' सामन्त थानेदार बोला, 'वह चौकी गई सो देखी ?'

'हाँ।'

'अन्नदाता ! अब हमें क्या करना चाहिए ?'

'में भी यही विचार कर रहा था। जैसे भी हो एभल नायक की चौकी फिर लेनी ही होगी।'

'जीते रहो मेरे सोरठ के स्वामी !' वजेसंग ने कहा, 'जैसा तुम्हारा शौर्य वैसे ही तुम्हारे वचन ! देव ! विजय करो।'

'काका ! इसके सिवा और कोई चारा नहीं। नहीं तो थोड़े दिनों पश्चात् हमें भूखों मरना पड़ेगा। मैंने इसलिए यादव को भी बुलाया है।

'देव !' सामन्त ने कहा, 'हम कल मध्यरात्रि के पश्चात् निकलेंगे। तीन-सौ सोरठी मैंने तैयार कर लिए हैं।

'सती ! तुम क्या कहती हो ?'

'मेरे रा' युद्ध में जाएंगे तो विजय ही प्राप्त करेंगे।' राणकदेवी ने कहा।

'जीती रहो देवी !' वजेसंग बोला, 'मेरे वीर ! देवी का कहना सत्य है। विजय प्राप्त करो मेरे स्वामी !'

'इतना ही नहीं। मेरा विचार है कि इस प्रकार बैठे रहने में बुद्धिमानी नहीं। इस चौकी को लेकर हम मेंदरड़े पर छापा मारेंगे।' खेंगार

ने कहा, 'हमारे बैठे रहने से ही तो सोलंकी सबल होता जाता है।'

'सत्य है देव !' वजेसंग ने कहा।

'अति श्रेष्ठ विचार है देव !' सामन्त ने कहा, 'जितने चाहिए उतने सैनिक तैयार है।'

'अच्छी बात है सामन्त ! आप और छत्रसाल तैयारी करिए, और काका ! आप गढ़ की रक्षा करिएगा ?'

'जैसी देव की इच्छा।'

'ऐसा युद्ध मचाऊंगा।' होंठ पीसते हुए गर्व से खेंगार ने कहा, 'कि हमारी सात पीढ़ियों का उद्धार हो जाय।'

राणकदेवी एक म्लान हास्य से उत्साहित करती रही।

'और दादु ! तू क्या करेगा ? चौकी लेने के लिए जाने का तेरा साहस होगा ?' रा' ने पूछा।

'महाराज ! आपकी जो आज्ञा हो वही करने के लिए मैं तैयार हूँ।'

'तू यहीं गढ़ की रक्षा करना।'

रा' बोलते-बोलते अटक पड़ा। नीचे दो-चार लोगों के दौड़ने की-सी आवाज हुई। एकाएक कोलाहल सा मच गया। छत पर बैठे हुए सभी खड़े हो गए। दो-तीन लोग शीघ्रता से ऊपर आए। सबसे आगे दादु का भाई रायघण हांपता-हाँपता आया।

'महाराज ! महाराज !'

'क्या है रे ?' रा' ने पूछा।

'छत्रसाल जी दिवंगत। वीशलदेव जी को खोलने के लिए बड़े भाई उनके घर गए। वहां मोघांभाभी ने कटार से उनको मार डाला।'

## १५

मोघां देशलदेव जी की पुत्री और दादु गढ़रक्षक की धर्मपत्नी थी। ससुराल और पीहर दोनों को कंपाने वाली थी यह कुलदेवी। असाधारण जम्बाई बेरोक उठाव, बड़ी नाक, फटी आंखें, तीखा स्वर—यह सब उसके स्वभाव और निर्लज्जता के चिन्ह थे। उसके हृदय में यदि किसी के प्रति कुछ भी स्नेह था तो वह एक देशलदेव के लिए था, और यदि देशलदेवजी का हृदय कभी आर्द्र होने का कष्ट करता था तो वह मात्र अपनी इस पुत्री के लिए।

छत्रसाल देशलदेव के साथ वीशलदेव को लेने आया उस समय मोघांभाभी ससुराल जाने की तैयारी कर रही थी। इतने में बाहर का वार्तालाप सुनकर उसके रोष का पार न रहा। वह द्वार के पीछे खड़ी हो गयी और कुछ सुना कुछ देखा। उसका हाथ कमर पर की कटार पर गया। ज्यों ही देशलदेव बाहर जाने लगे कि वह बाहर आई।

'बापा, कहां जा रहे हो ?'

'मुझे रा' ने नगर से बाहर निकाल दिया है।' देशलदेव ने कहा।

'और तुम ले जा रहे हो !' छत्रसाल के सामने नागिन की फुंकार करके मोघां ने पूछा।

'तू अपना काम......।' वह उत्तर देने ही जा रहा था कि उसके एक भी शब्द बोलने के पहले मोघां ने कटार निकालकर उसके सीने में भोंक दी। छत्रसाल गिरपड़ा। देशल और वीशल घबरा गए। मोघां शांत थी। 'देखती हूँ कौन आपको नगर के बाहर निकालता है !' वह बोली।

'छोकरी ! तूने सत्यानास कर दिया।' पिता ने घबराकर मूंछों पर उखड़ जाने जितना जोर देकर उत्तर दिया।

रायघण छत्रसाल के साथ आया था। वह घबरा भी गया। वह एकदम रा' को सूचना देने के लिए दौड़ पड़ा। समाचार मिलते ही रा' थानेदार वजेसंग नायक और दादु गढ़रक्षक एकदम रायघण के साथ आ

पहुँचे । दो-तीन दासियों सहित राणकदेवी भी पीछे से आईं । देशलदेव की हवेली राजगढ़ के निकट ही थी । रा' एकत्रित लोगों को दूर हटा-कर अन्दर गया । द्वार के सामने ही अचेत छत्रसाल को दो-तीन लोग आराम से लिटा रहे थे । वीशल और देशल वहीं खड़े हुए थे । अन्दर के द्वार में से घबराई हुई स्त्रियाँ देख रही थीं ।

रा' पल-भर तक देखता रहा फिर तिरस्कार से देशलदेव की ओर देखा ।

'देशलदेव !' उसने भयंकर शांति से पूछा, 'तुम किस मुंह से यहाँ खड़े हो ? थानेदार, क्या तू इन दो नागों को नहीं देख रहा है ? ले जा इनको नगर के बाहर निकाल दे । आनाकानी करें तो गर्दन ही मरोड़ देना ।'

'महाराज !' देशलदेव ने काँपते हुए होंठों से कहा, 'यह हमने नहीं किया है ।'

'तुमने नहीं तो तुम्हारी पुत्री ने । बहुत अन्तर नहीं है । मैं एक शब्द नहीं सुनना चाहता । जाओ, अपना मुंह काला करो ।'

रा' के मुख की उग्रता देखकर वहाँ जितने उपस्थित थे सभी काँप उठे । देशलदेव ने मौन होकर थानेदार की ओर देखा और मुंह नीचा करके वहाँ से चल पड़ा । वीशलदेव भी पीछे-पीछे चला । जाते-जाते देशल ने दादु की ओर देखा । गढ़रक्षक अपने भाई के निकट गया हुआ था और उसके घाव में बहते हुए रक्त को रोकने की चेष्टा कर रहा था । उसने ससुर की दृष्टि का अर्थ समझा । कल रात को गढ़ में रहने की सूचना उसमें थी ।

इतने में भीड़ ने मार्ग किया और राणकदेवी प्रकट हुई । लोग मौन होकर खड़े हुए थे । जो थोड़ा-सा भी उसके पाँव में स्पर्श कर सके वह आँखों से पवित्र रज लेने लगे । वह आकर छत्रसाल की ओर गई और उसकी देख-भाल में लगी । थोड़ी देर में वह वहाँ बैठ गई और पंखा लेकर झलने लगी ।

'मोघां कहाँ है ?' रा' ने पूछा । उसने दादु की ओर देखा ।

अन्दर के द्वार में स्वयम् मोघां ने आकर पूछा—'क्यों, क्या काम है ? यह रही मैं ।'

वह स्तब्ध हो गए । रा' की उपस्थिति में इस प्रकार आना और बोलना अकल्प्य था । यह छोकरी क्या कर रही है ?

'दादु ! अभी इसे बन्द कर दे । फिर देखूँगा ।' रा' ने कहा ।

दादु पत्नी को ठीक करने की कभी से सोच रहा था । किन्तु रा' और राणकदेवी की उपस्थिति से संकोच कर रहा था । रा' की आज्ञा पाकर वह आगे बढ़ा ।

'मेरा कोई क्या कर सकता है ?' आगे बढ़कर मोघां बोली । उसकी विशाल आँखें विकराल बन रही थीं और वह क्रोध से काँप रही थी । उसके हाथ अब भी रक्त से भरे हुए थे । वह रा' की ओर देखने लगी । रा' ने दादु की ओर देखा ।

दादु का रक्त खौल उठा । उसने कई वर्षों से इस हड़म्पा का आतंक सहन किया था, आज उसने उसके भाई को मार डाला और पूजनीय रा' का अपमान करने चली है । उसमें बची-खुची विनाश-वृत्ति सबल हो उठी । मोघां को पीटना, उसे दबा देना, उसे वश में करना, जीवन में प्रथम बार उसे ऐसा आवेश आया । वह निकट गया ।

'दादु !' राणकदेवी बोली, इसे मत छेड़ । व्यर्थ में पाप अपने सिर मत ले ।' उसके स्वर में मृदुलता थी । प्रत्येक व्यक्ति या तो मोघां या राणक की ओर देख रहा था । मोघां—बिगड़ खड़ी हुई स्त्री शक्ति की प्रतिमा—कौन उसे डराना चाहता है, इसकी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी थी । निकट ही गीला वस्त्र छत्रसाल के मुख पर फेरती हुई संरक्षक वृत्ति की अवतार के समान देवड़ी बैठी हुई थी ।

रा' भी निश्चयात्मता दरशाता हुआ कमरे के मध्य में खड़ा हुआ था । केवल आवेश से अस्थिर दिखाई पड़ता दादु हाँप रहा था । सम्पूर्ण खंड में शांति थी । जिस समय रानी कह रही थी उस समय दादु मोघां

का हाथ पकड़ने जा रहा था। 'अलग हट जाओ' अपमान भरे स्वर में मोघां ने अपने पति से कहा, 'नहीं तो जो दशा तुम्हारे भाई की हुई है वही तुम्हारी भी होगी।

दादु के लिए अपमान की पराकाष्ठा थी। उसने होंठ पीसकर हाथ उठाया। रा' ने अधीर होकर तलवार पर हाथ रखा। रानी ने छत्रसाल के कपाल पर के केशों को हठाया।

'दादु! शांत हो।' रानी ने शान्ति से कहा, 'अम्बा भवानी चाहेंगी तो सब ठीक हो जायेगा।'

बोलते-बोलते राणक का स्वर काँपा—तनिक गरजा भी। सारा खंड कांपने लगा मानो कोई चमत्कार हो गया हो। सब काँप उठे। फिर, मानो मोघां को उत्तर हो, या सती का आज्ञा हो। छत्रसाल ने आँखें खोलीं और राणकदेवी पर टिका दीं।

'देवी! सती माता! अम्बा!' छत्रसाल धीमे से बड़बड़ाया। सब ने शब्द सुने। सबकी छाती बैठ सी गई।

रा' के मुख से उग्रता जाती रही। उसके गले में आँसू भर गए, 'सती! धन्य है तुझे!'

मोघां की आँखें फट गईं। उसके हाथ में से कटार छूट कर गिर पड़ी। उसका मुंह फीका पड़ गया। मानो भय दूर कर रही हो इस प्रकार उसने हाथ लम्बे किये और फिर आँखों पर रख लिये।

'यह—चुड़ैल—है—।' कहकर वह सबके मध्य में अचेत होकर गिर पड़ी।

'सती माँ को खम्मा!' लोगों ने सम्मान पूर्वक घोष किया।

राणकदेवी उठी और छत्रसाल को दूसरों को सौंपकर जल का पात्र लेकर मोघां के उपचार में लगी। लोग मानव रूप में इस देवी की ओर श्रद्धापूर्वक देखने लगे।

'देवी अब महल में चली। दादु! छत्रसाल को भी वहीं ले चल!' रा' ने आज्ञा दी।

'इस छोकरी को तनिक चेत हो जाय तो मैं आ जाऊँगी। आप चलिए।'

'मेरे स्वामी! आप चलिए,' वजेसंग ने कहा, 'मैं देवी को लेकर आता हूं।'

रा' ने देखा कि जब तक वह वहाँ खड़ा रहेगा कोई और स्त्री रानी की सहायता करने बाहर नहीं आएगी। अतः वह वहाँ से चला। लोग बिखरने लगे।। सम्पूर्ण नगर में सती माता के चमत्कार की बात फैल गई। नगरवासी टोलियों में राणकदेवी के दर्शन करने और उसकी चरण रज लेने आए। चारों ओर उत्साह फैल गया। चारों ओर सती माता के भजन-कीर्तन होने लगे। उस रात्रि को आनन्द के उत्साह में जूनागढ़ में जागरण हुआ।

## १६

लौटने पर रा' गम्भीर हो गया था। वह अपनी रानी को देवी मानता था। प्रणयी और पुजारी दोनों की संयुक्त भक्ति उसके हृदय में उमड़ रही थी। नगरवासियों में फैला उत्साह उसमें वीरता का संचार कर रहा था, फिर भी कोई गूढ़ क्षोभ उसके हृदय को दबा-सा रहा था। राजगढ़ में जाकर उसने काक को बुलाया और छत पर जाकर काक को सब बातें सविस्तार कही।

'काक! आज बड़ा शुभ दिन है।' रा' ने कहा, 'मेरी सती का प्रताप सचमुच चमक उठा है। छत्रसाल को उसने जीवनदान दिया और उस कर्कशा लड़की को नीचा दिखाया। सचमुच मेरी देवी अम्बा भवानी का अवतार है।'

'सच है बापू ! वह तो आपके घर और देश की लक्ष्मी है । जब तक यह है आपका राज्य अमर होगा ।'

'काक काशत् भी देखता ! शांत और सुघड़—वह कैसे बैठी-बैठी छत्रसाल को पुनर्जीवन दे रही थी ।' स्नेह-भरे स्वर में रा' ने कहा ।

'लोगों को भी विचित्र आनन्द हुआ लगता है ।'

'हां ! लोग तो उसके पीछे पागल हैं । काक ! मेरी ग्रहदशा आज से पलट जायगी !' होंठ पीसते हुए रा' ने कहा ।

'महाराज ! आप जैसे सुख के दिन न देखेंगे तो देखेगा कौन ?' रा' की बात का उलटा अर्थ लगाते हुए काक ने कहा ।

'यह कौन जानता है ! मैं कल रात को धावा बोल दूंगा । तू देख लेना, अब खेंगार हाथ बताएगा ।'

'भोलानाथ आपका भला करें ।'

'काक ! मेरे प्रस्थान करने से पहले तू यहां से चला जा । मेरे यहां न रहने पर तेरे प्राण व्यर्थ ही संकट में पड़ जाएंगे ।'

'बापू !' काक बोला, 'मुझे भेज देने की क्या जल्दी पड़ी है ? और फिर आज जाकर आपकी बातें कह दूँ तो ?' वह हंसकर बात बदलते हुए बोला ।

'काक ! तू विश्वासघात करे तो फिर भले ही मृत्यु आ जाय !' रा' ने गंभीर होकर उत्तर दिया । 'उसकी मुझे चिंता नहीं । भाई ! प्रातः-काल से पहले निकल जाना ।'

'अच्छा ! किन्तु यहाँ रहकर मैं कुछ नहीं कर सकता ?'

'काक ! मैं तेरी टेक जानता हूँ । उसमें मैं बाधा भी नहीं डालना चाहता । किन्तु इतना याद रखना तेरा स्वामी कभी तेरा मूल्य समझने का नहीं । तू मेरे पास रहा होता......तो......?'

'बापू ! जैसा आप के लिए आपका जूनागढ़ है वैसा ही मेरे लिए मेरा भी लाट है । उसी के लिए तो मुझे इस मूल्य न आंक सकने वाले स्वामी को स्वीकार करना पड़ा । क्या करूं ?'

'तू भी मेरे समान निश्चिंत होकर बैठा नहीं।' रा' ने कहा।

'और महाराज! मुझे भी कुछ ऐसा लगता है.........।'

'सती आई,' भावपूर्ण होकर रा' ने कहा और वह देवड़ी की आग वानी के लिए सीढियों की ओर जल्दी-जल्दी गया। काक खड़ा-खड़ देखता रहा। कैसी सुयोग्य जोड़ी है! कैसी श्रद्धा और कितनी निर्मलत काक की आंखो के सामने उसकी सहचरी आई। वह दोनों भी कितने श्रद्धालु, सुयोग्य और निर्मल थे। प्रभु ऐसे लोगो को क्यो कष्ट देता है? अलग कर देता है? काक को कप-कंपी छूट गयी।

'सती! इस काक को भी अब निकाल देता हूँ। आज सबको निकाल बाहर करने की मुझे धुन लग गई है।' रा' ने खेद-भरे स्वर मे कहा।

'इसने भी मुझे गाली देना आरम्भ कर दिया है?' राणकदेवी ने मुस्कराकर कहा।

'देवी! आपको गाली देने से पहले तो मै इस जिह्वा ही को खीच डालूँगा। महाराज अब मुझे दूर कर देना चाहते हैं।'

'दूर न करूं तो क्या करूं!' रा' ने कहा, 'मेरे साथ रहकर यह क्या सुखी रह सकेगा?'

'तो और कहा सुखी होऊगा? फिर देवी, दादु गढ़रक्षक की पत्नी का क्या हुआ?'

राणकदेवी हँसी, 'थोड़ी देर पश्चात् उसकी मूर्छा टूटी और मुझे बैठी देखकर फिर आंखें मींच ली। उसके विचार से तो मै जीवित ही चुड़ैल हूँ।'

'एक समय यही कहती थी तुम सम्पूर्ण सोरठ को खप्पर मे लेने के लिए जन्मी हो।' रा' ने कहा। उस स्वर में विनोद था किन्तु न जाने क्यों उसमें भी गम्भीरता की झलक थी।

'बापू! जय-पराजय भाग्य की बात है किन्तु आपके जैसा पुरुष और देवी जैसी नारी कलियुग मे नहीं हैं।'

रा' ने उत्तर नहीं दिया।

'काक !' राणकदेवी ने कहा, 'ऐसा नहीं कह नहीं तो हमें अभिमान हो जायगा।'

'आपको घमंड नहीं हो सकता। यह सब तो हम जैसे तुच्छ एवं हीन लोगों के लिए है।' कहकर काक ने वंथली की ओर हाथ किया।

'रा' और रानी दोनों उस ओर घूमे और कुछ देर तक देखते रहे।

एक भटका हुआ कौआ 'का ! का !' करता सुनाई पड़ा।

जिस ओर से कौए का स्वर आ रहा था उस ओर रा' घूमा। उसका मुख फीका पड़ गया और उसके होंठ भिड़ गये। वह गहन और क्रूर स्वर में बोला, 'काक ! जयसिंह सोलंकी ने भी क्या अत्याचार किया है ? अंबाभवानी करे और वह एक बाग मेरे हाथ में आ जाय। तो मैं उसका सारा घमंड उतार दूँ।' काक मौन रहा।

'किसी का घमंड रहा भी है जो उसका रहेगा।' राणकदेवी ने कहा।

'सती ! इस समय तो यही प्रश्न है कि जूनागढ़ टिक सकेगा या नहीं।' रा' का स्वर अधिक गम्भीर हो गया। इसका हृदय चारो ओर के आडम्बर से क्षुब्ध हो गया लगता था। अब अधिक कृत्रिमता वह सहन न कर सका। 'टेक तो रखनी ही पड़ेगी और रखूँगा—मृत्यु-पर्यन्त—किन्तु मुझे शकुन अच्छे नहीं लगते। काक को भी अब जाने देने को मन नहीं करता। कल तुम्हें छोड़कर युद्ध में जाने को भी जी न करेगा। मेरी कुछ समझ में नहीं आता। मेरा हृदय इतना व्यग्र कभी न हुआ था। ऐसा लग रहा है कि हमारा-जूनाग का-चूड़ासमा का अंत आगया है। वह वंथली देखी ? वहां से—चारों ओर विनाश फैल रहा है। वह अग्नि गगन और पृथ्वी को क्षुब्ध कर रही है। मुझे, तुझे—मेरे नाम और मेरी कीर्ति को वह ज्वाला भस्म करती प्रतीत होती है।'

बोलते-बोलते रा' रुका। वातावरण सचमुच क्षुब्ध हो गया था। राणक वंथली की ओर देखती रही। काक बीच में बोला, 'महाराज !

ऐसे विचार आपको नहीं करने चाहिएं, आप सोरठ के स्वामी हैं ! सात पीढ़ी की आन और सोरठ का स्वातन्त्र्य आपके कारण टिके हैं ।' काक ने रा' के कंधे पर हाथ रखा । 'जिसका जो होना है हो—अभी लो युद्ध करना है । सोरठ के रा' को कभी पीछे हटते सुना है ?'

रा' ने कपाल पर हाथ रखा, 'काक ! मैं कभी नहीं डिगने का··· किन्तु भविष्य में क्या लिखा है, यह जान जाता तो···।'

'भविष्य !' एक दैवी-सा स्वर गूंजा । रा' और काक चमके । चौथा कोई था नहीं । यह राणकदेवी के मुख से भावहीन, अपार्थिव, शांत स्वर निकल पड़ा था । छत की दीवाल पर हाथ रखकर, आँखें फाड़कर वह इस प्रकार खड़ी थी मानो वंथली की ओर भविष्य-लिपि पढ़ रही हो । उसके हाथ तनिक कांप रहे थे, उसकी भवें संकुचित हो गई थीं और उसकी आँखें स्थिर और तेजहीन हो गई थीं । वह शव के समान दिखाई पड़ रही थी । दोनों पुरुषों के मुख का रंग उड़ गया । वह मुंह बाए देख रहे थे····सुन रहे थे ।

'भविष्य !' राणक बोल रही थी, 'मुझे दिखाई पड़ रहा है···कुछ-कुछ ! सोलंकी की सेना सीमा पार कर रही है । प्यारा सोरठ देश—उसका विनाश हो गया ।' बोलते-बोलते वह ऐसे बोलने लगी मानो गा रही हो ।

रा' और काक दोनों कांप उठे । रा' ने काक का हाथ पकड़ा । राणक इस प्रकार देख रही थी मानो अन्धकार में कुछ दीख न रहा हो और वह ध्यान से देखने के लिए व्याकुल हो । स्वर में अधिक-से-अधिक खिन्नता आने लगी, और वह सोरठ और फिर पाटण के नाश की कहानी वह गुनगुनाती रही ।

फिर स्वर भंग हो गया । उसने निःश्वास लिया । थोड़ी देर पश्चात वह पुनः वेग से बोलने लगी । स्वर में खिन्नता कम हो गई । 'किन्तु सोलंकी को पिंडदान देने के लिए पुत्र नहीं है—कोई नहीं । पाटण का अन्त हो गया...नया राजा और नई प्रजा...किन्तु···।'

स्वर बिलकुल टूट गया और वह अटक गई। उसकी आँखें बन्द हो गईं। उसके मुंह में फेन आगए और खेंगार के उसे सम्भालने के लिए आगे बढ़ने से पहले ही वह मूछित होकर गिर पड़ी। काक नीचे से पानी लेने के लिए दौड़ा। काक पानी लाया। रा' ने उसके मुख पर छिड़का। थोड़ी देर में उसकी चेतना लौटी और उसने रा' को ओर देखकर थोड़ा-सा मुस्करा दिया।

'मेरे रा' मुझे क्या हो गया था ?'

'कुछ नहीं।' रा' ने कहा। उसे लगा कि रानी को कुछ याद नहीं रहा। रानी किसी प्रकार उठ बैठी।

'मेरा माथा घूम रहा है। मैं जाकर तनिक लेट जाऊँ।' धीमे स्वर में वह बोली। रा' उसके साथ जाने को तैयार हुआ तो उसने कहा, 'आप क्यों आते हैं ? यहीं बैठिए। काक के साथ बातचीत करिए। मैं बहुत थक गई हूँ।' कहकर वह वहाँ से चली गई।

कुछ चलकर वह सीढ़ियों की ओर घूमी। काक और खेंगार दोनों उसको अदृष्ट होती को देख रहे थे। एकाएक दोनों की दृष्टि देवड़ा ने जहाँ पांव रखे थे वहाँ गई। दोनों ने घबराकर एक दूसरे का हाथ पकड़ा। दोनों की आंखें फट गईं। दोनों का श्वास रुक गया···

रानी सीढ़ियाँ उतरकर चली गई···जहाँ-जहाँ रानी ने पाँव रखा था वहाँ-वहाँ कुंकुम चिन्ह होगए थे, ऐसे चिन्ह जो अंधकार में भी चमक रहे थे।

'काक ! देखा ?' रा' ने घबराते स्वर में पूछा।

'हां बापू ! सती माता घणीखम्मा !'

रा' ने आँखों पर हाथ रख लिये। काक उन पद-चिन्हों की ओर देखता रहा। देखते-ही-देखते लाल पद-चिन्ह अदृष्ट होगए···छत पर जैसा था वैसा ही अन्धकार छा गया।

'महाराज ! देखा ?' काक ने खिन्न होकर कहा, 'पद-चिन्ह अदृष्य हो गए।'

'रा' ने आंखों पर से हाथ हटाए। पद-चिन्ह अदृष्ट हो चुके थे।

'काक! सती चिता पर चढ़ती है तभी ऐसे पद-चिन्ह दिखाई पड़ते हैं, ऐसे ही कहावत में। मेरा अन्त आगया।' रा' ने गद्‌गद् कण्ठ से कहा।

'बापू!' काक ने साहस से कहा, 'आप मृत्यु से डरते हैं? डरेंगे तो सती की श्रद्धा को कलंकित करेंगे।'

'नहीं, मैं डरता नहीं, मैं भाग्यशाली हूँ कि मुझे ऐसी सती मिलीं। उसको शोभा दे वैसी ही मेरी मृत्यु होगी।'

'धन्य मेरे वीर!' काक ने कहा।

'काक! मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेगा?'

'प्रार्थना! आज्ञा दीजिए महाराज।'

'मैं चौकी लेकर लौटूं तब तक तू यहीं रह। मुझे कुछ हो जाय तो फिर देवड़ी और बच्चों का कौन···?'

'निश्चिन्त रहिए, बापू! युद्ध में जाइए। मैं यहीं रहूंगा और मुझसे जहाँ तक हो सकेगा इनको आँच न आने दूँगा।'

'काक! तेरा कितना अनुग्रह है, भाई! आ आलिंगन कर ले। सम्भव है कि भेंट न हो।'

मौन रहकर दोनों ने आलिंगन किया। फिर नीची दृष्टि किये चला गया।

काक कुछ देर तक वंथली की ओर देखता रहा, और फिर उसने एक निःश्वास लिया।

## १७

अगले दिन सांयकाल को जयसिंहदेव महाराज ने सभी अग्रगण्य योद्धाओं को वंथली के राजगढ़ में बुलाया था।

स्वर्ण-खचित गाव तकिये पर महाराज विराजमान थे। उनका मुख और उनकी आँखें उनके हृदय में जलती हुई ज्वाला को प्रकट कर रहे थे। उनका एक हाथ निकट ही पड़ी तलवार की रत्न-जड़ित मूठ से खेल रहा था। द्वार के अन्दर लीलादेवी और काश्मीरा देवी बैठी हुई थी और वार्तालाप में आवश्यकता पड़ने पर जब तब हामी भी भर रही थी। अन्दर मीनलदेवी बैठी पान खा रही थी और बाहर की सब बातें सुन रही थी।

राजा के निकट ही मुंजाल महेता बैठे हुए थे, उनके निकट प्रचण्ड और तेजस्वी दण्डनायक त्रिभुवनपाल और शांत दण्डनायक परशुराम बैठे हुए थे। एक ओर गुजरात के वणिक श्रेष्ठ उदा महेता घुटनों पर दुपट्टा डाले ठोढ़ी पर हाथ लगाकर बैठे हुए थे। दादाक महेता दो-तीन मण्डलेश्वर और सेनापति भी बैठे हुए थे। मृत्युशैया से उठकर प्रथम बार जगदेव परमार भी अपनी बुद्धि का लाभ देने के लिए इस मन्त्रणा पर आए हुए थे।

सब तैयार था। जूनागढ़ की सभी चौकियों पर एक छापा मारने की योजना बन चुकी थी, और चौकियाँ लेकर गढ़ पर एक भारी धावा मारने के लिए चारों ओर के सैनिकों को तैयार कर लिया गया था। कौन वहाँ पर धावा मारे कौन कहां से सन्देशा ले जाय, कौन किसकी सहायता करे, कोई पीछे हट जाय तो कौन किसकी सहायता को पहुँचे, यह सब निश्चित हो गया था। धावे में दुर्जय त्रिभुवनपाल को जूनागढ़ का विशाल द्वार तोड़ना था, दादाक महेता और अन्य दो सेनापतियों को गिरनार की ओर की दो बड़ी खिड़कियों पर आक्रमण करना था, स्वयं महाराज और परशुराम के हाथ में मध्य की चौकियों और दोनों ओर आवश्यकतानुसार सहायता पहुंचाने का काम था। उदा महेता को मेंदरड़े रहकर चारों ओर की सेना को टिकाए रखना था। मुंजाल महेता वंथली की देख-भाल के लिए नियुक्त। आज सभी पर महाराज के आवेश का प्रभाव था। त्रिभुवनपाल इसी चिन्ता में पड़े हुए थे कि

खेंगार का क्या किया जाय ? परशुराम को यही चिन्ता थी कि जूनागढ़ पराजित हो जाय तो उसे किसको सौंपना है ? लीलादेवी को यही बात चुभ रही थी कि वह केवल एक ही सेना के साथ रह सकती थी। जगदेव परमार रह-रह कर यही बात कर रहे थे कि वे बिलकुल अच्छे हो गए हैं। परन्तु महाराज का आवेश इन सबसे निराला था। वह जला ही करता—निर्जन वन में जलती हुई अग्नि के समान। चारों ओर उसकी लपटें फैल रही थीं और आशातीत स्थानों पर पहुंच रही थीं।

'महाराज ! मुझे दण्डनायक महाराज के साथ द्वार पर जाने दीजिए।' परमार ने तीसरी बार प्रार्थना की।

'परमार ! व्यर्थ की बकबक मत कर !' महाराज ने अधीर होकर कहा, मुझे तुझसे हजार काम करवाने हैं। परशूराम जी ! यह सोरठी हरामखोर हैं, गढ़ जीतने के पश्चात् भी कुछ दिनों तक शांत न बैठने देंगे। इसलिए जितना जीता जाय उस पर पूर्ण अधिकार करना नितान्त आवश्यक है।

'ऐसा तो होना ही चाहिए !' परशुराम ने कहा।

'वह देशल भी वहीं पड़ा-पड़ा सहायता करेगा, किन्तु है नीच, महेता जी !' उदा की ओर घूमते हुए राजा बोले, 'वाहड़ गया सो लौटा भी नहीं। अब तक कुछ उत्तर भी नहीं लाया।'

'आने ही वाला है।' उदा ने मृदुलता से कहा।

'तुम्हारे इस पुत्र में बहुत पानी नहीं !' और फिर त्रिभुवन को लक्ष्य कर महाराज ने कहा, 'और तुम धावा बोलते समय हाथी पर मत बैठना। हाथी बिगड़ खड़ा होगा तो हमारे प्राण लेगा।' इतने में बाहर कुछ गड़बड़ होने के कारण राजा की भवें तन गईं। 'ये क्या शोर मचा रखा है ? बाहर खड़े वह गधे क्या कर रहे हैं ?

एक द्वारपाल आया।

'अन्नदाता ! भृगुकच्छ से कोई समाचार लाया है।'

'कह दे शोभ महेता से मिले, मुझे समाचार सुनने का अवकाश

नहीं है ।'

'अन्नदाता ! वह आप ही से भेंट करना चाहता है ।'

'सारे नगर में क्या मैं ही भेंट किया करूँ ? जा, कह दे कि शोभ महेता से मिले ।'

'और न माने तो ?'

'तेरी तलवार में धार है या नहीं ?' राजा क्रोध में गरज उठे ।

'उसका नाम क्या है ?' त्रिभुवनपाल ने पूछा ।

'सोमेश्वर भट ।' द्वारपाल ने कहा ।

'भृगुकच्छ का गढ़रक्षक !' त्रिभुवनपाल का मुख चिन्तातुर हो गया, 'वह वहाँ क्यों आया है ?'

'अच्छा, बुला ला ।' मुंजाल ने कहा, 'कुछ गड़बड़ मालूम होती है ?'

'यह क्यों आया है ?' लीलादेवी ने धीरे से पूछा ।

'बुला, बुला ।' महाराज उतावले होकर बोले । उनके मुख से स्पष्ट था कि जूनागढ़ को जीतने की बात छोड़कर उन्हें कोई बात इस समय पसन्द नहीं थी । लीलादेवी कुछ आगे बढ़कर देखने लगी । फटी धोती पहने हुए एक पुरुष आया : उसके शरीर पर कीचड़ था । उसके मुख से घास लिपटी हुई थी । उसके घुंघराले बास सिंह के बालों के समान सिर पर खड़े हुए थे । सभी इस विचित्र आगंतुक की ओर देखने लगे ।

'यह है सोमेश्वर भट ?' क्रोध में महाराज ने पूछा ।

'हाँ अन्नदाता ! मैं ही सोमेश्वर भट हूँ—भृगुकच्छ का गढ़रक्षक ।'

'क्यों आया है ?' अधीर होकर राजा ने पूछा ।

'महाराज ! रेवापाल ने विद्रोह करके सम्पूर्ण भृगुकच्छ पर अधिकार कर लिया है ।'

'क्या बकता है ?'

सोमेश्वर को राजा का वाक्य अपमानजनक लगा । गुजरात के

स्वामी को यह समाचार देने के लिए अनेक कष्ट उठाकर उसने रात-दिन एक कर दिए थे और उसका यह पुरस्कार ?

'बकने की मेरी आदत नहीं है।' गर्व से काक के शिष्य ने कहा। 'यह समाचार देने के लिए ही मैं अनेकों कष्ट झेलकर यहाँ तक आया हूँ।'

'पट्टणी सेना का क्या हुआ ?' मुंजाल महेता ने पूछा।

'बन्दी बना ली गई। केवल आंबड़ महेता, मंजरी देवी, और एक वृद्ध सैनिक गढ़ में चले गए हैं।'

'मंजरी कौन काक की पत्नी ?' महाराज ने कहा।

'जी हाँ।'

त्रिभुवनपाल् बीच में ही बोल पड़ा, 'सेनापति बन्दी बना लिये गए ?'

'हाँ। अक्षयतृतीया के मेले का लाभ उठाकर रेवापाल ने सबको बन्दी बना लिया।'

'गढ़ तो टिक सकता है न ?' त्रिभुवनपाल ने पूछा।

'नहीं, महाराज ! अन्दर केवल तीन-चार व्यक्ति हैं और रेवापाल ने रक्षक को फुसलाकर सम्पूर्ण अनाज नदी में फिकवा दिया है। यदि शीघ्र ही सहायता न पहुँची तो गढ़ टिक न सकेगा।'

'वटप्रद और खेटकपुर के गढ़ का क्या हुआ ?' मुंजाल महेता ने पूछा।

'रेवापाल कच्चा नहीं है। भृगुकच्छ ले लिया तो उनकी क्या बिसात ? माँडल से खेटकपुर तक सब स्थानों पर विद्रोह हो गया है। शीघ्र ही यहाँ से सेना जानी चाहिए, नहीं तो···।'

'हमें तेरी सलाह की आवश्यकता नहीं है।' आग की लपट जैसे स्वर में जयसिंहदेव बोले।'

'हमें क्या करना चाहिए ?' त्रिभुवनपाल ने कहा ।

मुंजाल महेता बोलने ही वाले थे कि महाराज क्रोधित होकर कहने लगे, 'क्या करना चाहिए ? इस समय कुछ नहीं किया जा सकता। जब तक जूनागढ़ नहीं गिरता तब तक कुछ नहीं हो सकता।'

'किन्तु लाट हाथ से निकल गया तो•••?' लीलादेवी बीच में बोली ।

जयसिंह का क्रोध उमड़ पड़ा, 'जाय तो जाने दे। तुझे लाट ही रखना हो तो इस गधे को लेकर सहायता को जा । भट्ट ! बाहर जा । आवश्यकता होगी तो बुला लूँगा । जाओ इसे बाहर ले जाओ ।' राजा ने द्वारपाल को आज्ञा दी। पल-भर के लिए दाँत पीसकर सोमेश्वर ने चारों ओर देखा। जिस आशा से उसने यह यात्रा की थी वह धूल में मिल गई । लाट, भृगुकच्छ, गढ़, मंजरीदेवी और उसके गुरु के बच्चे, सब पर उसे विनाश मंडराता हुआ दिखाई पड़ा । वह समझ गया कि कोई भी प्रयत्न करना हास्यास्पद होगा। उसके लिए लाट और काक बहुत बड़े थे, किन्तु यहाँ तो उनका कौड़ी-भर भी मूल्य नहीं था। निराशा और तिरस्कार से वह कमरा छोड़ कर चला गया ।

'मुझे तो लगता है इसका मस्तिष्क फिर गया है।' राजा ने ठंडे पड़ते हुए कहा, 'चलो हम अपना काम प्रारम्भ करें। काक भी तो नहीं है, नहीं तो उसी को भेज देते ।'

'दो-चार दिन में कुछ बिगड़ नहीं जायगा।' मुंजाल महेता ने कहा। महाराज की लगन कम होने देने में उन्होंने कोई सार नहीं देखा। 'सब ध्यान रखना, बात बाहर न जाय। नहीं तो लाट से आई हुई सेना में खलबली मच जायगी ।'

'घबराने के लिए मैं समय ही नहीं दूँगा। आज ही रात को हम धावा बोल देंगे।' महाराज ने कहा।

'जो आज्ञा।' मुंजाल बोला। सब कुछ तैयार था अतः व्यर्थ में समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी ।

'त्रिभुवन भाई ! तुम तैयार हो जाओ।'

'जी !' कहकर त्रिभुवनपाल उठे ।

'मैं भी आज्ञा चाहता हूँ ।' दादाक महेता ने उठते हुए आज्ञा माँगी।

'अच्छा ।' महाराज ने उत्तर दिया । त्रिभुवनपाल, दादाक महेता और सेनापति उठकर विदा हुए । महाराज और परशुराम योजना पर विस्तारपूर्वक विचार करने में लगे ।

'महेता जी ! अब आप जाइए ।' महाराज ने मुंजाल महेता से कहा । अतः वे उठे, और रानियाँ भी धीरे-धीरे चली गईं ।

महाराज, परशुराम और परमार यह तीन रह गए । इतने में एक अनुचर आया ।

'क्यों, और क्या है ?' महाराज ने पूछा ।

'अन्नदाता ! वाहड़ महेता किसी को लेकर आए हैं ।'

'आने दे ।' जयसिंह ने एकदम आज्ञा दी और दंडनायक की ओर घूमकर बोले, 'काक आ गया ।'

'काक ?' विस्मित होकर परशुराम ने पूछा ।

तकिए के सहारे बैठा जगदेव एकदम सीधा होकर बैठ गया ।

'हाँ । मैंने वाहड़ को उसे ले आने का कार्य सौंपा था ।' कुछ प्रसन्न होकर महाराज बोले ।

'चलो, बहुत अच्छा हुआ । काक काम के समय आ गया । परशुराम ने कहा ।

वाहड़ महेता और मुंह पर वस्त्र बंधे होने के कारण बिलकुल न पहचाने जा सकें ऐसे दो व्यक्ति अंदर आए । महाराज ने देखा किन्तु, उन दो में से एक का भी शरीर काक-सा नहीं था । महाराज का मुख एकदम लाल हो गया ।

'काक कहाँ है ?' वह गरज पड़े ।

'महाराज !' खिन्न मुख से बाहड़ बोला, 'मुझे भटराज नहीं मिले ।'

'तो तू लौटकर कैसे आया ?' महाराज चिल्लाए ।

'अन्नदाता !' रुँआसे स्वर में वाहड़ ने कहा। एक तो दिया वचन न रख सका, स्त्री मिलने की आशा जाती रही, और ऊपर से महाराज क्रोधित हो गए। 'अरे काक···!' उसने दुःख-भरी सांस ली।

महाराज के कपाल की नसें उभर आईं। 'मूर्ख!' महाराज ने तिरस्कार से कहा, 'पट्टणी योद्धा होकर सोचा हुआ काम किये बिना ही तू जीवित ही कैसे लौट आया ? जा, कायर ! छोड़े देता हूं। इसी वंथली से निकल जा। मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता। जा अपने खंभात, और कविता लिख···।'

किन्तु वाहड़ खड़ा ही रहा।

'क्यों कुछ कहना है ?'

'जाने से पहले अपने पिता जी से भेंट कर लूं ?' जैसे-तेसे फीके से स्वर में वाहड़ बोला।

'बाप से मिल, चाहे मां से मिल, किन्तु जा।' महाराज ने कहा।

मुख नीचा किए हुए भग्न-हृदय वाहड़ बाहर चला गया।

## १८

'परमार ! तू बाहर जाकर बैठ। काम पड़ने पर बुला लूंगा।, जयसिंहदेव महाराज ने कहा।

'जो आज्ञा।' निर्बल परमार वहां से उठा।

'मैं भी जाऊं ?' परशुराम ने विदा ली।

'यह मेरे सम्बन्धी···।' धीमे से महाराज ने दण्डनायक के कान में कहा, 'मामा का पक्ष छोड़कर इधर आ गए हैं।'

'संभल कर काम लीजिएगा।' धीरे-से सलाह देकर दण्डनाक उठे।

उनके चले जाने पर महाराज उन दो व्यक्तियों की ओर मुड़े।

'देशलदेव जी हैं क्या ? और यह कौन वीशलदेव ? बैठो। चाहो तो वस्त्र भी खोल दो।'

'अन्नदाता की जैसी आज्ञा।' कहकर देशलदेव ने वस्त्र खोल लिया और महाराज के सम्मुख जा बैठा। 'अन्नदाता ! आपके संदेश के उत्तर में हम आ गए हैं। कहिए, क्या आज्ञा है ?'

महाराज को देशलदेव की वाणी में छिपा हुआ गर्व अच्छा नहीं लगा।

मैंने तो कभी संदेशा नहीं भेजा। आप ही मुझसे भेंट कर जाना चाहते थे। मुझे तो इतना ही जानना है कि आप मेरी क्या सहायता कर सकते हैं।'

हम सब प्रकार की सहायता कर सकते हैं।' देशलदेव ने कहा।

'किस प्रकार की ?'

'आपको चाहिए तो जूनागढ़ हस्तगत करवा देंगे।'

'कब ?'

'इसी समय।'

'किस प्रकार ?'

'आपके सैनिकों को गढ़ में ले जाकर।'

'गढ़ तो मैं तुम्हारी सहायता के बिना भी ले सकता हूँ।'

देशलदेव के मुख पर निराशा छा गई। सदा की टेव के अनुसार वह मूंछ चबाने लगा। उसने तो जूनागढ़ दिलवाकर जूनागढ़ का स्वामी बनने की आशा कर रखी थी।

'महाराज ! आप सर्वशक्तिमान हैं, किन्तु हम यथाशक्ति सहायता करने के लिए तत्पर हैं। आपकी क्या आज्ञा है ?' देशलदव ने बहुत नम्रता से कहा।

'तुम मुझे गढ़ में किस प्रकार ले जा सकते हो ?'

'गढ़ की एक खिड़की पर मेरा अपना आदमी है।'

'वह कहने को तो कह गया किन्तु बाद में देशलदेव का हृदय धड़क

उठा। सम्भव है दादु गढ़रक्षक अपने भाई के मारे जाने से क्रोधित होकर गढ़ पर न आए। और दूसरा आदमी हमीर जिसे उसने गढ़ पर रहने के लिए कहा था—वह भी न आए तो ? देशलदेव की समझ में आ गया कि पक्ष-परिवर्तन करना कोई खेल की बात नहीं थी।

'किन्तु गढ़ तक पहुँचा कैसे जायेगा ?'

'मैंने एक चौकी भी रख छोड़ी है।'

'वहाँ से कितने सैनिक जा सकते हैं ?'

'जितने आप कहें उतने।'

'अन्दर कितने आदमियों की आवश्यकता पड़ेगी ?'

'अन्नदाता ! खेंगार मध्यरात्रि को गढ़ की खिड़कियाँ देखने निकलता है, इसलिए जितने भी आदमी होंग सबको ठिकाने लगा दूंगा। फिर तो मुख्य द्वार खोलकर आपकी सेना को प्रवेश करवाना ही शेष रह जाता है।

'जयसिंहदेव ने धिक्कार सूचक दृष्टि देशलदेव पर डाली। पन्द्रह वर्ष तक मामा के यहाँ रहकर उसकी सम्पत्ति का आनन्द करने के पश्चात् भी इस प्रकार का प्रतिकार देने वाले लोग भी संसार में बसते हैं। कुछ देर तक महाराज विचार करते रहे—कहीं यह कपटी तो नहीं है ?'

'तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

'जी।' मीठी हँसी से देशलदेव ने विश्वास दिलाया।

'यदि कुछ भी गड़बड़ हुई तो तुम दोनों के सिर धड़ से अलग करने में विलम्ब नहीं करूंगा।'

'प्रसन्नता से। और यदि सब कुछ भली प्रकार हो गया तो ?'

'तो क्या ? पुरस्कार देने में जयसिंहदेव ने कभी हाथ पीछे नहीं किया।

'किन्तु महाराज ! फिर भी कुछ निश्चित कर लेना ही अच्छा होगा।' देशलदेव ने कहा और कुछ जोर से मूँछों पर ताव देने

लगा ।

महाराज क्रोधित होकर बोले, 'जयसिंहदेव जो दे वही लेना होगा।'

'आप पर पूर्ण विश्वास है।' देशलदेव ने धीमे-से कहा, किन्तु मुझे संसार में अनुभव ही ऐसे हुए हैं। देव! स्पष्टवक्ता ही सदा सुखी रहता है।'

'देशलदेव जी! मेरा हृदय सदा उदार रहा है।'

'मैं क्या नहीं जानता? किन्तु पाटण में मेरे शत्रु भी तो कम नहीं हैं मैं तो केवल आप ही के भरोसे से आया हूं।'

'मेरा विश्वास है तो फिर क्यों किसी की चिन्ता करते हो?' महाराज बोले।

'इसीलिए तो महाराज, मैं स्पष्ट कह रहा हूं। मैं अब वृद्ध हो गया हूं। यहाँ तो मुंजाल महेता ने मेरा मण्डल ही छीन लिया है, और जनागढ़ छोड़ने से खेंगार के मरने के पश्चात् मेरी गद्दी पर अधिकार भी जाता रहा···।'

जयसिंहदेव का कपाल आकुंचित हो गया, 'तुम्हारा गद्दी पर अधिकार! खेंगार के तो दो पुत्र हैं।'

'ऊँह—बहुत छोटे···हैं।'

'देशलदेव जी!' महाराज क्रुद्धकर बोले, तुमने क्या खोया और क्या नहीं, यह मेरे सोचने की बात नहीं, किन्तु एक बात कह देता हूं।' कुछ देर के लिए महाराज विचार-मग्न हो गए, मेरी इच्छा पूरी हो गई तो जो माँगोगे वही दे दूंगा।'

देशलदेव समझ गया कि महाराज को कोई नया विचार सूझा है। जूनागढ़ की विजय से भी अधिक अन्य वस्तु उन्हें प्रिय थी। क्या हो सकती है? क्या यह वास्तव में सच है कि जयसिंहदेव राणकदेवी के पीछे पागल है?

'आपकी जो इच्छा हो खुशी से कहिए।'

महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

देशलदेव महाराज की इच्छा जानने का मार्ग ढूँढने लगा । 'मैं तो महाराज एक नहीं दो बातें कर सकता हूँ ।' वह बोला ।

'दो कौन सी ?'

'एक तो जूनागढ़ हस्तगत करवा दूंगा ।'

'और दूसरी ?'

'जिस स्त्री ने आपका अनादर कर अपमान किया था उससे भेंट भी करवा दूंगा । देशलदेव की मूंछें दाँतों के बीच में चली गईं । महाराज चमके । उन्हें देशलदेव जादूगर-सा लगा । उनके मन में से विजय के सब विचार जाते रहे । उन्हें लगा यह युद्ध वह राणक को प्राप्त करने के लिए ही तो कर रहे थे । जूनागढ़ मिले या न मिले किन्तु राणक को प्राप्त होनी ही चाहिए । उन्हें एकाएक विचार आया कि इतने वर्षों से वह राणक के लिए तो व्याकुल हो रहे थे । देशलदेव द्वारा दिये गए लालच से वे एकदम नरम पड़ गए और देशलदेव उन्हें परम दानी जान पड़ने लगा ।

किस प्रकार ?'

'राणकदेवी के आवास में आपको ले जाकर…।'

'फिर ?'

देशलदेव ने देखा कि इस राजा को रिझाने के लिए इतना ही पर्याप्त न था ।

'मैं मामी का विश्वासपात्र हूँ ।'

'ठीक ।'

'आपके लिए दो शब्द कह सकता हूँ, जो आप नहीं कह सकते वह मैं कह सकता हूं । जैसा भी हूँ बड़ा हूँ ।'

महाराज इस वृद्ध का आडम्बर देखकर मुस्करा दिए ।

'एक बार मैं उससे भेंट कर लूँ तो सब ठीक हो जायेगा ।'

'किन्तु तनिक हठी है ।'

'कौन स्त्री हठी नहीं होती ?' जयसिंहदेव ने अपना स्त्री सम्बन्धी ज्ञान प्रदर्शित किया।

देशलदेव ने हँसकर हाथ जोड़े, 'सच है महाराज !'

'मैं भेंट करवा दूँ उसके पश्चात् मुझ अकिंचन पर दया करनी पड़ेगी महाराज।'

'अब भी अविश्वास ही है ?'

'अविश्वास नहीं महाराज ! किन्तु वृद्ध पुरुषों का स्वभाव तनिक अधीर होता है यह क्या आपसे छिपा है ? आपने अभी मुझसे काम नहीं लिया है किन्तु मेरे जैसा काम का व्यक्ति आपको मिलना कठिन है। जिसका भक्त हो गया उसके लिए सिर तक दे दूँ, ऐसा हूँ।'

आत्म-प्रशंसा के विरुद्ध कुछ भी कहना महाराज को लाभदायक नहीं लगा।

'तुम्हें चाहिए क्या ?'

'मैंने आपसे कहा न, मेरा छीना हुआ मण्डल···।'

'अच्छा। और ?'

'आपको जूनागढ़ के लिए किसी आदमी की आवश्यकता तो होगी ही। मैं भी तो आप ही के कुटुम्ब का हूँ।' देशलदेव ने साहस कर कहा। और दाँतों के बीच से मूँछें हटाकर उन्हें हाथ से संवारने लगा।

महाराज चकित हो गए—इस हरामखोर के साहस की भी कोई सीमा नहीं है ! किन्तु यह जो कुछ दिलवाने के लिए कह रहा था वह प्राप्त करवा दे तो उसे अच्छा पुरस्कार तो देना ही चाहिए और क्या देना होगा यह भी उनके अधिकार की ही बात तो थी।

'समझा, यों कहो न।' जयसिंहदेव ने कहा, 'देशलदेव जी ! तुम अपना वचन निभाओ, मैं अपना वचन निश्चय ही पूरा करूँगा।

देशलदेव के मुख पर हर्ष छा गया।

'महाराज ! आप वचन देते हैं ?'

'हाँ। अब और क्या चाहिए ?'

'तो महाराज ! तैयार हो जाइए। आज बारह बजे गढ़ में प्रवेश करना है।'

'अच्छा ! चलो तैयारी करवाता हूं। जगदेव !' महाराज ने पुकारा। उनके मुख पर प्रणय में पागल व्यक्ति का उन्माद छाया हुआ था। उनका मुख पुलकित हो उठा। उनके होंठ भिड़ गए, क्रोध से नहीं, किन्तु निमंत्रित प्रणयी की अधीरता से।

'अन्नदाता !' कहता हुआ जगदेव परमार आया।

'परमार ! दो सौ अच्छे सैनिक लेकर तैयार हो जा। हमें एक दूसरे स्थान से आक्रमण करना है।'

'जो आज्ञा।'

'और इन लोगों का स्वागत-सत्कार करके और परशुराम और उदा महेता को भेज।'

'जी' कहकर जगदेव वहाँ से गया और उसके साथ देशलदेव और वीशलदेव नीचे झुककर प्रणाम करते हुए गए।

एकान्त में महाराज की उत्तेजित शक्ति ने पन्द्रह वर्ष पहले देखी एक बालिका का कोमल मुख उनके सामने ला खड़ा किया। हा ! हा! उसी मुख ने उनका हृदय हर लिया था—वही मुख निकट न होने के कारण वह दुःखी था—उसी मुख के बिना उनकी कीर्ति फीकी थी। उसकी उस जयश्री को उसका शत्रु हर ले गया था, वही पुनः उसके घर आएगी। राणक उसके रनिवास में आएगी तभी वह सचमुच में जयसिंह होगा।

उसके हृदय में भावनाएं सदा प्रचण्ड होकर ही आया करती हैं। इस समय भी ऐसी ही एक भावना आई। जो विजय के पीछे पागल था यह स्त्री के पीछे पागल हो गया। घोर कामी की तीव्र इच्छाओं का वह अनुभव करने लगा; इतना ही नहीं, राणक बिना उसे जीवन ही व्यर्थ लगने लगा। उसके मन में भारी उथल-पुथल हुई। रा' खेंगार की विधवा से वह ब्याह करेगा तो पाटण कैसे स्वीकार करेगा ? और

दूसरी रानियां उसे पटरानी-पद कैसे देने देंगी ? महाराज मुस्कराए। वह मन-ही-मन बड़बड़ाए—राजा कालस्य कारणम्। किसकी मजाल है कि मेरी इच्छा के विरुद्ध जाय ? राजा मैं हूँ या कोई और !

किन्तु राणक न कह दे तो ? वह तो सती मानी जाती है। महाराज मूछों पर ताव दिया। चंचल स्त्री कभी किसी की हुई है कि खेंगार की होगी ? और हो भी तो उसका प्रताप ही इतना था कि उसकी क्या बिसात जो विरोध करे ? उससे—कलियुग के विक्रमादित्य से—क्या नहीं हो सकता, वह सब कुछ कर सकता है।

इतने में परशुराम और उदा महेता आ गए।

'दण्डनायक !' महाराज ने कहा, 'देशल और वीशल आ गए हैं। उसके हाथ में एक चौकी है उसे पारकर चुपचाप गढ़ में जाऊंगा। मैं और उदा महेता पीछे से होकर जायंगे, त्रिभुवनपाल गढ़ के द्वार पर आ पहुंचेंगे।'

'ठीक है।' उदा महेता ने अपनी योजना सफल होते देखकर हर्षित होकर कहा। 'इसके पश्चात कुछ करने को रह ही नहीं जाता।'

'किन्तु आपका पिछले द्वार से होकर जाना तो व्यर्थ का संकट उठाना है।' परशुराम ने कहा।

'बिलकुल नहीं,' महाराज ने कहा। 'यदि चौकी पार न की जा सकी तो हमारी पहली योजना तो है ही। और अगर पार हो गए तो फिर लाभ कितना होगा ? और बड़े संकटों का सामना मैं न करूँगा तो कौन करेगा ?'

'संभव है कुछ हो जाय तो.........।'

'कुछ होने का नहीं। मुझे क्या हो सकता है ?' दैवत्व का स्वाँग भरते हुए जयसिंहदेव ने कहा।

'तो खिड़की तक मैं भी आऊँगा। इस प्रकार जाने देने में मेरा मन नहीं मानता।' परशुराम ने कहा।

'अच्छा !' महाराज ने कहा, 'महेता तैयार हो जाओ। कूच की

आज्ञा दे दो। हम एक- दो घड़ी में प्रस्थान करेंगे। मैं रानी को तैयार होने के लिए सूचित करता हूँ।'

'जो आज्ञा।' कहकर दोनों चले गये।

'बाबरा को भी साथ लेना ही पड़ेगा।' महाराज ने मन-ही-मन सोचा।

## १६

सोमेश्वर पागल-सा हो गया था। जब वह भृगुकच्छ से निकला था। उस समय गुजरात के नाथ के प्रति उसकी असीम श्रद्धा थी। वंथली में अनाथों का नाथ बैठा हुआ था, वहीं उसका प्रतापी गुरू भी था, जैसे ही वहाँ जाकर भृगुकच्छ की दशा कहेगा वैसे ही एक विशाल पट्टणी सेना सहायता के लिए भेज दी जायगी, और उसका महारथी गुरू सब कुछ छोड़कर अपनी पत्नी और अपने नगर की सहायता को दौड़ पड़ेगा। इसी श्रद्धा के कारण उसने अनेक दुख उठाए, भूख सहन की, और निद्रा त्यागी। अधिकांश उसने दौड़ते हुए मार्ग पूरा किया। भूखों मरती मंजरी और उसके बच्चों की रक्षा के हेतु न जाने क्या-क्या कष्ट उठा कर वह वंथली आया। वहाँ जाने के पश्चात् किसी प्रकार वह राजा के सम्मुख पहुँचा। किन्तु वहाँ न उसके गुरू का कोई पता था और न किसी को उसके देश ही की चिन्ता थी। उसके राजा को किसी की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं थी। क्या यही जयसिंहदेव सोलंकी है? इसीके लिए सब अपने प्राण अर्पण कर रहे थे? इसी को सब आधुनिक विक्रमादित्य मानते थे? इसी के लिए काक भटराज अपना तन, मन, धन अपनी पत्नी, बच्चे सब कुछ होम देने को तत्पर थे? उसका माथा चकरा गया। उसमें इन सबसे बदला लेने की भावना बड़ी वेगवती हो

गई। किन्तु वह हंस पड़ा। यह आवेश व्यर्थ था। वह प्राण भी लगा दे तो राज्य-सत्ता का एक भी कंकड़ हिलने वाला नहीं था। लाट में परमेश्वर के समान पूज्य त्रिभुवनपाल की यहाँ कोई गिनती ही नहीं थी।

हंसते, हंसी उड़ाते हुए सैनिकों ने उसे इस प्रकार निकाल दिया मानो वह पागल कुत्ता हो। वह रुआंसा सा हो गया। दो-चार को मार डालने का मन हुआ। चिल्लाकर पाटण को श्राप देने का मन हुआ। किन्तु कुछ भी न हो सका। अन्त में सामने के चौक में जाकर आगे क्या करे यह सोचने के लिए वह एक ओर खड़ा हो गया। इस समय तो उसे यही लग रहा था कि उसके काक से तो रेवापाल अधिक चतुर था। लाट भले ही दुःखी हो, किन्तु दासता में सड़ने देने से क्या लाभ है? इस कठोर राजा की पूजा करने से तो कट मरना क्या बुरा है? उसे लगा कि सुख से स्वाधीनता अधिक मूल्यवान होती है; काक का अनुचर होकर इस प्रकार दुत्कारे जाने से तो रेवापाल का अनुचर होकर मरना अधिक गौरवशाली था। उसे अपनी मूर्खता पर हंसी आ गई। इस समय यह विचार किस काम के? वह भूखा था, थका हुआ था, और विश्राम करने के लिए कोई स्थान भी तो नहीं था। उसका देश दूर था अतः वास्तविक प्रश्न तो यह था कि अब क्या किया जाय? वह विचार करता रहा। थोड़ी देर बाद उसने सिर ऊपर उठाकर देखा तो एक वृद्ध वणिक उसके निकट खड़ा-खड़ा देख रहा था।

'भाई! लाट से आये हो?' उसने मीठे स्वर में पूछा।

'हाँ, बाबा! क्या बात है?' थका हुआ सोमेश्वर बोला।

'कुछ नहीं, भई कुछ खाया पिया?'

'खड़े रहने को जहाँ ठिकाना नहीं वहाँ खाने-पीने की क्या बात?' कटुता से सोमेश्वर ने कहा।

कैसी बात करते हो? जयसिंहदेव महाराज के यहाँ क्या अनाज चुक गया है? चलो, मैं व्यवस्था कर देता हूँ।' वह वृद्ध बोला।

सोमेश्वर को यही तो चाहिए था। वह वृद्ध उसे लेकर कोठार की

ओर गया और आवश्यक वस्तुएँ की व्यवस्था करके चला गया। सोमेश्वर बहुत भूखा था, जल्दी से नहाकर भोजन बना कर खा लिया। इतने में वह वृद्ध फिर आया

'सोमेश्वर भटजी ! भोजन कर चुके ?'

'सोमेश्वर चकित हो गया। इस बूढ़े ने उसका नाम कैसे जान लिया ?

'हाँ, काक ! क्यों ?'

'चलो, तुम्हें बुलाते है।'

'कौन ?'

'महाआमात्य।'

'सोमेश्वर ने काक के मुख से अनेकों बार महाआमात्य की प्रशंसा सुनी थी। राजा के निकट बहुत लोग बैठे थे, उनमें महाआमात्य थे या नहीं यह वह नहीं जानता था। इस विख्यात व्यक्ति का नाम सुनकर उसका हृदय धड़क उठा।

'मुंजाल महेता ?

'हाँ।'

एक भी शब्द कहे बिना सोमेश्वर उस वृद्ध के पीछे हो लिया। थोड़ी देर पश्चात् दोनों ऊपर के एक कक्ष में पहुँचे। वृद्ध ने उसे वहीं खड़े रहने को कहा। सोमेश्वर खड़ा हो गया और वह वृद्ध अन्दर गया।

सोमेश्वर कुछ घबरा -सा गया। मन्त्रीवर को कैसे मालूम हुआ कि वह आया है ? और यदि वह राज-सभा में बैठे हुए थे तो इस प्रकार पीछे से बुलाने का कारण ? करना क्या चाहते हैं ? वह उसे स्वयं पर क्रोध आया। यह घबराहट किसलिए ? मुंजाल महेता से उसेक्या चिन्ता ? उनके साथ उसका क्या सम्बन्ध ? कुचले जाते हुए लाट के वासी को स्वाधिकार-प्रमत्त जयसिंहदेव के मन्त्री से क्या काम ? उसके देश की दशा बिगड़ गई, देवता जैसे उसके गुरू का परिवार जीवन मरन के संघर्ष में है , अम्बा जैसी गुरु-पत्नी भूखों मर रही थी—यह सब इन्हीं के

कारण तो था। तो उनके प्रति क्यों थोड़ा-सा भी सौजन्य दिखाया जाय ?

इतने में वृद्ध आया, 'भटजी ! अन्दर आओ।' सोमेश्वर अन्दर गया। गद्दी पर एक वृद्ध व्यक्ति बैठा हुआ था। वृद्धावस्था में भी उसके मुख का सौंदर्य और गौरव चकाचौंध करने वाले थे, उसके स्नायु का बल मान उत्पन्न करता था, उसकी आंखों में इस समय मुस्कराहट थी। सोमेश्वर ने उसे पहचाना। यही मन्त्री तो जयसिंहदेव के निकट बैठा हुआ था। और फिर भी उसका अपमान किया गया। सोमेश्वर ने होंठ मींचे।

'आ सोमेश्वर, वस्ता !' उसने उस वृद्ध से कहा, 'तू बाहर खड़ा रह। क्यों सोमेश्वर, भोजन किया भाई ?'

'जी हाँ।' कहकर सोमेश्वर मौन हो गया। मन्त्री यह हठ देखकर मुस्कराए।

'भृगुकच्छ के गढ़ में अनाज कितना शेष है ?'

'समाप्त होने आया होगा।' कटुता से सोमेश्वर बोला।

'और सैनिक सभी पकड़े गए ?'

'जी, हाँ।'

'माधव सेनापति कहाँ हैं ?'

'कारागार में।

'ठीक मालूम है ?'

'गिरफ्तार होते मैंने स्वयं देखा था।'

'गढ़ में कौन है ?'

'भटराज की पत्नी और बच्चे, आंबड़ महेता, एक सैनिक और एक ब्राह्मण।'

गढ़ तो बहुत दृढ़ है न।' मुंजाल बोला।

'किन्तु अन्दर रहने वाले हवा खाकर तो नहीं जी सकते।'

'रेवापाल लोगों को प्रिय है, क्यों ?'

'दो व्यक्ति लोगों को प्रिय थे। आपने एक को बुला लिया इसलिए

दूसरे को अवसर मिल गया।' कटुता से भरकर सोमेश्वर ने कहा।

'काक की बात कहता है न ?'

'जी।'

'तू काक का शिष्य है न ?' मुस्कराकर मुंजाल ने पूछा।

'जी। शिष्य कहिए, पुत्र कहिए, सेवक कहिए—जो कहिए वही हूँ।'

'कहने की क्या आवश्यकता है वह तो तेरे रंग-ढंग ही से दीख रहा है। तू यहाँ क्योंकर आया ?'

सोमेश्बर कुछ देर तक कुढ़ता हुआ खड़ा रहा और फिर उत्तर दिया, 'मैं गढ़ में मंजरी देवी के साथ था। किन्तु आपके राजा के समाचार देने के लिए ही मैं नदी में कूदा। किसी प्रकार यहाँ तक पहुंच गया हूँ।' तिरस्कार से सोमेश्वर ने अपने हाथों को समेटकर एक दूसरे पर रख लिया।

'अब क्या करेगा ?' विनोद करते हुए मुंजाल ने पूछा।

'अब ?—' कुछ देर तक विचार करने के पश्चात् सोमेश्वर ने कहा, 'अब देखना चाहता हूँ कि जो आपके राजा से नहीं हो सकता वह मुझ अकेले से हो सकता है या नहीं।'

'क्या ?'

भृगुकच्छ को टिका रखने का काम।'

'वह तू किस प्रकार करेगा ?'

'शंकर बुद्धि देंगे। मेरी गुरुपत्नी को आप मरने दे सकते हैं, परन्तु अनाथों का नाथ मेरा भोलानाथ कैसे मरने देगा ?'

'कितने वर्ष से सेना में है तू ?' हँसकर मुंजाल ने पूछा।

'आठ-नौ वर्ष से।' सोमेश्वर को थोड़ी-बहुत आशा हुई थी वह भी जाती रही। यह वृद्ध तो केवल जानकारी प्राप्त कर रहा था।

'और गढ़ न टिका सका तो ?'

'मन्त्रीवर !' क्रोध में सोमेश्वर ने कहा, 'जब तक मैं आपके राजा

को अपना मानता था तब की बात दूसरी थी। अब जो मुझे सूझेगा वही करूँगा।'

'तू तीन बार 'आपके राजा' बोला, अर्थात् मेरे राजा तेरे नहीं ?'

'हमारी रक्षा न करने वाला हमारा राजा हो भी कैसे सकता है ? मेरा अपमान किया और मेरे लाट को निराधार बनाए रखने का निश्चय किया, तब भी क्या वह मेरे राजा रहे।'

मुंजाल हँस पड़ा।

'मुझे तेरी बातों से बहुत रस आता है।'

'क्यों न आए ?' कटुता से सोमेश्वर ने कहा, 'पराए दुखों पर हँसना यहाँ के लोगों को बहुत अच्छी प्रकार आता मालूम होता है।'

'हमारी कुछ टेव ही ऐसी है,' हँसी में मुंजाल ने कहा। 'किन्तु सोमेश्वर ! अब तू अकेला जाकर गढ़ को टिकाएगा, उससे होगा क्या ?'

'गढ़ टिकेगा भी तो आपके कारण नहीं बल्कि भटराज के कारण। वह जीवित होंगे तो अवश्य आ पहुँचेंगे। फिर जो करना होगा वही करेंगे। और यदि वह परलोकवासी हो गए होंगे तो मुझे जो सूझेगा वही करूँगा।'

'तुझे क्या उचित लगता है ?'

'रेवापाल भटराज के बाल-मित्र हैं। भटराज की पत्नी और उनका सोमेश्वर लाट की सेना में जा मिलेंगे।'

'रेवापाल वह तो तेरे भटराज का शत्रु है।'

'किसने कहा ? अब तक दोनों विरोधी थे अवश्य, किन्तु अब तो लाट का सुख एक ही पक्ष में है।'

'कैसे जाना ?'

'मन्त्रीवर !' भावावेश में सोमेश्वर बोला, 'बहुत हो चुका। मैं अब बात नहीं करना चाहता। किन्तु आपके प्रश्न का उत्तर दूंगा। यदि मुंजाल मेहता में भटराज की व्यर्थ श्रद्धा न होती तो

लीलादेवी इस प्रकार निःसहाय होकर हमारे कष्टों को न सुनतीं। मेरे गुरू यदि लाट के अधिपति होते तो हम सब आपके पाटण को निश्चय ही ठिकाने लगा देते।'

'महेताजी ! मैं आ जाऊं ?, निकट ही के द्वार से एक स्वर आया 'मेरा नाम कैसे आया ?'

'ओ हो लीलादेवी ! आइये।' कहकर मुंजाल खड़ा हो गया। युद्ध में जाने की आधी पोशाक में पहने रानी आई। उसने सोमेश्वर की ओर देखा किंतु वह क्रोध के मारे कुछ न बोला।

'कौन सोमेश्वर ? मैंने सुना कि तू यहीं है इसलिए मैं आई हूँ।' मन्त्री की ओर देखते हुये रानी ने कहा।

मन्त्री या सोमेश्वर दोनों में से कोई कुछ न बोला।

## २०

'क्यों सोमेश्वर, पहचानता है कि नहीं ? अपनी राजकुमारी को भी भूल गया ?'

सोमेश्वर ने क्रोध में देखा, 'हमारी राजकुमारी अब रही ही कहां ? मैं तो पाटण की पटरानी देख रहा हूँ। मैं आपको नहीं पहचानता।'

'वाह !' लीलादेवी ने शाँति से कहा, 'बड़ों के साथ बोलना तूने भीअच्छा सीख लिया है।'

'बड़े हैं तो सोमनाथ आपका बड़प्पन बनाए रखें, परन्तु हमारे किस काम का वह बड़प्पन ? जिसने आपको महारानी बनाया उसके स्त्री-बच्चे मृत्यु के पंजे में फंसे हुए है किंतु आपको तो कोई चिंता नहीं है। जिन लोगों ने आप की महत्ता बढ़ाने के लिए विदेशियों की दासता स्वीकार की उनके लिये आपके हृदय में लाग-लगाव तक नहीं

आप हमारी नहीं तो हम आपके नहीं।' कुढ़ते हुए सोमेश्वर कह गया बोलते-बोलते उसकी आँखों में क्रोध के आँसू छलक आए।

'तेरी बात सच हैं।' शांत स्वर में रानी बोली, 'पाटण न कभी किसी का हुआ और न कभी किसी का होगा।' मुंजाल ने ऊपर देखा रानी में सदा की गम्भीरता थी।

'और जो कोई पाटण आता है वह भी पट्टणी हो जाता है।' कटुता से सोमेश्वर बोला।

'पद्मनाभ राजा की कुंअरी नहीं।' लीलादेवी ने शांति से कहा, 'मेहता जी ! आपको तो लाट की चिंता नही किंतु मेरे लिए और चारा ही नही हैं ? सोमेश्वर ! निश्चिन्त हो। मैं तेरे साथ आती हूं हम दोनों मिलकर लाट का उद्धार करेंगे।'

इतने वर्षों के शान्त जीवन में प्रथम बार मुंजाल चमका। इस दृढ़, कठोर, शान्त रानी के मुख पर गाम्भीर्य था। उसकी आँखों में निश्चयात्मक बुद्धि थी।

'क्या कह रहीं हैं आप ?' मुंजाल ने पूछा।

'सुना नहीं ?' तिरस्कार से रानी बोली।

'किंतु मैंने सोमेश्वर को सब कुछ पूछने के लिए ही तो बुलाया था। मैं अभी लाट की सहायता को सैनिक भेजने की व्यवस्था करता हूं।' मुंजाल ने मृदुलता से कहा।

'सैनिक भेजने से कुछ नहीं होगा ? लाट की कुंअरी ही लाट की सहायता को जायगी। आप को कुछ भी कष्ट करने की आवश्यकता नहीं मैंने दादा नायक को बुलाया हैं। मेरे पचास सैनिक अभी तैयार हो जायंगे।

'किन्तु बहन ! आप अभी जाएगीं तो जूनागढ़ का क्या होगा ?' मुंजाल महेता ने धीमे स्वर में कहा।

'आप सब तो यहाँ हैं ही।' तिरस्कार से रानी ने कहा।

'हम तो हैं ही, किन्तु आप का रहना भी तो नितांत आवश्यक है।'

'लाट मेरा है। सोरठ की बात आप पट्टणी जानें। सोमेश्वर! कितने दिनों में लाट पहुंच जायंगे ?'

'पाँच दिन में तो पहुंच ही जायँगे।'

'किन्तु इतने कम लोग जाकर करोगे क्या ?'

'महेता जी ! आपको हमारे लाट के विषय में कुछ नहीं मालूम। मैं अकेली ही पर्याप्त हूँ। यहाँ मेरा कोई मूल्य नहीं किन्तु वहाँ लोग मेरी पूजा करते हैं। रेवापाल मुझे देखते ही मेरी चरण-रज अपने सिर चढ़ायेगा।'

'किन्तु हम जूनागढ़ लेते ही काक को भेज देंगे।'

'मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकती।' दृढ़ता से रानी ने कहा, 'काक जीवित हो तो कहना कि लाट आजाये। वहाँ उसके गुरू ध्रुवसेन हैं, उसका बालमित्र रेवापाल है, उसकी रानी मैं हूँ और उसकी अर्धांगिनी मंजरी है। कहना कि वहीं आवे। 'सोमेश्वर, चल मेरे साथ।'

जीवन काल में मुंजाल ने कई विकट प्रसंग देखे थे किन्तु ऐसा विकट प्रसंग वर्षों से नहीं आया था। वर्षों पहले जब पाटण ने विद्रोह किया था तब उसकी चतुराई ने अप्रत्याशित चमत्कार दिखाया था। आज फिर ऐसा ही प्रसंग आया था। वह इस शांत और दूरदर्शी स्त्री के उद्देश्य, लाट की स्थिति, सोरठ की विजय और पाटण की महत्ता— इन सब पर विचार करने लगा। उसके तेजस्वी नयन चमकने लगे। उसके होंठ भिड़ गये।

'ठहरो,' सत्ता-भरे स्वर में वह बोला, 'लीलादेवी ! मैं भी आपके साथ चलता हूँ।'

'कहाँ ?' रानी ने तनिक कठोरता से पूछा।

'लाट की सहायता को।' दृढ़ता से महामात्य ने कहा।

'आप !' चकित होकर तनी ठिठक कर खड़ी हो गई।

'हाँ।'

'आपका वहाँ काम नहीं।' रानी ने अपमान-भरे ढंग से।

'सोमेश्दर ! बाहर जाकर खड़ा रह । वस्ता ! द्वार बन्द कर दे ।' मुंजाल ने आज्ञा दी ।

सोमेश्वर ने देखा कि यहाँ तो कुछ न समझ पड़ने वाला खेल चल रहा है किन्तु वह समझ गया कि इस खेल से लाट को अवश्य लाभ होगा । वह मौन होकर बाहर चला गया और वस्ता ने आकर द्वार बन्द कर लिया ।

कुछ क्षण तक मुंजाल और लीलादेवी एक दूसरे की ओर देखते रहे । मुंजाल की आँखों में दुर्धर्ष प्रताप था, उनमें से तेज की किरणें फूट रही थीं । लीलादेवी की आँखों में शांत और गहन स्थिरता थी । उनमें से नुकीले तीर की तीक्ष्णता टपक रही थी । दोनों की आँखों में भयंकर दृढ़ता थी ।

'मैं आता हूं ।' मंत्री ने पुनः दृढ़ता से कहा ।

'वहां आपका काम नहीं ।' वैसी ही दृढ़ता से रानी बोली ।

'बात क्या है, बहन ! ' मुंजाल ने एकाग्रता से देखते हुए कहा । लीलादेवी ने उत्तर नहीं दिया । मुंजाल ने नीचे झुककर धीमे-से कहा, 'राजा किसी और को पटरानी बनाएं तो लाट में जाकर राज्य करना, यही न ?'

लीलादेवी स्तब्ध हो गई । पल-भर के लिए उसकी स्थिरता चली गई। वह पीछे हटकर महामात्य की ओर घबराई हुई दृष्टि से देखा । यह मनुष्य था या जादूगर ? उसने होंठ पीसकर जोर से किन्तु शान्ति से उत्तर दिया, 'क्यों नहीं ?'

'सम्भवतः आप सोचती हैं कि जयदेव राणकदेवी को पटरानी बनाएँगे ?'

'मुझे विश्वास है ।'

'आप समझती हैं कि राणकदेवी यह पद स्वीकार कर लेगी ?'

'सम्भव है स्वीकार कर ले । और फिर जो राजा पल-पल में बदल जाता है उसका क्या विश्वास ?' रानी ने उदासीनता से उत्तर

दिया।

मुंजाल ने तनिक गर्व-भरे स्वर में कहा, 'अभी मैं जीवित हूँ।'

आप ?' रानी ने तिरस्कार से कहा, आप तो पाटण की सत्ता के तार खींचने वाले चरखे हैं। इससे अधिक आपका क्या मूल्य है ?'

'बहन ! मैं इतना नहीं गिर गया। घबराओ मत, मेरी आज्ञा का उल्लघन कर सके ऐसा यहाँ कोई नहीं है।'

'पाटण आपका पुत्र है और पुत्र के विनाश की बात कभी किसी पिता को कहते सुनी ? इस विषय में मैं किसी की नहीं मानूँगी। मैं यहाँ सबको पहचानती हूँ। पटरानी से दासी बनना मुझे स्वीकार नहीं है।'

'जब तक मैं हूँ आपका पद चट्टान के समान दृढ़ है। क्या मेरे वचन में विश्वास नहीं ?'

'गड़बड़ करने पर किसी दिन कथित विक्रमादित्य किसी दिन आपका भी गला काट डालेगा। आपके वचन में विश्वास करके मैं बैठी नहीं रहूँगी।'

'अधिक हठ मत करो।' मुंजाल ने समझाते हुए कहा, 'मैं कौन हूं यह आप अभी नहीं जानतीं।

'मैं भली भाँति जानती हूँ। आप सोलंकियों की सत्ता बढ़ाने के केवल एक अस्त्र हैं। जैसे मैं एक अस्त्र हूँ वैसे ही आप हैं। आपको लगता है मैं लाट चली जाऊँगी तो आपके हाथ से एक उपयोगी अस्त्र जाता रहेगा। परन्तु मुझे अस्त्र बनकर नहीं रहना, मैं रानी बनकर रहूँगी। फिर चाहे राज्य के नाम चार गाँव ही क्यों न हों।

'तो आप मेरी बात नहीं मानेंगी ?' मुंजाल ने तनिक कठोरता से कहा।

'नहीं।'

मैं तुम्हारे लाट को कुचल भी सकता हूँ।'

'लाट की माता-स्वरूप मैं कुचल जाना पसन्द करूँगी।'

'वाह।' हंसते हुए मुंजाल बोला, 'शाबाश बटी ! अच्छा आओ हम एक शर्त करें।'

'क्या ?'

'तुम्हारा पद न जाय फिर तो कुछ नहीं ?' मुंजाल ने कहा।

'इसका भरोसा क्या ?'

'मैं इसी समय सोमेश्वर के साथ दो हजार सैनिक लाट भेजता हूं। दो सौ लाट के सैनिक तुम्हारे लिए तैयार रखता हूं। यदि जयसिंहदेव राणकदेवी से ब्याह करें तो तुम अपनी इच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र होगी। चाहो तो लाट जाकर सोमेश्वर से मिल जाना।'

'लीला देवी ने गर्दन हिलाई।

'आप भी जूनागढ़ चलिए और मैं भी चलता हूं। फिर देखता हूँ जयसिंहदेव कैसे उससे ब्याह करते हैं ?' गर्व से मुंजाल बोला।

'और ब्याह कर लें तो……।'

'मुंजाल की भवें तन गईं। उसके शब्द में रौद्र रस की टंकार थी—'जिसे मैंने बनाया उसे तो देने में मुझे विलम्ब न लगेगा। वस्ता !' लीलादेवी मौन रही।

'जी।' कहता हुआ वस्ता आया।

'जा, वाहड़ महेता को बुला ला।' आमात्य ने आज्ञा दी, 'और सोमेश्वर को भेज।'

'जी।' कहकर वस्ता गया और सोमेश्वर आया।

'सोमेश्केर। कितने सैनिक लेकर तू रेवापाल का सामना कर सकेगा ?'

'ढाई हजार से काम चल जायेगा।' हर्ष से सोमेश्वर ने कहा।

'देख अभी इसी समय तेरे साथ लाट के एक हजार सैनिक भेजता हूँ। तेरे साथ वाहड़ मेहता भी जाएंगे। खंभात से पंद्रह सौ सैनिक और

ले लेना। जयसिंहदेव महाराज, लीलादेवी और मैं परसों तक आ पहुँचेंगे।'

सोमेश्वर ने हाथ जोड़े। उसका हृदय उमड़ पड़ा—'जो आज्ञा।'

'अब तो बस ?' रानी की ओर घूमकर मुंजाल ने कहा।

'अभी नहीं कहूँगी।' मुस्कराकर लीलादेवी ने कहा। इतने में वस्ता आया।

'वाहड़ मेहता आ गए हैं।'

'अन्दर बुला।' आमात्या ने कहा।

वाहड़ मेहता नीचे देखते हुए घबराते हुए और लजाते हुए आया।

'वाहड़, तू आज नितान्त निकम्मा प्रमाणित हुआ है।' वाहड़ ने उत्तर नहीं दिया—'देख, अब तुझे एक दूसरा काम सौंपता हूँ।' वाहड़ के मुख पर आशा की किरण चमकी—'सोमेश्वर एक हजार सैनिक लेकर लाट के विद्रोह का दमन करने जा रहा है। इसके साथ जा। खंभात से पन्द्रह सौ सैनिक और ले लेना। आज्ञा-पत्र दिए देता हूँ। तीन दिन के अन्दर महाराज, लीलादेवी और मैं लाट पर अधिकार करने आएंगे।'

'जो आज्ञा।' चकित होकर वाहड़ बोला। उसका हृदय नूतन आवेग से कूदने लगा।

'जाओ विजय करो, और सुनो हमारे आने से पहले बाजी हाथ स निकल जाय तो मुंह मत दिखाना।'

'महाराज !' सोमेश्वर ने कहा, 'तनिक भी चिन्ता मत कीजिए। मैं भी आपको दिखा दूंगा कि भटराज के शिष्य क्या कर सकते हैं।' वह और वाहड़ विदा हुए।

मुंजाल रानी की ओर घूमकर मुस्कराया, 'जान पड़ता है उस भटराज के अतिरिक्त लाट में कोई और देवता नहीं पूजा जाता।'

उत्तर में लीलादेवी हंस पड़ी।

'बहन ! अब तुम जाओ और तैयार हो जाओ। मुझे पहचान भी

लो तो भी बोलना मत और जयदेव तुम्हें दूसरे द्वार से जाने को कहें तो भी ना मत करना। तुम जितनी दूर रहोगी उतना ही मेरा काम सरल हो जायगा। मैं भी तैयार होता हूँ, जाओ।' कहकर वह जाने लगा।

लीलादेवी ने मुस्कराकर पूछा, 'आप शायद मीनलदेवी के पास जा रहे हैं ?'

'हाँ, क्यों ?'

'यह सब कहिएगा क्या ?' लीलादेवी ने पूछा।

'तुम क्या सोचती हो ?' मुस्कराकर मुंजाल ने पूछा।

'कुछ नहीं ! आप विलक्षण हैं।' रानी भी मुस्करा दी।

'आज की बात से ? अच्छा बहन ! अगर मैं तुम्हें जाने से रोक देता और तुम्हें तुम्हारा काम न करने देता तो तुम क्या करतीं ?' मुंजाल के मुख पर वात्सल्य-भाव था।

'कैसे रोकते ?'

'बन्दी बना लेता।'

लीलादेवी ने मुस्कराकर वस्त्रों में छिपाई हुई कटारी दिखाई, 'महेताजी यमराज को छोड़ मुझे कौन रोक सकता है ?' उसने शांत रहकर कहा, 'मुझे बन्दी बनाने जाते तो पाटण महाग्रामात्य-हीन हो जाता।'

मुंजाल प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखने लगा, 'तुम भी विलक्षण हो।'

तब रानी हंसकर विदा हुई।

## २१

शान्ति किन्तु शीघ्रता से राज्यगढ़ से एक के बाद दूसरी आज्ञा दी जा रही थी और तुरन्त उसका पालन भी किया जा रहा था। वंथली में लोग संदेशे लेकर आ-जा रहे थे; वहाँ से विभिन्न शिविरों के लिए अश्वारोही छूटे; और सैनिकगण कूच के हेतु विभिन्न स्थानों की ओर चल पड़े।

मानो परछाइयाँ इधर-उधर भाग रही थीं—कुछ पैदल और कुछ घोड़ों पर। यदि दो परछाइयाँ एक दूसरे से मिलतीं भी तो थोड़ी देर एक दूसरे के सामने मौन खड़ी हो जाती और फिर अलग हो जाती। कई स्थानों पर परछाइयों का समूह मौन हो कर चला जा रहा था; घोड़ों की टाप भी मानों बिना शब्द किए धरती पर पड़ रही थीं। चारों ओर निःशब्दता थी किन्तु भय ऐसा फैला हुआ था मानों चारों ओर भूतों का वास हो। थोड़ी ही देर में सब कुछ शान्त हो गया। परछाइयों का आना-जाना बन्द हो गया ऐसा भास होने लगा मानों सम्पूर्ण वंथली अचेत पड़ी हुई हो।

चौक में आठ-दस घोड़ों की परछाइयाँ अधीर होती दिखाई पड़ रही थीं। सात परछाइयां गढ़ से बाहर निकलीं। उनमें से एक सबसे आगे चल रही थी।

निकट ही के द्वार में से एक शस्त्रसुसज्जित, ठिगना योद्धा निकला और उस आगे चलने वाली परछांई से तिरस्कारपूर्वक कहा—'राजाजी! मुझे तो भूल ही गये।'

वह परछांई अधीरता से खड़ी हो गई, तू भी आएगी?' राजा के स्वर में असन्तोष स्पष्ट झलक रहा था।

'क्यों? मैं तो आपके साथ आने वाली थी न!'

राजा के होठ टेढ़े पड़ गए, 'तू क्यों व्यर्थ संकट में पड़ती है?'

'हम दोनों में संकट तो मैंने ही अधिक उठाए होंगे।' तिरस्कार से रानी ने कहा।

उत्तर में राजा ने केवल इतना-सा कहा, 'अच्छा चल।'

रानी तुरंत साथ हो ली। पट्टणी योद्धाओं को राजा की बात ही ठीक लगी—स्त्री इस संकट को कभी झेल सकती है? देशलदेव ने वीशलदेव के कन्धे पर हाथ रखकर दबाया। वह उसका कुछ और ही अर्थ समझे। सब मौन होकर आगे बढ़े और जाकर घोड़ों पर सवार हो गए। थोड़ी ही देर में वह नगर के बाहर सेना के पड़ाव पर आए और वहां से चार-पांच सौ सैनिक लेकर प्रबल वेग से जूनागढ़ की ओर बढ़े।

चन्द्रमा गिरनार की चोटियों पर झूल रहा था। अधिकाँश सेना विभिन्न दिशाओं में पैदल चली जा रही थी जिससे चाँदनी में उसकी गति-विधि जानी न जा सके। फिर, वंथली और जूनागढ़ के बीच में पड़ने वाले घने वनों के कारण गति-विधि जानना कठिन भी था। मेंदरड़े से एक टुकड़ी डंका बजाते हुए निकल पड़ी थी। जिससे सौरठियों का इस भ्रम में पड़ जाना सम्भव था कि धावा एक ही ओर से किया जा रहा हैं।

जैसे पर्वत के चारों ओर धीरे-धीरे कुहासा छाने लगता है वैसे ही पट्टणी सेना आगे बढ़ने लगी। राजा की टुकड़ी थोड़ी ही देर में जंगल पार कर चौकी के सामने आ पहुँची।

'देशलदेव जी यही है न तुम्हारी चौकी?' जयसिंह देव ने पूछा।

'हां महाराज!' कहकर देशलदेव आगे बढ़ा और अपने भाई को लेकर सबसे आगे खड़े चौकीदार के निकट गया। देशलदेव ने सबको मिला रखा था, पट्टणी सेना ने तुरंत ही चौकी पर अधिकार कर लिया यहां सब लोग घोड़ों से उतर पड़े। और पैदल ही आगे बढ़ने की तैयारियां करने लगे।

यहां से पांच सौ आदमी त्रिभुवनपाल के साथ मेंदरड़े से आने वाली टुकड़ी से मिलकर जूनागढ़के मुख-द्वार की ओर जाने वाले थे और शेष आदमी महाराज, परशुराम और उदा मेहता के साथ गुप्त रूप से गढ़ प्रवेश करने वाले थे। शीघ्रता से लोग बंट गये। राजा के

मुख से क्रोध टपक रहा था। आंखों में मानो रक्त उतर आया था। जैसे ही सब ने चलने की तैयारी की राजा ने त्रिभुवनपाल से कहा, 'त्रिभुवन भाई ! लीलादेवी को भी अपने साथ ले जा।'

यह शब्द सुनकर रानी कुछ बोलने ही वाली थी कि राजा बोल उठा, 'रानी ! तुम जाओ।' राजा के स्वर में क्रोध था। रानी मन-ही-मन हंस पड़ी। उसने और मुंजाल ने ऐसी स्थिति आने पर क्या करना होगा इस पर पहले ही से विचार कर रखा था।

'आप अपना ध्यान रखिएगा।' रानी ने विनोद में कटाक्ष किया और त्रिभुवनपाल के निकट चली गई। जाते-जाते उसने पैदल सैनिकों की ओर देखा। इतने अधिक लोगों में वेष बदले आए महाअमात्य को पहचान लेना असम्भव था। परन्तु उसको इस पुरुष के वचनों में श्रद्धा हो गई थी। महाराज और उनके साथी चुपचाप प्रकाश से बचते बचते आगे बढ़े। आगे-आगे देशलदेव और वीशलदेव चल रहे थे और पीछे महाराज, परशुराम, उदा महेता और जयदेव परमार। पैदल सैनिक एक-दो साथ होकर छिप-छिपा-कर चल रहे थे। कोई एक अक्षर भी नही बोल रहा था। सबसे दूर विशाल काले श्वान के समान कोई जानवर शीघ्र गति से साथ-साथ चल रहा हो ऐसा लग रहा था किन्तु उधर देखने का किसी को साहस नहीं होता था। उधर जिसकी भी दृष्टि पड़ती वह कांप उठता था। सब समझ गए कि बाबरा भूत साथ आ रहा था यह भूत जिसकी सहायता करे वह योद्धा कभी पराजित हो ही नहीं सकता है! महाराज की दुर्जयता में लोगों की श्रद्धा बढ़ गई।

सभी हृदय आशंका से धड़क रहे थे। सभी आज रात्रि के परिणाम पर विचार कर रहे थे। कल पाटण का भविष्य क्या होगा, सभी महारथियों के हृदय में बस यही विचार था। प्रत्येक व्यक्ति का हृदय संशय में था कि वह कल सूर्योदय देखेगा या नहीं। जयसिंहदेव के मुख पर क्रोध था। उनकी आँखें विकराल हो गई थीं। उनकी चाल में

सबसे अधिक दृढ़ता थी। उनके हृदय में क्षोभ नहीं था अपितु विनाशकारी उत्साह था। वे जूनागढ़ को जीतने और राणक से भेंट करने के लिए व्यग्र थे। उनको विश्वास था कि सूर्योदय के साथ ही वह राणक से ब्याह कर लेंगे।

बड़ी काली चींटियों की भांति—सभी निःशब्द, धीमे-धीमे निरंतर आगे-निरन्तर ऊपर की ओर बढ़ते गये। किसी की सांस तक नहीं सुनाई पड़ रही थी। चारों ओर भयंकर शांति थी। केवल ठोकर से लुढ़का पत्थर या घबराया हुआ पक्षी एकाएक शब्द करके प्रलय के कड़ाके के समान सबके हृदय को भयभीत कर देता था। गढ़ निकट आ गया था। गढ़ पर कोई घूमता हुआ दिखाई पड़ा। हर एक के हृदय में क्षुब्धता छा गई।

दूसरी ओर आगे बढ़ती हुई पट्टणी सेना का स्वप्न में सुनाई पड़ने वाले स्वर के समान सुनाई पड़ने वाला डंके का विजयनाद बंद हो गया। कुछ चीत्कारें, कुछ गड़बड़ सुनाई पड़ी और उन्होंने ऐसा भय फैला दिया मानो वह परलोक से आ रही हों। मेंदरड़े से निकली हुई टुकड़ी ने बड़ी चौकी के रक्षकों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया लगता था। दूर होती हुई मार-काट का शब्द वातावरण को और भयानक बना रहा था।

आगे चलने वाले व्यक्ति एक घने वृक्ष के नीचे छिपकर खड़े हो गए।

'देशलदेव जी! जयसिंहदे ने कहा। उनका गला बैठ गया था। 'तुम जाकर गढ़रक्षक से भेंट कर आओ। और मेहता! उदा मेहता को सम्बन्धित करके उन्होंने कहा, 'तुम त्रिभुवनपाल से मिलकर बड़ी चौकी पर क्या हो रहा है इसका समाचार लेकर शीघ्र आओ।'

उदा मेहता समझा। महाराज की इच्छा थी कि त्रिभुवनपाल और लीलादेवी को वह सीधा बड़ी चौकी पर ही ले जाय। वह नमस्कार करके कुछ सैनिकों को लेकर, त्रिभुवनपाल जिस ओर गया था उसी

ओर चला ।

देशलदेव ने सावधानी से चारों ओर देखा । वह जिसके नीचे खड़े थे उस वृक्ष और गढ़ की खिड़की के मध्य में अन्य कोई वृक्ष नहीं था, मात्र छोटी छोटी झाड़ियां थीं । उनकी आड़ लेकर, नीचे झुककर वह आगे बढ़ा । सब उसकी गतिविधि देख रहे थे । झाड़ियों की आड़ से निकल कर वह एकदम गढ़ के द्वार में घुस गया । कुछ क्षण बाद हाथ लम्बा करके उसने खिड़की की सांकर पकड़ कर दो-दो बार खड़खड़ाई ।

'कौन है ?' एक धीमा सा स्वर आया । देशलदेव हर्ष से उछल पड़ा । आवाज उसके शिष्य हमीर की थी ।

'कौन, हमीर ?' धीरे से देशलदेव ने पूछा, 'यह तो मैं हूँ । गढ़-रक्षक है ?'

'हाँ, हूँ । क्यों ?' क्रोधित दादु की आवाज सुनाई पड़ी ।

'गढ़रक्षक ! द्वार खोलो तो !'

'क्या काम है ? अभी द्वार नहीं खुल सकते ।' हठ करते हुए दादु बोला । कल की घटनाओं से उसका मन ससुर के प्रति कड़वा हो गया था ।

'गढ़रक्षक, तनिक खोलो, मुझे बात करनी है । मेरे पुत्र के समान होकर तुम ऐसी बातें कर रहे हो ? कल मुझे एकदम निकाल दिया इसलिए कुछ कह-सुन भी न सका । मेरे जामाता हो तो तुम और पुत्र हो तो तुम ! कल मेरा जाने क्या हो !'

दादु ने उत्तर नहीं दिया ।

'मैं वृद्ध हो गया हूँ, कौन है मेरा ? तुम दो शब्द तो सुन लो । अपनी बेटी को दो बातें कहलानी हैं और अपनी संपत्ति का निपटारा करना है । मैं फिर लौटकर नहीं आऊँगा । भाई दुर्गरक्षक ! अंबाभवानी के लिए दो शब्द तो सुन लो ।' देशलदेव ने दीन स्वर में कहा । उसके

गले से ऐसा स्वर आने लगा मानो उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई हों।

'जो कहना हो वहीं से कह दो।'

'यहाँ से कैसे कह दूं ? कोई चौकीदार सुनले तो ! तुम्हारे समान हमीर थोड़े ही है ? तनिक खोलो तो ! नहीं तो, जीवन में मैंने जो कुछ इकट्ठा किया है वह किसी के हाथ नहीं लगेगा।'

दादु को दया आ गई। इस बेचारे वृद्ध को कल देखते ही देखते गढ़ से निकाल दिया। कुछ बातें कर ले तो इसमें चला क्या जायगा ? उसने एक छिद्र में से बाहर देखा। बाहर और कोई दिखाई नहीं पड़ा इसलिए उसने अर्गला हटाई और द्वार को थोड़ा सा खोलकर गर्दन बाहर निकाली।

'गढ़रक्षक !' देशलदेव ने धीमे से कहा, 'खिड़की खोल।'

'बोलो, क्या है ?' अधीर होकर गढ़रक्षक ने पूछा। उसका यह ससुर इस समय प्राणघातक शत्रु जैसा लग रहा था। देशलदेव ने देखा कि गढ़रक्षक द्वार को थोड़ा सा खोलकर अपने हाथ में पकड़कर खड़ा हुआ था। पीछे हमीर खड़ा था। उसकी और देशल की आँखें मिलीं।

पाटण की महत्ता या सोरठ के स्वातंत्र्य की देशलदेव को चिंता नहीं थी। वह इतना समझ गया कि इसी क्षण पर उसका संपूर्ण जीवन निर्भय करता है। उसका हृदय और अधिक धड़कने लगा। उसके हाथ पाँव कांप रहे थे। जितनी अधिक देर होती जा रही थी उतने ही जयसिंहदेव अधीर होते जा रहे थे और उसका जीवन संकट में पड़ता जा रहा था।

'गढ़रक्षक ! मेरी इकलौती लड़की का तू पति है—मेरा उत्तराधिकारी है।'

'तो ?' गढ़रक्षक बोला।

'मैंने एक युक्ति सोची है।'

'क्या ?'

'जूनागढ़ की गद्दी मुझे और मेरे पश्चात तुझे मिलेगी।'

'क्या ?' चमककर दादु ने पूछा, 'देशलदेव जी! आपका सिर तो नहीं फिर गया है ?'

'नहीं। उस वृक्ष के नीचे पाटण का स्वामी प्रतीक्षा कर रहा है। खिड़की खोल।'

'क्या ? पाटण के स्वामी को जूनागढ़ में...?' आँखें फाड़, आश्चर्य चकित होकर गढ़रक्षक बोला। उसका स्वर तनिक मोटा हो गया। देशलदेव को धैर्य नहीं रहा। दादु खिड़की के द्वार के बीच में गर्दन रख कर बात कर रहा था। उसने हमीर की ओर देखा। दादु के कुछ भी बोलने से पहले उसने एक हाथ दादु के मुख और दूसरा उसकी गर्दन पर रखा और उसका गला दबाया।

'हमीर! खिड़की दबा।' देशलदेव दबे स्वर में बोला।

हमीर समझ गया। तुरन्त वह खिड़की दबाने लगा। दादु की गर्दन द्वार में फंस गई थी। देशलदेव ऊपर से उसका सिर दबा रहा था और नीचे से उसका मुंह। उसने छूटने के लिए हाथ पाँव मारे, चिल्लाने का भी प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। उसका सिर चक्कर खाने लगा। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। देशलदेव ने अंतिम बार दादु की गर्दन दबाई। दादु हाथ पाँव मार रहा था, फिर वह शनैः शनैः अचेत एवं निचेष्ट होने लगा। देशलदेव ने अपने हाथ हटा लिए।

'हमीर! यह जीवित है या नहीं कुछ मालूम नहीं, इसका मुंह बांधकर पटक दे और द्वार खुले रख। मैं सेना लेकर आता हूँ, कल सोरठ अपना होगा।'

'हैं कौन ?' दादु का मुख बाँधते-बांधते हमीर बोला।

'स्वयं जयसिंहदेव सोलंकी......।'

'सब कुछ निश्चित हो गया न ?'

'हाँ।'

'तो शीघ्रता करो।'

देशलदेव, झुककर, बाघ की गति से वापस वृक्ष की ओर गया।

'महाराज ! द्वार खुले हैं, पधारिए !' देशलदेव बोला।

'चलो।' जयसिंहदेव ने कहा।

'नहीं,' परशुराम बोला, 'मैं पहले जाता हूँ, मेरे पीछे दूसरे आदमी, और सबके पीछे आप। मैं किसी भी प्रकार की जोखिम में आपको नहीं पड़ने दूंगा।'

'अच्छी बात है। तुम जाओ। मैं पीछे-पीछे आता हूँ।'

'आपके साथ परमार रहेगा।' परशुराम ने कहा।

धीरे धीरे दो दो चार चार करके पट्टणी सैनिक खिड़की के द्वारा गढ़ में घुसते रहे। जयसिंहदेव अधीर होकर देखते रहे।

अंत में वह और परमार ही बच रहे।

'महाराज ! पधारिए। अंत में सोरठ गिरा ही।' परमार ने कहा।

महाराज ने उत्तर नहीं दिया। वे मन ही मन बड़बड़ाए, 'और अंत में राणक भी प्राप्त हुई।'

दोनों ने गढ़ में प्रवेश किया।

## २२

खेंगार के हृदय में उत्साह की सीमा नहीं थी।

रा' सरल और विचारशील था, उदार और हंसमुख था, दृढ़ और दूरदर्शी था। उसमें राजपूतों का स्वाभाविक शौर्य था और चूड़ासमा का सुविख्यात साहस था और अनेकों वीरों की पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती शूरता उसके स्वभाव का, मुख्य लक्षण थी। अडिग टेक, उदार स्वभाव उच्च अभिलाषा, राणक के प्रति असीम प्रेम और उसके सहवास के परिणाम से प्रकट हुई उच्च प्रकार की भावना, इन सब गुणों ने मिलकर

कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि रा' खेंगार मनुष्य न रहकर मूर्तिमान भावना के समान अपूर्व जान पड़ने लगा।

पुरुषों में वह श्रेष्ठ और निराला लगता था। सामान्य पुरुष इसको देखकर प्रसन्न होते और प्रेरित होते थे। वह सबके साथ स्नेह, उदारता और निष्कपटता से व्यवहार करता था। सभी उसके लिए प्राण अर्पण कर देने में अपना जीवन सफल मानते थे।

परन्तु इस विशाल व्यक्तित्व वाले रा' को भी आज भूत सा चढ़ गया था। आज उसकी आँखों से हास्य फूटा पड़ता था और मुख से स्नेह झरा पड़ता था। देवता के समान तेजस्वी और पार्थ के समान स्वरूपवान वह जहाँ जाता वहाँ उत्साह-भरे शब्द सुनाई पड़ते। उसके काले लम्बे केश हवा में लहरा रहे थे। जिधर उसकी दृष्टि-किरण पड़ जाती उधर ही उत्साह फैल जाता। जूनागढ़ का वह सर्वमान्य देवता था। आज वह प्रेरणा फूंकते हुए चैतन्य के समान लग रहा था। उसकी प्रेरणा से न एक भी पुरुष में कायरता रही, और न एक भी स्त्री में स्वार्थ बचा। उसने प्रचण्ड रणोत्सव मनाने की घोषणा की। गढ़ अभेद्य था, उसमें अधिक मनुष्यों की आवश्यकता न थी इसलिए उसने अधिकाँश सैनिक चौकियों पर भेज दिए। स्थान-स्थान पर पुरानी चौकियों से आगे बढ़कर नई चौकियाँ स्थापित करने की योजना बनाई। स्वयं कुछ मनुष्यों को साथ लेकर एभल नायक की चौकी हस्तगत करने की तैयारी करने लगा। इस उत्साह में वह गत रात्रि की चिन्ता और चेतावनी भूल गया। संध्या को ऊँचे जूनागढ़ के गुम्बद पर गर्व से घूमते हुए उसका हृदय गद्गद्। वह चारों ओर उल्लास से इस प्रकार देखने लगा मानो स्वयं गिरनार की जीवित प्रतिभा हो। सदियों से उसके पूर्वजों ने इसी गढ़ में रहकर विजय-घोषणा की थी। आज स्वयं भी वैसी ही घोषणा करके वह संसार को अपनी वीरता देखने का अवसर दे रहा था। उसने रह-रह कर वंथली की ओर देखा। वर्षों से वहां की चतुराई, हरामखोरी, क्रूरता और नीचता उसकी दृढ़ता

की परीक्षा ले रही थी। राम ने रावण पर जिस पुण्य प्रकोप से अस्त्र छोड़े थे वही प्रकोप उसके हृदय में विराजमान था। सूर्यास्त के समय सोरठ की उजाड़ भूमि की ओर देखा। दूर सागर में तरंगों की चमकती हुई माला देखी। सोमनाथ पाटण का गगनचुम्बी देवालय उसकी आँखों के सामने तैर गया। उसके इस देवता को मूलराज सोलंकी उसके पूर्वजों से छीन कर ले गया था। 'महादेव! हे शम्भू! क्या लौटकर मेरे पास नहीं आओगे?' उसने दीनता-भरी वाणी में प्रार्थना की।

विचार प्रवाह में बहते-बहते उसे याद व श्रेष्ठ श्रीकृष्ण का स्मरण हुआ। बचपन से वह अपने आपको भी यादवश्रेष्ठ मानता था। बचपन ही में वह पुर्षोत्तम की कीर्ति को मन्द करने के स्वप्न देखा करता था, स्वयं उसके कुल का होकर आर्यावर्त के अधिष्ठाता बनने का निश्चय वह कई बार प्रगट कर चुका था, और इस गढ़ में बैठे हुए इक्के-दुक्के युद्ध करते हुए, वर्षों से निरन्तर विपत्तियाँ झेलते हुए भी वासुदेव मधुसूदन का आदर्श उसके वीर हृदय से दूर नहीं हुआ था। सोमनाथ पाटण याद आते ही उसे देह समर्पण पुनीत स्थल याद आया। उस ओर देखने पर उसे मानो वासुदेव की मूर्ति दिखाई पड़ी।

पीपल की शीतल छाया में यादवनाथ घायल पड़े हुए थे। उनके मुख पर दुःख की रेखा नहीं थीं; किन्तु दुर्योधन भी जिसे डर गया था वह भव्यता छाई हुई थी। उनके होंठों पर मन्द किन्तु मधुर मुस्कराहट थी, मानो वर्षों पहले अनुरक्त हुई गोपियों का स्मरण हो आया हो। उनके विशाल नेत्रों में वही प्रेम, शौर्य और करुणा झलक रहे थे जिन्हें बहेलिए ने देखा था। उसने पुरुर्षोत्तम को अपने पाँव में लगे तीर की ओर देखते हुए देखा—धीमे-से नेत्रों को घुमाकर अपनी ओर ममता से देखते हुए देखा। वह मुस्कराए—पुत्र की ओर देखकर जैसे पिता मुस्करा दे! रा' ने उसकी ओर भक्ति-भाव से हाथ बढ़ा दिए।

दृश्य अदृष्ट हो गया—खेंगार ने घबरा कर चारों ओर देखा।

देवों के देव गोवर्धनधारी के सौम्य स्वरूप का उसने साक्षात्कार किया यह सोचकर उसके हृदय में हर्ष की सीमा न रही। 'यादवश्रेष्ठ!' वह बड़बड़ाया, 'मैं भी यादव हूं—तुम्हारी अमर कीर्ति का अधिकारी हूँ।' उससे अधिक न बोला गया। उसके हृदय में साहस उछला पड़ता था।

इतने में कई सामन्त, नायक और 'भाट-चरण' आ गए और जूनागढ़ के रा'ओं की कीर्तिगान प्रारम्भ हो गया। उनके साथ रा' भी 'हंसा, विनोद किया। सामन्तों ने उसमें साहस भरा और उसने सामन्तों में। अन्त में सब भोजन करने के लिए उठे और भोजन करके युद्ध के लिए तैयार होने के लिए चले गए।

भोजन करके रा' रनिवास में गया। राणक उसके वस्त्र और शस्त्र तैयार कर रहा थी। कल से राणक देवड़ी ने बोलना भी कम कर दिया था। सारा दिन तैयारी और पूजा करने में व्यतीत कर दिया था।

'काक कहाँ है?' रा' ने पूछा।

'वजेसंग और कुंअरों के साथ गढ़ देखने गया है। इसे क्यों व्यर्थ में रोक रखा है?'

'मैं आऊँ तब तक तुम्हारी रक्षा तो करेगा!' रा' ने हँस कर कहा।

'मुझे क्या हो सकता है?'

रा' देवड़ी की ओर देखने लगा। देवड़ी की निर्मल कान्ति इस समय अधिक निर्मल और अपार्थिव दिखाई पड़ रही थी। उसका ठिगना शरीर हलके फूल-सा लग रहा था। कल देवड़ी द्वारा दिखाया चमत्कार रा' को याद आया। इस नन्हीं-सी स्त्री में कैसे इतना अधिक देवत्व था? उसका हृदय उमड़ आया। उसने देवड़ी के हाथ में से शस्त्र ले लिया और उसके हाथ अपने हाथ में लेकर उसकी ओर देखने लगा।

'क्या देख रहे हो ?'

'तुझे । तुझे देखने से अभी तक मेरा जी नहीं भरा है ।'

'मेरा रा' इस समय मेरे सामने नहीं अपनी कीर्ति की ओर देखो ।'

'घबरा मत, मैं कायर नहीं बनूंगा । तुझे देख देख कर ही तो मैं अपना साहस बनाए रखता हूँ ।' खेंगार हँस दिया । उसके हास्य का उल्लास चारों ओर के वातावरण में फैल गया । उसने चारों ओर देखा और किसी को न देखकर चुम्बन किया । 'देवड़ी ! मुझे साहस दिलाने के लिए तू कुछ कहेगी नहीं ?'

राणक के मुख पर मन्द और म्लान मुस्कराहट छा गई । 'मेरे रा' ! आपके शौर्य के बल पर तो सोरठ टिका है भला आपको कौन साहस दिलाएगा ?'

'इसको साहस दिलाना नहीं कहते क्या ?' छोटे बच्चे के समान हंसते हुए रा' ने कहा और राणक के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसे अपनी ओर खींचा । देवड़ी ने अपना सिर रा' के कन्धे पर रख दिया और एक दीर्घ निःश्वास लिया । थोड़ी देर तक कोई न बोला ।

'देवड़ी !' रा' के स्वर में आँसू भर आए, मुझे कुछ हो जाय तो बच्चों को सम्भालना ।'

'मेरा रा' !' राणक ने साहस से ऊपर देखा, यह काम मेरा नहीं । आपके अन्य दो तीन रानियाँ हैं, यह काम उन्हीं को सौंप दीजिए ।

'किन्तु बच्चे तो तेरे—'

'पहले मेरे रा'—फिर बच्चे । किन्तु इस समय आप ऐसे विचार क्यों कर रहे हैं ?' मैं विजय माला लेकर बैठी हूँ । आप शीघ्र वापस लौटेंगे ।' राणक बोली ।

रा' को पिछली रात की भविष्य वाणी याद आई और उसने एक गहरी साँस ली ।

'देवड़ी ! मुझे आज अपने पूर्वज श्रीकृष्ण के दर्शन हुए ।' देवड़ी ने ऊपर देखा, 'सच ! तब तो हमारे धन्यभाग्य !'

'मैंने उन्हें देहोत्सर्ग से पहले पड़े हुए देखा ; वह नीची दृष्टि किये घायल पाँव की ओर देख रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने ऊपर देखा और आशीर्वाद देते हो ऐसे तनिक मुस्कराए ।' बालक जैसी श्रद्धा से रा' ने कहा।

'मेरा रा' ! जब द्वारकाधीश का हाथ आप पर है तो वह पामार आपका क्या कर सकता है ?' राणक ने उत्साह से नीचे झुके रा' के गाल के साथ अपना गाल दबा दिया। एकाएक दोनों ने चमककर ऊपर देखा—मानो प्रश्न का उत्तर हो वैसे दूर से डंके की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी।

'मेदरड़े से सेना चढ़ी लगती है ।' आँखें फाड़कर रा' ने कहा, 'तू तैयारी कर। मैं ऊपर जाकर देख आऊँ ।' रा' एकदम ऊपर गया। इतने में वजेसंग, काक और रा' के दो पुत्र आ पहुँचे।

'मेरे देव ! वजेसंग सोलंकी भी आज ही रण चढ़ा लगता हैं ।' वजेसंग ने कहा।

'इसमें रोना क्या काका ? काक ! गढ़ देखा ?'

'हां, महाराज ! गढ़ पराजित हो ऐसा तो नहीं है ।'

'काक ! इस गढ़ में मेरी आज्ञा बिना एक पक्षी तक प्रवेश नहीं कर सकता ।'

'गढ़रक्षक तो सभी विश्वासपात्र हैं न ?'

'सब चार-चार पीढ़ी के हैं। रा' ने विश्वास दिलाया।

'अब तैयार होइए मेरे स्वामी !' वजेसंग ने कहा।

'काक ! तनिक ध्यान से देखने दो। सम्भव है मेंदरड़े के सामने बड़ी चौकी की सहायता को भी जाना पड़े ।' खेंगार ने चारों ओर देखते हुए कहा।

'मेंदरड़े की बड़ी चौकी तो सुदृढ़ है। वहाँ सोलंकी की दाल न

गलेगी। यदि कुछ समय तक वह सफल न हो तो एभल नायक की चौकी पर छापा मार कर उस पर अधिकार करके बड़ी चौकी की सहायता के लिए चला जाऊँ। बड़ी चौकी पर तो कई बार हमले हुए हैं और सदा निष्फल हुए हैं। किन्तु यदि सोलंकी वहाँ सफल हो तो मैं चौकी पर सहायता भेजूँ।'

'ठीक है' काक बोला, 'आपका गढ़ इतना दृढ़ है कि प्रतिदिन नई चौकी पर भी पड़े तो कोई चिन्ता नहीं।'

'क्यों बेटा!' बड़े पुत्र माना से रा' ने पूछा 'मेरे चले जाने पर गढ़ की रक्षा करेगा न?'

माना ने पिता को गर्व से देखा। उसकी विशाल आँखें पिता पर टिक गईं, 'पिता जी! जूनागढ़ का रा' कभी डिगा है?'

'धन्य हो!' कहकर रा' उससे लिपट गया और फिर छोटे पुत्र को गोद में लिया। 'जाओ, अब तुम जाकर सो जाओ—निश्चिंत होकर—हम गढ़ को देख आएँ।'

'पिता जी! मैं भी चलूँ?'

'अरे नहीं तेरे चलने के लिए अभी पर्याप्त समय है।'

बच्चों को विदा कर रा' काक, और वजेसंग गढ़ पर घूमने लगे। मेंदरड़ा को छोड़कर और सब दिशाओं में शांति थी। कभी-कभी पत्तों या ढेलों के गिरने का शब्द सुनाई पड़ता था एभल नायक की चौकी को छोड़कर और सभी चौकियों के दीपक निरन्तर प्रदीप्त थे इसलिए किसी भी दिशा में भय का कोई कारण न दिखाई पड़ा। एभल नायक की चौकी की ओर मध्य में सोरठ का थाना था वहां भी दीपक जल रहा था।

इसी प्रकार फिरते-फिरते आधी रात हो गई। मेंदरड़ा की पट्टणी सेना चौकी तक आ पहुँची थी और उसमें और सोरठी सेना में युद्ध

आरम्भ हो चुका था। युद्ध गम्भीर था, किन्तु पट्टणियों को सफलता मिल रही थी, यह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अब चिन्ता नहीं।' रा' ने कहा, 'प्रातःकाल तक इस चौकी का कुछ नहीं होगा, इतने में तो मैं एभल नायक की चौकी लेकर लौट आऊँगा। चलो, महल में चलो। सब तैयार होकर खड़े होंगे।'

शीघ्र ही वह महल में आए और रा' ने शस्त्र ग्रहण किए। गिरनार की ओर की खिड़की से रा' बाहर निकलने वाला था। काक और वजेसंग वहां तक विदा करने ने लिए तैयार हुए।

'नहीं। काक ! तूने बहुत किया और बहुत करेगा अब तू बैठ।'

'किन्तु मैं तो खिड़की तक ही आ रहा हूँ।'

'नहीं तू वजेसंग के साथ घूमता है तो बंदी सा लगता है, और मेरे साथ आएगा तो लोग सोचेंगे कि मित्र है, और कोई पट्टणी तुझे देख ले तो मेरे बाद वह सोलंकी तेरे प्राण ले लेगा। मालूम है ?'

'मैं एक बार फिर गढ़ देख आऊं ?'

'तू अभी सो जा। अभी तुझे कई रातों तक जागना होगा।'

'जो आज्ञा।' कहकर काक ने रा' से स्नेह-भरा आलिंगन किया।

रा' रनिवास में गया। देवड़ी ने स्थिर-प्रेम के मूक किन्तु अनन्त सन्देश को प्रकट करते हुए नयनों से रा' को विदा दी। दूसरी रानियों ने भी सजल नेत्रों से शीघ्र लौटने को कहा, रा' ने सोए हुए पुत्रों को चूमा, और छोटी बहन के हाथ से कुंकुम का विजयचिन्ह करवाकर वह बाहर निकला।

देवड़ी झरोखे से रा' को जाते देख ही थी। एकाग्र और खिन्नता-भरे नयनों से वह उस तेजस्वी प्रेम मूर्ति को देखने लगी। उस रूपवान मुख की हृदय में स्थित रेखाओं को फिर हरा कर दिया। उन लम्बे केशों की छटापूर्ण लटों पर वह एक बार फिर मुग्ध हो गई। दूर जाते उस स्वजन के सुगठित शरीर की गति से मोहक बनी भंगिमा को हृदय में उतार लिया। पथ मुड़ने पर, रा' के अदृश्य होने पर,

उसने परिचित स्वर की प्रतिध्वनि को हृदय में प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण जीवन के स्नेह-भरे संस्कारों को जगाया। स्वर बन्द हो गया। अन्त में प्रतिध्वनि भी बन्द हो गई। आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। उसने एक हृदय को चीर देने वाली सिसकी भरी और झरोखे से हट गई।

लौटी तो उसने अपने हाथ की चूड़ियाँ निकाल दीं। रनिवास की स्त्रियाँ यह देखकर स्तब्ध हो गईं।

## २३

धड़कते हुए हृदय से जयसिंहदेव ने जूनागढ़ में पाँव रखा। वर्षों से जूनागढ़ उनके जीवन का लक्ष्य था, वह आज पूरा हुआ।

अन्दर केवल तीस-चालीस सैनिक थे। परशुराम और अन्य आदमियों को न देखकर महाराज विस्मित हो गए।

'देशलदेव जी!' उन्होंने धीमे स्वर में पुकारा।

'यह रहा, महाराज!' देशलदेव बोला।

'परशुराम किधर गए?'

'महाराज! उन्हें आपकी प्रतीक्षा करना उचित नहीं जान पड़ा। खेंगार गढ़ छोड़कर जा रहा है यह जानकर वह उसके पीछे गए हैं। कुछ सैनिक मुख्य-द्वार पर, कुछ गिरनार की ओर वाली खिड़की पर, और कुछ सैनिक राजमहल की ओर भेज दिए गए हैं। आपके लिए इनको रहने दिया है।

'वाह! मेरे परशुराम।' राजा बोले, 'बस खेंगार सूचना पाते ही भागा?'

'नहीं, महाराज! वह तो एभल नायक की चौकी लेने जा रहा था।'

'अच्छा ! साहस हो तो ले अब चौकी !' क्रूरता से राजा ने कहा, 'सोलंकी आ पहुंचा है । देशलदेवजी ! इधर आओ तो !'

'जी' कहकर देशलदेव महाराज के साथ थोड़ी दूर गया ।

'दूसरा वचन याद है न ?' चमकती हुई आँखों से जयसिंहदेव ने पूछा ।

'मैं अपना वचन रखने को तत्पर हूँ ।'

'किस प्रकार ?'

'चलिए । राणक महल में है । जो इच्छा हो कीजिए ।

'महाराज ! लड़की है हठी । किन्तु आप समर्थ हैं और मैंने एक दूसरा मार्ग निश्चित कर रखा है ।'

'क्या ?'

'न माने तो उसे यहाँ से उठाकर ले जाइए । फिर ठीक हो जाएगी ।'

'हाँ, यह बात ठीक है ।' जयसिंहदेव ने विचार करते-करते कहा, 'किन्तु लेकर जाऊं कहाँ ?'

'उसकी मैंने व्यवस्या कर रखी है । हवा में बातें करने वाली सांडनी प्रस्तुत है । जहाँ ठीक समझें जा सकते हैं ।'

'अच्छा । वंथली ठीक न होगा ।'

'महाराज ! सरधार जाइए, वढ़वाण जाइए, जहाँ चाहे जाइए, किन्तु जितना दूर बन सके उतना ही अच्छा ।'

'हूं ।' विचारमग्न राजा बोला ।

'महाराज······।' अर्थ भरे स्वर में देशलदेव ने कहा ।

'क्या ?'

'अब जूनागढ़ पराजित हो गया । मेरे लिए आज्ञा······?'

जयसिंह की भवें तन गई—'यह भी कोई आज्ञा-पत्र देने का समय है ?' अधीर होकर उन्होंने पूछा ।

'मैंने वंथली में ही तैयार करवा लिया था । आपके हस्ताक्षर··· ।'

'देशलदेव मेरा वचन है। इस समय उसी पर श्रद्धा रखनी होगी।' हठीले स्वर में महाराज ने कहा, 'परमार! इस द्वार पर दो आदमी छोड़कर मेरे साथ चल।'

'महाराज! इसे साथ लीजिएगा?' देशलदेव ने संशय से पूछा।

'हाँ।' कठोरता से महाराज ने उत्तर दिया। देशलदेव मौन रहा। उसने महाराज को जितना भोला और कच्चा समझा वैसे वही नहीं निकले। 'चलो, मार्ग दिखाओ' आज्ञा मिली।

देशलदेव आगे बढ़ा, किन्तु महाराज वहाँ से न हटे। वह गहरे विचार में पड़ गये। उसने जुनागढ़ लिया—देशलदेव की युक्ति से, वह राणक को उठा ले जाने वाला था—देशलदेव की सलाह से उसकी कीर्ति का क्या बनेगा? वह राणक के पीछे पागल था, उससे मिलने के लिए व्यग्र था, उससे ब्याह कर उसे पटरानी बनाने का उसने निश्चय किया था। किन्तु क्या मुंह लेकर वह राणक के पास जायगा? किस मुंह से वह मुंजाल महेता अपनी वीरता की बात करेगा? और किस मुंह से वह अपनी दुर्जयता का दावा सिद्ध करेगा? कल तक वह विजेता था—देशलदेव ने आज उसे चोर बनाया है। नहीं, उसके होंठ फड़क उठे। खेंगार का सिर पर जब तक धड़ पर है तब तक कैसे उसकी स्त्री के निकट जाय?

'देशलदेव!' वह अधीर स्वर में बोले, 'मैं खेंगार के साथ युद्ध करने जाता हूं।'

'किन्तु महाराज!'

'धीरज रखो। परमार तू देशलदेव के साथ जाकर महल को घेर ले। चिड़िया तक न घुसने पावे। मैं अभी आ पहुंचता हूँ।'

'आप अकेले कहाँ जा रहे हैं?' परमार ने पूछा।

'अच्छा देशलदेव जी मुझे मार्ग दिखाएंगे। चलो। परमार, तू यहीं खड़ा रह।' कहकर देशलदेव को लेकर महाराज चले। एक लम्बा पट्टणी सैनिक दूर खड़ा यह सब देख रहा था। वह मन-ही-मन हंसा। 'अन्त

में जयदेव का मस्तिष्क ठिकाने आया तो।'

जयसिंहदेव शीघ्र ही नगर में चले गये। गढ़ की अभेद्यता और गढ़ रक्षकों की प्रामाणिकता को ध्यान में रखकर खेंगार ने नगर में बहुत ही कम सैनिक रखे थे। अधिकतर योद्धा चौकियों पर गये हुए थे। नगर वासी दिन भर इन योद्धाओं को विदा करने में व्यस्त थे और संध्या को उन्होंने खेंगार के जाने की तैयारी में उत्साह से भाग लिया था, परन्तु इस समय वे निश्चिन्त होकर सो रहे थे। गलियाँ निर्जन थीं। किसी-किसी चबूतरे पर वृद्ध पुरुष सोए पड़े थे।

वह चुपचाप 'गिरनारी' द्वार की ओर गये।

परशुराम लगभग तीन सौ आदमी लेकर इसी द्वार की ओर आया था। यह आदमी चुने हुए थे सावधानी और शान्ति से आगे बढ़ रहे थे। उन्हें चुपचाप, बिना शोर मचाए मारकाट करने की आज्ञा मिली थी और उसका पालन करने के लिए वह तैयार थे।

'गिरनारी' द्वार था। समीप ही खेंगार के पिता नवघरण के नाम से अमर हुआ विशाल कुँआ था। परशुराम के आदमियों के वहाँ पहुँचने तक खेंगार के साथ बाहर जाने वाले योद्धा सब-के-सब ग . के बाहर नहीं गये थे। खेंगार गढ़ के बाहर वजेसंग आदि सामन्तों के साथ वार्तालाप कर रहा था, कुछ सैनिक द्वार के बाहर निकल रहे थे, कुछ द्वार के सामने प्रतीक्षा में खड़े हुए थे। सभी में विजय का उत्साह था। एकाएक एक काले, निकट आते समूह ने देखते-ही-देखते उनको घेर लिया मानो किसी काले मेघ ने गिरनार के तेजस्वी शिखर को घेर लिया हो। खड़े हुए मनुष्य चिल्लाएं उसके पहले ही मार डाले गए। किसी को कुछ भी स्पष्ट न दिखाई पड़ा, कोई कुछ न समझ सका। सोरठी योद्धा इस दैवी कोप के समान सर्वग्राही विनाशकारी शक्ति को देखकर घबरा गए।

एक चिल्लाया 'अरे बाप रे!' दूसरे ने पूछा—'कौन है?' किन्तु यह शब्द आधे भी मुंह से न निकले थे कि बोलने वाले मौत के घाट

उतार दिये गए।

बाहर खेंगार बड़े उत्साह से बातें कर रहा था। वह धांधल का अस्पष्ट शब्द सुनकर चौंका, 'यह कौन है ?' तभी द्वार पर खड़ा एक सैनिक दौड़ता हुआ आया, 'महाराज ! सोलंकी की सेना ने नगर में मारकाट मचा रखी है।'

'क्या कहता है !'

'इतने में 'बाप रे' का शब्द और मारते हुए सैनिक को चीत्कार सुनाई पडी। खेंगार ने सिर ऊपर उठाया। उसकी आँखों से तेज फूट पड़ा। होंठ पीसकर वह लौटा।

'देखता हूँ क्या है।'

एक सामन्त आगे आया। 'बापू इस मार्ग से बाहर उतर जाइए। मैं देखकर आता हूँ। सोलंकियों ने गढ़ ले लिया लगता है।'

असम्भव ! ऐसा कैसे हो सकता है ?'

इतने में मारकाट का शब्द सुनाई पड़ा। 'स्वामी।' एक सामन्त बोला, आप गिरनार पर जाइए। आप जीते रहेंगे तो सब ठीक हो जायेगा।'

'चोर के समान सोलंकी आ जाए तो क्या मैं भी चोर के समान भाग जाऊँ ? जहाँ जूनागढ़ वहाँ उसका रा'। वीर सोरठियो ! लौट चलो।' उसने आज्ञा दी और द्वार के निकट आया। द्वार से सैनिक घबराकर बाहर निकल रहे थे। खेंगार ने क्रोधित होकर पूछा—पागलो ! भागते क्यों हो ? तुम्हारे हाथों को क्या हो गया ? लौट चलो।' खेंगार का शब्द सुनकर सब रुक गए। उसने तलवार निकालकर आज्ञा दी—'लौट चलें। जय महादेव ! अम्बा माता की जय !' कहकर खेंगार द्वार में सब से आगे घुसा।

द्वार में खड़े हुए सोरठी सैनिक लौट पड़े और शस्त्र चलाने लगे।

खेंगार द्वार में छलाँग मारकर कूदा। उसके साथ के योद्धा भी

उसी प्रकार आगे बढ़े। आगे बढ़ती हुई पट्टणी सैनिकों की पंक्ति टूट गई—पांच-सात पट्टणी भूमिसात् हो गए।

खेंगार एक क्षण में स्थिति समझ गया। विश्वासघात से पट्टणी गढ़ में घुस आए थे। निर्जन नगर निराधार था इसलिए उसकी रक्षा करना आवश्यक था। उसकी आशाओं का अन्त आ गया था, उसकी रानी की भविष्यवाणी सत्य निकली। अपने जीवन को अमर कीर्ति में मढ़ने की भयानक परीक्षा का समय आ गया था। उल्लासोन्मत्त वर जैसे नव परिणिता से उत्साह भरा मिलने दौड़ता है वैसे ही वह इस परीक्षा के अवसर से मिलने दौड़ पड़ा। उसके हाथ रक्त के प्यासे हो उठे। उसके हृदय में विजय-घन्ट का नाद हुआ। उसका स्वर भारी और भयंकर होकर गरज पड़ा। 'वजेसंग! द्वार बन्द कर दे। सोरठियो! टूट पड़ो, राजमहल की ओर बढ़ो। सती ी जय! अम्बा भवानी की जय!' प्रत्येक घोष के साथ एक पट्टणी गिरा। तलवार के प्रत्येक वार के साथ पट्टणियों की पांत टूटती गई।

किसी सोरठी ने द्वार बन्द कर दिया इसलिए पीछे हटने का मार्ग भी नहीं रहा। उस सँकड़ी जगह में ही सोरठियों ने व्यूह रचा। पट्टणियों की पंक्ति के सामने सोरठियों की एक छोटी-सी पंक्ति बन गई। चन्द्रमा अस्त होने की तैयारी कर रहा था और निरन्तर फैलता जा रहा था। इस अन्धकार में योद्धाओं की दो पंक्तियाँ एक दूसरे के साथ भयंकर युद्ध कर रही थीं।

रा' का उत्साह दुःसह था। जिधर वह घूमता उधर पंक्ति का रहना असम्भव था। उसकी तलवार विद्युत की माला के समान चारों ओर चमक रही थी। उसके पाँव अडिग थे। जहाँ वह खड़ा होता वहाँ से आगे बढ़ता, पीछे न लौटता था। थोड़ी ही देर में वहाँ रक्त की धाराएं बह चलीं। जहाँ दोनों पंक्तियाँ टकरातीं वहीं लाशों का ढेर लग जाता था।

खेंगार के घोष करने के पश्चात् कोई कुछ नहीं बोलता था। तलवार के वार या मरण की अन्तिम वेदना—इन्हीं दो के कारणों से कभी-कभी शब्द होता था। ऐसा लग रहा था मानों भूतों के समाज में गृह युद्ध छिड़ा हो।

## २४

परशुराम पीछे थे किन्तु सोरठियों की ओर से आक्रमण होते देखकर वह आगे बढ़े। उनके सामने सोरठियों का ऐसा जमाव था कि उसे पार करके आगे बढ़ना बहुत कठिन था। फिर भी वह आगे बड़े। उनके पिता का और बचपन से उनका स्वयं का लक्ष्य जूनागढ़ पर विजय प्राप्त करना ही था। आज इस धन्य क्षण में रा' को मारकर अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए वह तत्पर हो गए।

किन्तु सोरठियों का प्रत्याक्रमण धारी था; पट्टणी पीछे हटने लगे। अन्धकार में दोनों की शक्तियों का पता लगाना सम्भव नहीं था। दोनों में से कोई भी पीछे हट सके, ऐसा भी नहीं था। एकाएक पट्टणियों को पीछे से एक घोष सुनाई पड़ा—'जय सोमनाथ!' और कोई मनुष्यों की उछलती हुई तरंगों में कूद पड़ा। स्वर स्पष्ट और गर्व भरा था। पट्टणियों ने स्वर पहचाना और उसकी छाती में साहस उमड़ पड़ा। उन्होंने प्रतिघोष किया—'जयसिंहदेव महाराज की जय!'

खेंगार ने किसी को आता हुआ देखा और घोष भी सुना। वह समझ गया कि जयसिंहदेव सोलंकी आ गया है। उसकी उत्साह भरी देह रोम-रोम में आग लग गई। वह उछलकर गरज पड़ा, कहाँ है सोलंकी?'

सोरठियों में फिर उत्साह की लहर आई और दोनों पक्ष श्वास रोककर एक दूसरे पर विनाश ढाने लगे। जयसिंहदेव के घोष के पश्चात् उत्तेजना और भी अधिक फैल गई। दोनों ओर के योद्धा गर्जना करने लगे। मरे और घायल व्यक्तियों की चीत्कारें भी सुनाई पड़ने लगीं युद्ध की मार-काट से सोरठी राजमहल की ओर आगे बढ़ रहे थे।

अंधेरा भयंकर युद्ध में बाधा पहुँचाने लगा। किस पक्ष का योद्धा किसके साथ लड़ रहा है इसका किसी को भान नहीं रहा। योद्धाओं की पाँत राजमहल की ओर बढ़ रही है या बावड़ी की ओर मात्र इसी से उसका पक्ष पहचाना जा सकता था। अंधेरा होते हुए भी जयसिंहदेव पट्टणी सैनिकों के आगे आ गये। परशुराम उनके समीप ही उन्हें सहायता देने और आवश्यकता पड़ने पर उनकी रक्षा करने के लिए जूझ पड़े। खेंगार और जयदेव एक दूसरे को शत्रु आहुति यज्ञ में होमने के लिए ढूंढ़ रहे थे। किन्तु एक तो संकरा स्थान और दूसरे अंधकार। ऐसी परिस्थिति में किसी को खोजना संभव नहीं था। युद्ध कुछ ढीला पड़ा। खेंगार का स्वर फिर सुनाई पड़ा, 'सोरठियो ! राजमहल की ओर बढ़ो !' जयसिंहदेव यह स्वर सुनकर उस ओर बढ़े चन्द्रमा अस्त हो गया और चारों ओर अंधकार फैल गया। परशुराम को आज का दुःसाहस मूर्खतापूर्ण लगा। इस युद्ध का क्या परिणाम होगा ? परन्तु एकाएक सोरठी पीछे हटे, पट्टणी जयघोष करके आगे बढ़े। किस पक्ष में कितने योद्धा बच गये हैं इसका किसी को अनुमान नहीं था। सब के हृदय में यही प्रश्न था कि शेष रात्रि के व्यतीत हो जाने तक कौन विजयी होगा। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता था परशुराम की चिंता बढ़ती जाती थी। वह जयसिंहदेव को वापस लौट जाने के लिए आग्रह करना चाहते थे किंतु रण चढ़ा सोलंकी किसी की सुनने वाला नहीं था।

एकाएक बावड़ी की ओर विजय करते आगे बढ़ते हुए पट्टणियों पर राजमहल की ओर से आक्रमण हुआ। 'सोरठियो ! पट्टणियों को

काट ड़ालो ।' एक आज्ञापूर्ण स्वर गूंजा ।

अब जयसिंहदेव और परशुराम दोनों इस आक्रमण का अर्थ समझे खेंगार किसी परिचित पथ से घूमकर पीछे से आक्रमण करने आ पहुँचा था । उसके साथ कितने सैनिक थे यह जानना कठिन था । पट्टणी सेना जैसे 'सरोते' के बीच में आ गई थी । जयसिंहदेव और परशुराम तड़ित-वेग से प्रहार करने लगे । 'जय सोमनाथ !' का नाद चारों ओर फैल गया । सामने सोरठी 'रा' खेंगार की जय !' का प्रतिघोप कर रहे थे ।

परस्पर ही दो पक्षों में युद्ध के स्थान पर एक पक्ष के योद्धाओं में मार-काट हो रही थी । चारों ओर घोर नाद हो रहा था । दिशा और काल का किसी को भान न रहा । प्रातःकाल तक कौन जीवित रहेगा यह कोई नहीं जानता था । जयसिंह देव समझ गया था कि वह पूर्णरूप से फंस गया है और दोनों ओर शत्रु-सेना से बच निकलने का अब कोई मार्ग नहीं रह गया है । निराशा ने उसमें बल का संचार किया 'जय सोमनाथ की !' की गर्जना कर उसने विनाश चालू रखा ।

धीमे धीमे, अनजान में युद्ध-स्थल राजमहल के निकट होता जाता था ।

जिस लम्बे पट्टणी सैनिक ने जयसिंहदेव की गति-विधि पर मत प्रकट किया था स्वयं उसकी गति-विधि विचित्र थी । जैसे ही युद्ध का शब्द उसके कानों में पड़ा वैसे ही वह एक अनुभवी और शीघ्रगामी युद्ध के अश्व की चंचलता से खड़ा हो गया और जिधर से शब्द आ रहा था उधर ही चला गया । जहाँ मार-काट चल रही थी उससे दूर एक चबूतरे पर खड़ा होकर वह देखने लगा । खेंगार के सैनिक एक गली में से आकर पट्टणी सेना पर पीछे से टूट पड़े, यह उसने देखा । यह पट्टणी सेना की कठिनाई तुरन्त समझ गया और शीघ्रता से राज-महल की ओर गया । वहाँ जगदेव पच्चीस-तीस सैनिकों के साथ पहरा दे रहा था ।

'परमार !' उस सैनिक ने सत्ता-भरे स्वर में कहा—'महाराज को सोरठियों ने जहाँ दबा रखा है, तुरन्त उधर सहायता के लिए चलो।

मुंह पर वस्त्र बाँधे वह सैनिक उसे इस प्रकार सम्बोधित करे यह जगदेव को अच्छा नहीं लगा। उसे वहीं रहने की आज्ञा थी, अतः सत्ता का यह स्वाँग भी उसे नहीं रुचा।

'तू कौन है ?' उद्धत स्वर में जगदेव बोला।

'मैं युद्ध-स्थल से आ रहा हूँ।'

'किसने कहा है कि मुझे वहां जाना है ?'

'किसी ने नहीं, मैं कह रहा हूँ।—

'तेरी निर्लज्जता भी तो कम नहीं। तू अपना काम कर।'

वह सैनिक सीधा हो गया, उसके स्वर में तलवार की धार के सदृश्य तीक्ष्णता थी।

'जगदेव ! तुझे न तो आज्ञा का पालन करना आता है और न उसे भंग करना ही आता है।' उस सैनिक ने सत्ता भरे स्वर में कहा। जगदेव को स्वर परिचित सा लगा। वह किसका हो सकता है इस पर विचार करे उसके पहले ही उस सैनिक ने निकट खड़े हुए एक सैनिक की ओर घूमकर आज्ञा दी, 'मूला नायक ! मेरे साथ सैनिकों को लेकर चल।'

'कौन, महेता जी !' तभी घबराए से स्वर में परमार बोला। सैनिकगण सम्मान से उन्हें घेर कर खड़े हो गए।

'हां। पहचानने में सदा तुझे देर लगती है। तुझे यहाँ खड़ा रहना हो तो खड़ा रह। वीरो, चलो मेरे साथ। खेंगार ने वहां महाराज को फंसा दिया है।

'महाराज ! मैं देशलदेव को कह आऊं।'

'हां, जा। कहकर शीघ्र आ। कहकर मुंजाल महेता सैनिकों को लेकर चले। थोड़ी देर में दौड़ते हुए वह युद्ध-स्थल पर आ पहुंचे।

'परम भट्टारक जयसिंह देव महाराज की जय ! जय सोमनाथ !' मुंजाल महेता ने गगनभेदी गर्जना की। युद्ध की मार-काट में भी वह गर्जना चारों ओर गूंज गई। जयसिंहदेव, परशुराम और अन्य कई सैनिकों ने उस प्रचंड स्वर को पहचाना और उत्तर में—'जय सोमनाथ ! मुंजाल महेता की जय !' कहा।

मुंजाल महेता के नाम से पट्टणी सैनिकों में नया उत्साह जाग उठा। मुंजाल महेता और उनके सैनिकों का—नितान्त स्वस्थ होने के कारण आक्रमण इतना भारी हुआ कि कुछ समय तक सैनिकों की पंक्तियां इधर से उधर धक्के ही खाती रहीं। अब तो प्रतिपक्ष की पंक्ति या दिशा जैसी कोई वस्तु रह ही नहीं गई थी। 'जय सोमनाथ' और 'रा' खेंगार की जय !' से ही शत्रु पहचाने जा सकते थे। मुंजाल के अद्भुत बल और उसके धावे के असीम वेग का तुरन्त प्रभाव पड़ा निराश होते हुए पट्टणियों में विजय की आस्था प्रकट हुई। परशुराम को लगा कि वह अपने संकट में मुक्त हो गये और जयसिंहदेव के हाथों में दुगनी शक्ति आ गई।

किंतु सोरठि यों ही हार मानने वाले नहीं थे। रह-रहकर 'खेंगार की जय !' का घोष कर उठते थे, और धीरे-धीरे वह युद्ध स्थल को राजमहल की ओर ले जा रहे थे। नगर के बचे इक्के-दुक्के कुछ लोग भी आ पहुंचे थे। खेंमार उन सब के मध्य में घूम रहा था। थोड़े-थोड़े समय पश्चात् वह विभिन्न दिशाओं में जाता था, और अपनी गर्जना से सोरठियों को प्रेरित करता हुआ पट्टणियों को छका रहा था। वह किधर था इसका ज्ञान केवल सोरठियों की तीव्रता से ही हो जाता था। किंतु उधर कोई पटणी महारथी जाय उसके पहले ही वह दूसरे स्थान पर पहुंच जाता था।

खेंगार राजमहल तक पहुंचना चाहता था। वहां अपने पूर्वजों के जयस्तंत्र के सामने वह अपना कीर्तिस्तम्भ खड़ा करना चाहता था। वह यह भी आशा कर रहा था कि सोरठियों के उत्साह के कारण

पट्टणी सेना पराजित हो जायगी अथवा किसी चौकी से लौटती हुई सोरठी सेना की टुकड़ी सहायता के लिए आ पहुँचेगी। प्रातःकाल से पहले यह निश्चित नहीं किया जा सकता था कि किसकी विजय हुई। वह जीते-जी क्या विजयी नहीं हो सकता ?

धीरे-धीरे वह जीवित रहने की आशा छोड़कर प्रचण्ड हो गया। अब जीतने की उसे आशा न रही। वह विनाश की साक्षात् मूर्ति बन गया। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसके गले से सिंह गर्जना निकल रही थी और उसके दूसरे हाथ में की ढाल उसे अमरत्व प्रदान कर रही थी। न उसे थकान लग रही थी और न उसे यही जान पड़ रहा था कि उसे कोई परिश्रम करना पड़ रहा है। तुमुल नाद और शस्त्रों की टकराहट उसमें भय संचार न कर सके थे। कालभैरव के समान विशाल बनकर वह तो विनाश-क्रीड़ा में रत था।

जयसिंहदेव भी बड़े उत्साह से युद्ध कर रहे थे, किन्तु अब उकताने लगे थे। इस अन्धकार में खेंगार को खोजकर मारना असम्भव है तो इस युद्ध के अधिक चलने से क्या लाभ ? इतने में एक दिशा से भारी आक्रमण हुआ। कई लोग इधर उधर हट गए। जयसिंहदेव इस आक्रमण के धक्के से एक ओर जा गिरे। पीछे राजमहल था यह उन्होंने देखा और राणक का स्मरण हुआ, रा' खेंगार इस अंधकार में मिलना कठिन था, अतः उसका मन युद्ध छोड़कर चले जाने का हुआ। किन्तु सम्भव है उसकी अनुपस्थिति से पट्टणी पराजित हो जाय तो ?—

एकाएक दूर से दो चार मशालों का प्रकाश दिखाई पड़ा। दौड़ते हुए कुछ सैनिक आए। पल भर के लिए सभी युद्ध छोड़कर किस पक्ष के सैनिक आए हैं यह देखने लगे। जयसिंहदेव बिलकुल निकट थे। उन्होंने बढ़े चले आते सैनिकों के नेता को पहचाना। त्रिभुवनपाल और लीला देवी दौड़ते हुए अपने सैनिकों को लेकर द्वार से सहायता के लिए आगए थे। उन्होंने जयघोष किया—'जय सोमनाथ ! जयसिंहदेव महाराज की जय !' पट्टणी सैनिकों ने प्रतिघोष किया।

सोरठियों के हाथों के तोते उड़ गए। अब उनका विनाश प्राय: निश्चित हो गया।

जयसिंहदेव ने अब वहाँ रहने में कोई लाभ नहीं देखा। नवागन्तुकों के आक्रमण का लाभ उठाकर वे वहाँ से सब की दृष्टि बचाकर चले गए।

अन्त में उसने खेंगार को झुकाया और जूनागढ़ हस्तगत किया—इस विचार से उनके हृदय में हर्ष समाया न पड़ता था।

## २५

जयसिंहदेव महाराज युद्ध स्थल से कुछ दूर हट गए कुछ घाव लगे थे उन पर उन्होंने पट्टी लपेट ली और फिर मुँह से सियार के समान शब्द किया। तुरन्त कहीं छिपा हुआ बाबरा भूत आ गया। उसे लेकर नंगी तलवार ही हाथ में लिए महाराज राजमहल की ओर चल पड़े। राजमहल अंधकार में डूबा हुआ था। उसमें रहने वाली स्त्रियों ने घबराहट के मारे दीपक भी नहीं जलाए थे। कुछ वृद्ध अनुचर महल की रक्षा करने के हेतु शस्त्र लेकर द्वार के पीछे बैठे हुए थे। जैसे ही महाराज महल में आए कि एक खंभे के पीछे छिपा हुआ देशलदेव निकल कर आया। उसके मुख का रंग उड़ गया था। उसे लग रहा था कि उसका जीवन बावड़ी के सामने चलते हुए युद्ध पर ही निर्भर करता है।

'महाराज क्या हुआ ?' चिन्तातुर स्वर में उसने पूछा।

'हुआ क्या ? खेंगार को मार डाला।' जयसिंहदेव ने गर्व से विश्वास दिलाया।

'चलो शांति मिली।' देशलदेव ने सन्तोष की सांस ली, 'अब किस की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?'

'किसी की नहीं। रनिवास में चलो।'

'किन्तु महाराज ! वहाँ कुछ अनुचर अवश्य होंगे।'

'क्यों, घबरा गए हो ?' हँसकर महाराज ने कहा, 'जयसिंहदेव पराजित करना सरल नहीं है।'

'मैं क्या नहीं जानता महाराज ! देशलदेव बोला। वह आगे आगे हो गया। उसके पीछे महाराज और उनके पीछे बाबरा महल में जा घुसे।

'देशलदेव जी तुम्हारी सांडनी तैयार है न ?'

'जी हाँ। पीछे की ओर हमीर तैयार खड़ा है।'

'अच्छा।' वह अन्दर घुसे।

'कौन है ?' अनुचर ने ललकार कर पूछा।

'जयसिंहदेव सोलंकी !' और देखते ही देखते उसे घायल कर दिया। अन्दर के कमरे में तीन चार लोग शस्त्र लेकर तैयार खड़े हुए थे।

'महाराज ! इन सबसे निपटना पड़ेगा।' देशलदेव तनिक दबी जबान से बोला।

'चिन्ता नहीं। मैं जानता हूँ तुम निकम्मे हो।' महाराज ने कटाक्ष किया और पीछे घूमकर बाबरा से कहा, 'मार्ग कर।'

बाबरा ने कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक छलाँग मारी और दो आदमियों को पकड़ा। एक घबराकर भाग गया। चौथा शस्त्र लेकर आगे बढ़ा किन्तु महाराज की तलवार के एक ही प्रहार से वह दो टूक होकर जाने कहाँ गिरा। महाराज अन्दर के कमरे में गये।

देशलदेव और महाराज एक निर्जन कमरे को पार करके एक छोटी कोठरी में गये।

'महाराज, देवड़ी निश्चय ही यहीं होगी।' देशलदेव बोला। उस कोठरी में दीवाल पर लटकी पीतल के दीवट में तेल का दीपक जल रहा था। उस दीपक के निकट भूमि पर एक स्त्री बैठी हुई थी। उसके सामने एक आले में अम्बा जी की मूर्ति थी और उसके दोनों ओर घी के दो दीपक जल रहे थे। वह सिर नीचा किए माला जप रही थी। दूसरी दीवार के निकट पलंग पर दो लड़के एक दूसरे से लिपटकर सो

रहे थे। कुछ स्त्रियाँ वहां से भागती सी लगीं।

द्वार के अंदर जाकर जयसिंहदेव रुक गए। उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई। उस क्षण उन्हें लगा कि इस स्त्री रत्न के बिना उनका जीवन आज तक सम्पूर्ण रहा है। उन्हें उसके पांव पर गिरने, उसे बाहुओं में भरकर हृदय से लगा लेने का जी हुआ। यदि पन्द्रह वर्ष पहले उससे विवाह किया होता तो जाने क्या क्या कर डालता? दो पग आगे बढ़कर देशलदेव ने गला खखारा।

'देवी!' वह बोला।

कोठरी में शान्ति थी। उस स्त्री ने ऊपर देखते हुए म्लान मुख से किन्तु निर्भयता से पूछा, 'कौन देशलदेव हैं क्या?'

'हां देवी···देवी···' देशलदेव की जिह्वा बड़ी कठिनाई से कुछ कह पा रही थी, जयसिंहदेव···।'

'सोलंकी को लाया है?' कटु स्वर में राणकदेवी ने कहा, 'वाह भानजे!' मामा जीवित हैं या···।'

'देवड़ी!' जयसिंहदेव ने आकर कहा, 'मैं हूँ—जयदेव, कितने वर्षों बाद हम मिले हैं!' महाराज का स्वर क्षोभ में कांप रहा था।

'न मिले होते तो तुम और मैं दोनों सुखी होते।'

'देवड़ी! पन्द्रह वर्षों बाद तू मिली। आज मेरा जीवन सार्थक हो गया।' कुछ उतावलेपन से महाराज बोले।

'सोलंकी! मैं तो रा' की रानी हूँ। तुम क्या कह रहे हो इसका तुम्हें भान नहीं है।' देवड़ी की वाणी में गर्व था।

'नहीं तू रा' की रानी नहीं वरन् आज से सोलंकी की पटरानी है।'

'नहीं नहीं नहीं···।' देवड़ी इस प्रकार बोली मानो उसे वेदना हो रही हो, सोलंकी! मैं तो रा' की ब्याहता हूँ।'

'नहीं।' जयसिंहदेव ने कहा, 'रा' तो कभी का यम के घर जा चुका है।'

'तुम झूठ बोल रहे हो।' विश्वासपूर्वक रानी ने कहा।

जयसिंहदेव चौंके, 'तूने कैसे जाना ?'

'मैंने ? 'मुझे मालूम है। मेरा 'रा' मेरा प्राण अभी इस संसार को छोड़कर नहीं गया है। सोलंकी, तुम जाओ। इस जन्म में मेरा अन्य व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं।'

जयसिंहदेव के चेहरे पर राजहठ झलकी। इस स्त्री के बात करने के ढंग से उसका मोह और भी अधिक बढ़ गया। उसकी दृष्टि फीके किन्तु सुन्दर बोलते हुए होंठों पर टिकी हुई थी।

'देवड़ी ! इसी जन्म में ही तुझे अपना बनाना है। तेरे कारण जूनागढ़ पर घेरा डाला, तेरे कारण खेंगार को मारा, राणक ! अब तुझे तो पाटण की पटरानी बनना ही शोभा देता है।'

'मुझे तुम्हारे पाटण से क्या काम ? मेरे सोरठ का मेरे लिए ही तो निर्माण हुआ हैं।'

'नहीं, तेरे लिए सोरठ का निर्माण नहीं हुआ। उठ !' जयसिंहदेव चिल्लाकर बोले। 'बात करने का समय नहीं है। बाहर साँडनी तैयार है। पन्द्रह वर्ष के वैर का बदला आज निकलेगा। खेंगार पन्द्रह वर्ष पहले तुझे ले गया था, आज मैं वापस लेज ाता हूं।'

'सोलंकी ! सोलंकी ! मुझे ले जाने से कोई लाभ नहीं।' खिन्नता से राणक बोली, 'मैं प्रज्वलित अंगार हूँ। छूते ही जल मरोगे।'

'तेरे लिए मैं जल मरने के लिए भी तत्पर हूँ। चल उठ !' कहकर जयसिंहदेव निकट आये।

राणक कुछ खिसक कर खड़ी हो गई, 'मुझे छूना मत।' दीनता से वह बोली।

'क्यों, क्या बात है ?'

'मुझे, सोरठ के स्वामी की स्त्री को, उनके जीवित रहते कैसे छुआ जा सकता है ?'

'चल मेरे साथ !' महाराज ने अधीर होकर आज्ञा दी ।

'रा' और उसके पुत्रों के रहते कोई मुझे इस महल में से ले जाने का साहस नहीं कर सकता है ?' कठोरता से राणक ने पूछा ।

'कौन ! मैं ले जाऊँगा, मैं जयसिंहदेव सोरठ का, तेरे रा' का और तेरा स्वामी । चल !' जयसिंहदेव ने मोटे आदेश भरे स्वर में कहा ।

महाराज का स्वर सुनकर सोये हुए कुअंर जाग पड़े और बिस्तर में बैठकर आँखें मलने लगे ।

'मां-मां !' माना ने बिस्तर में खड़े होकर पूछा, 'क्या है ? यह कौन है ?'

जयसिंहदेव उन लड़कों की ओर कठोरता से देखने लगे ।

'बेटा यही है तेरे देश और तेरे पिता का काल—सोलंकी ।'

'जयसिंहदेव सोलंकी !' माना चिल्लाया, 'माँ-माँ ! यह कहां से आया ? पिताजी कहाँ हैं ?'

'इसी से पूँछ ।' आँचल से आँसू पोंछते हुए राणक ने कहा, 'बेटा हमारा पुण्य सिधार चला ।'

'क्या पिताजी मारे गए ?' लड़के ने बिस्तर के नीचे से एक छोटी तलवार निकालते हुए पूछा ।

'हाँ, छोकरे !' महाराज ने उत्तर दिया, 'तेरा बाप मारा गया, तरी माँ मुझसे ब्याह करेगी और चूँकि तेरा बाप नहीं इसलिए जयसिंहदेव तुझे जूनागढ़ की गद्दी पर बिठाएगा ।'

'अरर !' राणकदेवी ने कानों पर हाथ रख लिए, 'बोलते हुए तुम्हारी जीभ नहीं जल जाती ?'

'पिता जी ! पिता जी । मेरी सती माता को......।' कह कर माना तलवार निकाल कर जयसिंहदेव की ओर दौड़ा । महाराज ने अपनी तलवार से उसकी तलवार इस प्रकार दूर फेंक दी मानो खेल कर

रहे हों।

'पुत्र भी विषैला है ठीक बाप की तरह।' जयसिंहदेव ने कहा, 'राणक ! विलम्ब हो रहा है चल, चाहे तो लड़कों को भी साथ में ले ले।'

'पापी ! अपने बच्चों को लेकर मैं दूसरा घर करने जाऊँगी ?' देवड़ी की आँखों में क्रोध प्रकट हुआ।

'तो लड़कों के बिना ही चल।' जयसिंहदेव क्रोध और लिप्सा से कांप रहा था। उसे यह भी भय था कि अधिक देर हो जायगी तो मुंजाल महेता और लीलादेवी भी आ पहुंचेंगे।

'देवी, उठो।' देशलदेव बीच में बोल पड़ा।

'भानजे !' तिरस्कार से रानी ने कहा, 'मेरे दोषों से तो तू अपवित्र हो गया था न ? अब अपना मुंह काला क्यों नहीं करता ? सोलंकी ! दुखिया को और दुःखी क्यों करते हो ? तुम भी जाओ।'

'तुझे लिए बिना मैं नहीं जाऊंगा। राणक, तुझमें मेरा जीवन निहित है। तुझे जो चाहिए मांग ले, जो चाहे कर किन्तु तेरे बिना मैं यहाँ से जाने का नहीं।'

'मेरी माँ को ले जाता है, क्यों ?' माना चिल्लाया।

इतने में छोटा कुँअर, जो दूर खड़ा देख रहा था, पीछे से आया और माना की पड़ी हुई तलवार को उठाकर जयसिंहदेव के पाँव पर प्रहार कर दिया। जयसिंहदेव वेदना से चीत्कार कर उठे और वेदना के आवेश में अपनी नंगी तलवार कुंअर के शरार में घुसेड़ दी। साथ ही उन्होंने होंठ दबाकर कष्ट शमन करने का प्रयत्न किया। राणक ने आँखों पर हाथ रख लिए। माना रोने लगा। एक हृदय-भेदी चीत्कार करके कुँअर धरती पर गिर पड़ा। उसके प्राण निकल गए।

जयसिंहदेव को अपने अविचारी हुए साहस पर पश्चात्ताप हुआ। पुत्र का रक्त बह रहा हो उस समय क्या राणक मानने वाली थी ? किन्तु पश्चात्ताप करने या भूल हो जाने पर क्षमा मांगने का उनका

स्वभाव नहीं था। वह उलटे और हठी हो गए। उन्होंने नीचे झुककर घाव पर पट्टी बाँधी और क्रूरता से राणक की ओर घूमे।

'यह तेरे लड़के······'

'माँ माँ······।' रोते रोते माना बोला।

'बेटा!' राणक ने अपूर्व शान्ति से कहा 'मरते समय माँ को याद मत कर बेटा। ऐसा करने से कुल की कीर्ति कलंकित होती है।'

इस शांति से जयसिंहदेव भड़क उठे। 'उनका उग्र स्वभाव वश में नहीं रह सका। वह आवेश में आगे बढ़े, 'मैं थक गया हूँ। चल, नहीं तो उठा ले जाऊंगा।'

'नीच!' कहकर माना महाराज के आगे बढ़ने से पहले ही कूदकर उसकी गर्दन से ऐसे लिपट गया मानो वृक्ष पर चढ़ रहा हो। लड़का शक्तिवान् था फलस्वरूप दृढ़ता से चिपका रहा। जयसिंहदेव के हाथों में घाव थे, पाँवों पर भी गम्भीर घाव लगे थे अतः सशक्त होते हुए भी उससे लिपटकर उसे काटने का प्रयत्न करते हुए लड़के का कुछ नहीं कर सके। उनकी पगड़ी गिर पड़ी। उन्होंने तलवार फेंक दी और दोनों हाथों से माना को काटने के लिए आगे बढ़ते हुए मुख को ज्यों-त्यों करके रोक रखा।

'राणक! अपने लड़के को बुला ले।' महाराज क्रोधित होकर बोले, किन्तु किन्तु राणक कुछ नहीं बोली। देशलदेव निकट आकर कांपते हुए हाथों से लड़के को छुड़ाने का निष्फल प्रयत्न करने लगा। जयसिंहदेव ने लड़के को हटाने का भारी प्रयत्न किया किन्तु सफलता प्राप्त करने के लिये उन्हें प्रयत्न करके उलटा घूमना पड़ा। इस प्रयत्न में उनकी कलाई एकदम माना के मुंह के निकट आ गई और उसने बहुत जोर से दांत घुसा दिये। उसी स्थान के निकट ही जयसिंहदेव को घाव लगा था अतः—

वह चीत्कार कर उठे और माना को दूर करने के लिए अपने भारी शरीर को ऐसे जोर का झटका दिया कि माना झटके के जोर से

एकदम छूटकर समीप की दीवार से जाकर टकराया । माना का सिर दीवार से टकराया, एक भयंकर शब्द हुआ। उसका सिर फूट गया और वह अचेत होकर धरती पर जा पड़ा ।

महाराज ने पगड़ी और तलवार उठाकर आराम की सांस ली ।

'राणक ! चलती है या नहीं ?' अपने हाथों किए विनाश की ओर क्रूरता से देखते हुए वे बोले ।

देवड़ी का मुख कठोर हो गया। वह खड़ी हो गई और बोली, 'मैंने कह तो दिया। मेरे बच्चे मर गए,—किन्तु मेरे स्वामी अभी तक जीवित हैं।'

जयसिंहदेव के होंठ वक्र हो गए। इस हठी स्त्री को पराजित करने का एक विवेकहीन विचार उठा ।

'चलती है या नहीं ?' कहते हुए वे हाथ लम्बे करके उसे पकड़ने आगे बढ़े ।

'ठहरो।' देवड़ी ने क्रोध में हाथ लम्बा किया। वह सीधी खड़ी हो गई। उसके मुख पर तेज छा गया। उसकी आंखें एकदम चमक उठीं। यह परिवर्तन देख कर जयसिंहदेव बरबस पीछे हट गए राणक ने चारों ओर इस प्रकार देखा मानो उसका श्वास रुद्ध हो रहा हो। वह भयँकर चीत्कार कर उठी ।

'मेरे रा'—मेरे नाथ—मेरे स्वामी।' आंखें फाड़ कर वह बोलने लगी, 'घणीखम्मा ! खम्मा—खम्मा !' उसने गले पर हाथ रखा, 'जय अम्बे ! जय अम्बे ! खम्मा मेरे रा' की।' उसकी वाणी भँग हो गई। 'ओ मेरे रा'—रे' वह हृदय-भेदी चीत्कार कर उठी और सिसक सिसक कर रोती हुई धरती पर गिर पड़ी ।

२६

महाराज की आँखों के सन्मुख अन्धेरा छा गया। उन्हें लगा मानो खेंगार उसी क्षण मर गया हो। वह कहां था उन्हें समझ न पड़ा, वह कहां क्या कर रहा था इसका भी उसे स्मरण नहीं रहा। वातावरण पवित्र तेज से प्रदीप्त हो गया उसके और राणक के मध्य में तेजपुंज सा एक पुरुष आकर खड़ा हो गया। उसे उन्होंने पहचान लिया उसका मुख खेंगार सा था। उसके हाथ में खड्ग थी। उसकी आंखों में विजय थी। उसके मुख पर हास्य—तिरस्कार का हास्य—था। उनके और इस तेजस्वी मूर्ति के बीच में असीम अन्तर होता जा रहा था............।'

महाराज दो चार डग पीछे हट गये और अपने कपाल पर हाथ फेरने लगे।

तेज अन्तर्धान हो गया। अन्धकार फैल गया। एक छोटे तेल के दीपक के मन्द प्रकाश में दो मरे हुए कुंअर, अचेत देवड़ी और एक कोने में मुंह में हाथ रखकर काँपता हुआ देशलदेव उन्हें दिखाई पड़े। पीछे प्रकाशहीन द्वार में बावरा बैठा हुआ था उन्हें फिर सब बातों का ध्यान आया।

'बावरा! बाबरा! उठा इस देवड़ी को।' दबे हुए स्वर में वह बोले और देशलदेव के समीप जाकर ठोकर मारते हुए कहा—'उठो।'

बाबरा ने कूदकर राणक को उठा लिया और देशलदेव उठ कर चलने को तत्पर हुआ। भय, क्रोध और काम के विभिन्न भावों से संतप्त जयसिंहदेव बिना पीछे देखे हुए चले गए।

'देशलदेव जी! सांडनीं कहां है?' जयसिंहदेव ने पूछा।

'महाराज' कहकर देशलदेव एक द्वार से बाहर निकला।

बाहर साँडनी लिए हमीर खड़ा हुआ था।

'बाबरा, चढ़ जा।' महाराज ने आज्ञा दी। बाबरा राणक को

लेकर तुरन्त सांडनी पर चढ़ गया। महाराज उसके पीछे बैठने के लिए चढ़ ही रहे थे कि देशलदेव ने उन्हें रोका।

'महाराज!'

'क्या है?'

'महाराज, मैं भी चलूँ?'

'कहाँ?'

'वढ़वाण।'

'वहाँ तुम्हारा काम नहीं।' धिक्कारते हुए जयसिंहदेव बोले।

'किन्तु महाराज...'

'क्या है?'

'वह आज्ञा-पत्र......।'

'कैसा आज्ञापत्र?' तनिक भूल जाने से जयसिंहदेव ने पूछा।

'मुझे जूनागढ़ देने का......।'

'जयसिंहदेव आपे से बाहर हो गए, 'कुत्ते! मारा, मामी को बेचा और अब जूनागढ़ लेकर मुझे नष्ट करना है? दुष्ट......।'

'महाराज! आपने वचन दिया था।'

'पिशाच!' जयसिंहदेव ने दहाड़ मारी, 'तुझे और वचन? आज रात्रि के सब कर्मों का पाप तेरे सिर पर है।'

'मेरे कारण तो......।' हाथ जोड़ते हुए देशलदेव बोला।

'हाँ तेरे ही कारण आज मुझे यह सब करना पड़ा। पापी! तुझे अब धरती का भार बनकर नहीं रहना चाहिए। यह ले अपना पुरुस्कार—।' कहकर महाराज दांत कटकटाकर एक ही प्रहार में उसका सिर उड़ाकर साँडनी पर जा बैठे। 'हमीर! बड़े द्वार की ओर हांक।' साँडनी के चलने पर महाराज पीछे घूमकर देशलदेव की ओर देखकर बड़बड़ाए, आज 'सबसे अच्छा काम तो मैंने यह किया है।'

हमीर ने भी देखा कि आज्ञापालन करने में ही भलाई है इसलिए उसने साँडनी हांक दी। एक दिशा में युद्ध का शब्द सुनाई पड़ रहा

था। शेष जूनागढ़ श्मशान की भाँति शाँत था। सूनी गली में सांढनी के पैरों की पद्चाप भर सुनाई पड़ रही थी। जिस समय वह मुख-द्वार पर पहुँचे उस समय वहां पट्टणी सैनिक पहरा दे रहे थे। उनका नायक तुरन्त बोल उठा, 'कौन है ?'

'नायक कौन है ?' महाराज ने पूछा।

'क्यों ?' कहता हुआ नायक आगे आया।

'कौन, खेमा नायक ?'

'कौन, महाराज ?' खेमा नायक ने स्तंभित होते हुये कहा। उसने आगे बैठे हुए बाबरा के हाथों में पड़े शरीर की ओर घबराते सहमते देखा।

'चुप ! इधर आ।'

खेमा महाराज के निकट गया।

'खेमा ! मैं आवश्यक काम से जा रहा हूं। अभी किसी से मत कहना। खेंगार मारा गया। युद्ध अब बन्द हो जायगा। बन्द होते ही मुंजाल महेता से कहना कि मैं वंथली गया हूं, मेरी चिन्ता न करें।'

'जो आज्ञा।'

'द्वार खोल।'

'जी।' कह कर खेमा ने द्वार खोला औक महाराज बाहर हुए।

'हमीर ! वढ़वाण की ओर चल।' धीमे से महाराज ने कहा।

'जो आज्ञा......।'

खेमा ने फिर द्वार बन्द कर दिए।

'खेमा ! ' एक परिचित स्वर सुनाई पड़ा।

'कौन काकभटजी !'

'हाँ, तनिक इधर आ तो।'

'कहिये !' कहता हुआ खेमा आया।

'अभी यहाँ से कोई गया है ?'

'बापू ! आपसे कहने में तो कोई चिन्ता नहीं, परन्तु मन ही में

रखियेगा। अभी अभी गये हैं।'

'मुझे भी लगा तो ऐसा ही था : साथ में एक स्त्री भी ता थी ?'

'एक काले भूत सा भी कोई था···।'

'बाबरा ?—'

'हाँ। उसकी गोद में कोई अचेत पड़ा हुआ था।'

'साँडनी थी न ?'

'हाँ।'

'कहाँ गए हैं ?'

'मुझे तो कह गए हैं कि मुंजाल महेता से कहना कि महाराज वंथली गये हैं ?'

काक हँस पड़ा, 'किन्तु गये किस मार्ग से हैं ?'

'इधर उत्तर की ओर गये हैं।'

'कितनी देर हुई ?'

'बस दो-चार घड़ी हुई होंगी।'

'हूँ।' काक ने गहरी सांस ली, 'कोई चिन्ता नहीं। तू द्वार खोल।'

'जो आजा' कहकर खेमा ने द्वार खोला और काक बाहर निकला। जिस मार्ग से महाराज गये थे उसी मार्ग पर उसने घोड़ा दौड़ा दिया। इतने में खेमा को स्मरण हुआ कि काक से भृगुकच्छ के विषय में कहना तो रह ही गया।

'भट जी,···बापू।' वह चिल्लाया, परन्तु काक का ध्यान उधर नहीं था। वह तो घोड़े को एड़ मारकर उसकी गति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था।

२७

रा' खेंगार को विदा करके काक विश्राम करने ऊपर छत पर चला गया था। उसके मस्तिष्क में घोर अशान्ति थी। उसे आने वाले संकटों के तार झनझनाते से लगे। कुछ देर तक वह विचार करता रहा, फिर उसे नींद आने लगी। कितनी देर तक वह सोता रहा, इसका उसे ध्यान नहीं रहा किन्तु जैसे ही वह जागा वैसे ही उठकर बैठ गया और कान लगाकर सुनने लगा। मेंदरड़ा की ओर तो संग्राम चल रहा था किन्तु गढ़ में भी कहीं कुछ हो रहा है उसे ऐसा लगा। क्या हो रहा था यह समझ नहीं पड़ा, किसका शब्द था सो भी मालूम नहीं हुआ, और किधर से आ रहा था यह भी नहीं जान पाया। शस्त्र धारण करके वह तुरन्त गढ़ देखने निकल पड़ा। वह शीघ्रता पूर्वक महल से निकल कर कोट से होता हुआ मुख द्वार की ओर गया। एकाएक उसे 'गिरनार' द्वार की ओर से हल्ला सुनाई पड़ा, 'जय जय' का घोष सुनाई पड़ा। उसे शंका हुई, तो पट्टणी गढ़ में घुस ही आए? वह एकदम जिधर से हल्ला आ रहा था उधर घूमा। सामने से पच्चीस-एक आदमी आ रहे थे। वह सोरठी नहीं थे।

'कौन है ?' उसने पुकारा।

उत्तर में वह आदमी उस पर टूट पड़े। काक तुरन्त समझ गया कि पट्टणियों ने गढ़ ले लिया है। वह सावधान हो गया। उसने निश्चय किया कि इतने आदमियों का सामना करने में लाभ नहीं है इसलिए गड़बड़ किये बिना अपने आपको पकड़ जाने दिया न उनमें से किसी ने उसे पहचानने का कष्ट उठाया और न उसने ही अपना परिचय देने की चिन्ता की। स्थिति ठीक से समझे बिना कुछ भी करना उसने उचित नहीं समझा। किस प्रकार यहाँ से छूटकर राणकदेवी और बच्चों की रक्षा करने का खेंगार को दिया हुआ वचन पाला जा सकता है इसी पर वह विचार करने लगा।

वह सैनिक मुख्य द्वार पर गये और चौकीदारों को बन्दी बनाकर द्वार पर अधिकार कर लिया। पकड़े हुए सैनिकों को भी काक के निकट बिठाया। काक बैठे-बैठे सभी पट्टणी सैनिकों को ध्यान से देखने लगा। इतने में उनके नायक का स्वर उसने सुना और पहचाना। उसी का खेमा नायक इस टुकड़ी का संचालन कर रहा था। खेमा नायक उसके सामने से होकर निकला तो वह बोला, 'अरे खेमा! मैं सोरठियों और पट्टणियों क्या दोनों का बन्दा हूं।'

खेमा ने अपने स्वामी का स्वर पहचाना और मरे माने हुए भटराज को यहाँ देखकर हर्ष से पागल होकर 'कौन मेरे भटराज!' कहता हुआ हाथ लम्बे कर दौड़ता हुआ आया।

'मेरे हाथ तो खोल!' हँसते हुए काक बोला।

'गधा!' खेमा नायक ने, जिस सैनिक ने काक के हाथ बांधे थे उसे उपाधि दी और उसके लक्षणों का स्मरण करते हुए एक ठोकर मारी। 'लाट का होकर भटराज को नहीं पहचानता?' खेमा ने काक के बन्धन खोल दिये। तब काक ने खेमा का आलिंगन किया।

'तू तो बहुत विश्वासपात्र हो गया लगता है?'

'हाँ।'

'यहाँ कैसे?'

'पिछले द्वार से चुपचाप आए हैं।'

'कौन-कौन?'

'महाराज, दण्डनायक, परशुराम और वही परमार।'

'कितने सैनिक थे?'

'लगभग चार सौ।'

'कितना समय हुआ आए?'

'चार-एक घड़ी हुई होंगी।'

काक निश्चिन्त हुआ। यदि पट्टणी सेना चारेक घड़ी पहले ही

आई है तब तो खेंगार कभी का बाहर निकल गया होगा। इतने में एक अपरिचित व्यक्ति खेमा के पास दौड़ता हुआ आया, नायक! नायक! बाहर कुछ व्यक्ति आए हैं।'

खेमा और काक शीघ्र ही द्वार के निकट गये और छिद्र में से बाहर देखा। चार-पाँच सौ सैनिक थे।

'कौन है?' खेमा ने पुकारा।

'जय सोमनाथ!' बाहर से घोष हुआ।

'त्रिभुवनपाल महाराज की जय!' एक दो सैनिकों ने घोष किया।

'कौन मेरे महाराज!' काक बोला, 'जय सोमनाथ! त्रिभुवनपाल महाराज की जय! खेमा द्वार खोल। अरे ओ! उस ओर कोने में मशाल पड़ी होगी, जला।'

तुरन्त द्वार खुले। मशालें जलीं। त्रिभुवनपाल मण्लेश्वर लीला दवी और उनके साथ के आदमियों ने प्रवेश किया। जयसिंहदेव महाराज की युक्ति थी कि त्रिभुवनपाल और लीलादेवी की टुकड़ी बड़ी चौकी पर पीछे से हमला करे जिससे मेंदरड़े से आने वाली सेना की सहायता मिले और लीलादेवी प्रातःकाल होने से पहले जूनागढ़ भी न पहुँच सके।

परन्तु मुंजाल महेता चाहे जितना विश्वास दिलाएँ वह अपने पति को उनसे अधिक अच्छी प्रकार जानती थीं। लीलादेवी इस प्रकार बातों में आ जाने वाली नहीं थी। जैसे ही वह महाराज से विदा हुईं वैसे ही उन्होंने त्रिभुवनपाल के सामने महाराज के विषय में चिन्ता प्रकट करना आरम्भ किया—संभव है खेंगार पराजित कर दे, मार डाले आदि भय पल-पल पर अधिक से अधिक बढ़ते गए और अंत में इतने बढ़ गए कि उनके कहने से त्रिभुवनपाल बड़ी चौकी की ओर जाना स्थगित कर अपनी टुकड़ी लेकर मुख द्वार की ओर मुड़ गया। उन्हें विश्वास था कि यदि सब कुछ ठीक हुआ होगा तो मुख द्वार पट्टणियों के अधिकार में होगा। इस समय काक को

मुख द्वार पर देखकर उनके हर्ष की सीमा नहीं रही। त्रिभुवनपाल तो उसके गले में लिपटकर चिपक गए। लीलादेवी की आँखों में भी हँसी खिल उठी।

'कहो महाराज के क्या समाचार हैं ?' लीलादेवी ने पूछा।

'मुझे मालूम नहीं।' काक बोला। 'मुझे तो पहले पट्टणियों ने ही बन्दी बनाया। मेरे भाग्य में तो बन्दी बनना ही लिखा लगता था कि खेमा ने आकर मुझे छुड़ाया।'

'तो चलो अब महाराज को खोज लें।' लीलादेवी बोली।

'चलिए।' कहकर काक, त्रिभुवनपाल, और लीलादेवी अपने सैनिकों सहित जिस ओर से युद्ध का शब्द आ रहा था उस ओर दौड़ पड़े वे युद्ध-स्थल पर किस प्रकार पहुंचे यह हम सब देख चुके हैं। वहां पहुंचने पर काक ने वहां से खिसककर राणकदेवी और उसके कुंअरों को कहीं और पहुँचा आने का विचार किया। मुख द्वार पर खेंमा नायक था यह भी उसके लिए संतोष की बात थी। पहले तो वह युद्ध में भाग लेने के लिए घुसा और अपनी उपस्थिति जताने के हेतु उसने जयघोष किया। इतने में मशालें बुझ गईं और पहले सा अंधकार छा गया। काक तुरन्त युद्ध से निकलकर दौड़ता-दौड़ता राजमहल की ओर गया।

राजमहल शांत और अन्धकारमय था। क्या पट्टणियों की विनाश-लिप्सा महल पर भी मंडरा गई ? वह अन्दर गया। सब द्वारपाल भयभीत होकर भागे जा रहे थे। एक द्वार पर उसका पाँव एक आदमी से टकराया। उसने तुरन्त चकमक निकाली प्रकाश करके देखा—दो आदमी मरे हुये पड़े थे। काक को चिन्ता हुई। वह तो सोच रहा था कि जयसिंहदेव महाराज युद्ध में हैं कहीं वह रनिवास में तो नहीं आ पहुँचे ?

वह अन्दर के कमरे में गया। वहाँ दीवार पर तेल का दीपक जल रहा था। खण्ड निर्जन था—किन्तु ध्यान से देखने पर दोनों कुंअर

भूमि पर पड़े दिखाई दिए। आले में बैठी अंबाभवानी की मूर्ति घी के दीपक के चंचल प्रकाश में इस भयंकर निर्जनता को इस प्रकार क्रोध से देख रही थीं मानो वह सजीव हों।

'उफ! मुझे देर हो गई। काक बोला और उन दो लड़कों को देखने के लिए नीचे बैठा। उन्हें देखते-देखते उसका मुख उतर गया। दोनों कुँअर मर चुके थे।

काक को क्रोध आया। अधमता, क्रूरता और विनाशवृत्ति की भी सीमा होती है। माता को वश में करने के लिए पुत्रों का मारने वाले राक्षसी प्रणयी का स्वभाव कैसा होगा? ऐसा है उसका स्वामी, उसका राजा, ऐसे की ही सेवा में उसने जीवन व्यतीत कर दिया! उसे अपने प्रति तिरस्कार हो उठा। इस नराधम को शिक्षा देने के लिए वह आतुर हो उठा।

'कोई है? यह तो मैं हूं—काक। कोई है?' उत्तर में इन्हीं शब्द की प्रतिध्वनि सुनाइ पड़ी। सभी घबराकर कहीं छिप गए थे।

'हे भोलानाथ! सोरठ के स्वामी की यह दशा? अंबा मां तू बैठी-बैठी क्या देख रही है? क्या यही है तुम्हारा न्याय?'

वहाँ और अधिक रुकना उचित नहीं लगा। वह कुँअरों पर एक दृष्टि डालकर श्मशान से भी अधिक भयंकर कमरे से अन्दर के कमरे में गया। वहाँ भी कोई नहीं था। जयसिंहदेव आ पहुंचे थे और राणक को भी वे ही उठा ले गए इसमें कोई सन्देह न रहा। नहीं तो कुँअरों को यों मरा छोड़कर देवड़ी जाने वाली नहीं थी। देवड़ी को खोजे? जयसिंहदेव उसे यहीं रहने दें इतने भोले नहीं थे।

ध्यान से देखने पर एक स्थान पर उसे रक्त से सनी हुई नंगी तलवार दिखाई पड़ी। वह सीधी पड़ी हुई थी अतः रक्त की बूंदें टपकती स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। वहाँ रक्त का गड़हा बन गया था। बाहर निकलकर आगे के कमरे में उसने एक अनुचर मरा पड़ा देखा। उसने ठीक से देखा—तलवार धरती पर घसीटी गई थी। तलवार द्वारा

किये हुए चिन्हों को ध्यानपूर्वक देखता हुआ बाहर निकला। वहाँ से उसने दूर एक आदमी को और मरा पड़ा देखा। काक ने जाकर उसे देखा और पहचाना। देशलदेव का सिर और धड़ अलग-अलग पड़े हुए थे।

'दुष्ट ! अच्छा हुआ तू भी मरा।' दांत पीसकर काक बोला। वहीं उसे एक सांडनी के बैठने के चिन्ह से दिखाई पड़े। 'लगता है जयसिंहदेव पलायन कर गये हैं। कहाँ गये होंगे ? देवड़ी को लेकर वंथली तो क्या मुंह लेकर जाएंगे। चलो मुख्य द्वार पर ही पता लगेगा।,

वह तुरन्त अस्तबल में गया और एक तेज घोड़े पर बैठकर मुख्य द्वार पर पहुँचा।

## २८

त्रिभुवनपाल के सैनिकों के आगमन से सोरठियों का अन्त आ पहुंचा। अब प्रश्न सामना करने का नहीं वरन् किस प्रकार सोरठियों को चुन-चुनकर मौत के घाट उतारना है यही रह गया था। 'रा' खेंगार की जय' या 'जय अम्बे' से 'जय सोमनाथ' का घोप तिगुना बढ़ गया था। कई बार तो पट्टणी आपस ही में भिड़ पड़ते थे और एक दो प्रहार करने के पश्चात् अपने सैनिक को पहचानते थे। सोरठी अद्भुत पराक्रम दिखा रहे थे। प्रत्येक सैनिक सभी दिशाओं में जाकर वेग से शत्रु को को ठिकाने लगा रहा था। कभी-कभी लेटे-लेटे ही कोई सोरठी सैनिक तनिक ऊंचा होकर पट्टणी सैनिक के पांव काट डालता था। इस प्रकार जहाँ-तहाँ शवों के ढेर लग गये।

लड़ते-लड़ते ही खेंगार ने पट्टणियों की नई सेना को आते देखा फलस्वरूप उसकी भुजाओं में विनाशकारी उत्साह आ गया। उसके अंग-

अंग से रुधिर बह रहा था। कई बार वह हाथ पलट चुका था, कई बार गिरकर खड़ा हो गया था। उसकी वीरता चरम सीमा पार कर गई वह चेतना खोने लगा था। किन्तु उसके हाथ न रुके। उसमें एक ही इच्छा रह गई थी—विनाश करने की। उसका मस्तिष्क और किसी ओर काम न कर रहा था। उसे लगा मानो किसी विशाल काले बर्तन में मनुष्य उबल रहे हों। उसे लगने लगा मानो अन्धकार मथा जा रहा हो, शस्त्रधारी पुरुष उसमें ऊपर-नीचे हो रहे हों और यह सब वर्तुलाकार चक्कर काट रहा हो। इस वर्तुलाकार प्रवृत्ति का वह स्वयं मध्यबिन्दु है जसे वह घूमता वैसे ही और सब घूमते।

यह सब क्या कर रहे थे यह उसे स्मरण नहीं रहा। सब घूम नही रहे थे वरन् चक्राकार नाच रहे थे। सभी पर मस्ती छा गई है। किसी को किसी की चिन्ता नहीं रह गई। वह स्वयं सबसे अधिक नाच रहा है और 'जय अम्बे! जय अम्बे!' पुकार रहा है। उसके कितने हाथ हैं यह वह भूल गया परन्तु उसके हाथ और धड़ बराबर घूम रहे थे।

धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क से अन्धकार हट गया। उसे लाल और पीले मेघ दृष्टिगोचर होने लगे। सब रंग-बिरंगे मेघ ऊंचे-नीचे होकर नृत्य करने लगे। कभी-कभी, रह-रहकर श्वेत बिजली भी चमक उठती थी। सभी कुछ घूम रहा था वह स्वयं भी मानो इन मेघों पर नाच रहा था। वह धरती पर पाँव रखता हैं या नहीं, बिलकुल भूल गया।

अब मेघ रक्तवर्ण हो गये, गहरे हो गये; उसे मात्र लाल रंग ही दिखाई पड़ने लगा वह लाल रंग नाचता ही जा रहा था। उसमें श्याम मेघ भी आने लगे, किन्तु वह तो नाचता ही गया। उसके कानों में धड़ाने का—बिजली के ककाड़े सा शब्द गूंजता रहा। उसे कोई परिचित सा स्वर 'जय अम्बे' कहता हुआ सुनाई पड़ा। उसे हंसी आ गई।

एकाएक लाल मेघों वातावरण में श्वेत नारी मूर्ति दिखाई पड़ी। उसने उसे पहचाना। वह उससे बहुत परिचित थी। वह उसकी प्राण थी। पहचाना वह उसकी राणक-सती थी! यह कहाँ से आई, किस प्रकार आई, उसे यह आश्चर्य होने लगा। वह सती थी। उसकी विशाल आँखें गर्व से देख रही थीं। 'सती की जय!' 'जय अम्बे!' वह बोल उठा। स्वर बहुत दूर से आता सुनाई पड़ा। किन्तु वह तो नाचता ही गया।

राणक का गौर वर्ण म्लान होने लगा, रक्तवर्ण मेघ धूमिल से श्याम वर्ण होने लगे। वह घूर-घूर कर देखने लगा और नाचता ही गया वह 'जय अम्बे' करने लगा किन्तु गले में जैसे कुछ अटक गया। उसने खखारा और बोल उठा—'सती की जय!'

एकाएक मेघ और मूर्ति—सम्पूर्ण दृश्य डाँवाडोल होने लगा, ऊँचा-नीचा होने लगा। वह उसे ठीक करने आगे बढ़ा तो वह पुनः श्यामवर्ण का हो गया। एकाएक कुछ हुआ और सब कुछ गोल-गोल घूमने लगा। वह चिल्लाने का प्रयत्न करने लगा किन्तु चिल्ला नहीं सका—अंधकार छा गया।

खेंगार धरती पर गिर पड़ा। कुछ देर पश्चात उसे चेत हुआ और वह उठने लगा। एक रक्तिम बिजली फिर कड़की और अंधकार छा गया। वह फिर गिर पड़ा—दो-चार शवों की शय्या पर। उसके मुंह से रक्त निकला और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

इस प्रकार विश्वासघात का भोग बनकर जुनागढ़ का अन्तिम स्वतन्त्र रा' गिरा। चूड़ासमा कुल का यह मुकुटमणि मध्यकालीन गुजरात की वीरता का अप्रतिम प्रतिनिधि तो था ही, किन्तु उसकी सहृदयता और स्मृतियाँ भी शताब्दियों से लोक हृदय में बसी हुई थीं। उसका औदार्य न कभी समाप्त हुआ और न कभी बदला, उसका सौर्य वर्षों के प्रयत्न के पश्चात् भी पाटण की सर्वभक्षी सत्ता से न कभी कम हुआ और

न पीछे हटा; उसका गर्व, जिसने निर्धनता, निःसहायता और विपत्तियों में भी सोरठ का मान और महत्व बनाए रखा, उसकी गिरनार के समान अडिग टेक जिसने असीम कठिनाइयों में भी उसके चरित्र को निष्कलंक बनाए रखा, उसकी स्वदेश के लिए लगन और उसका स्वातांत्र्य प्रेम जिन्हें जीवन को विशुद्ध रखने के लिए उसने आपत्तियों के यज्ञ में होम दिया, यह सब उसे मध्यकालीन हिन्दुओं की वीर गाथाओं में अग्रगण्य स्थान देते हैं। राजपूताना के राजपूत वीरों में मेवाड़ के शूरवीर महारथियों में उसकी बराबरी करने वाला सम्भव है कोई मिल जाय, किन्तु उसे कोई भुला नहीं सकता। करुण भव्यता में उसकी जोड़ी ढूंढनी हो तो सहस्त्रों वर्षो की इसिहासयात्रा करके, भारत के धुंधले जीवनकाल में वीर श्रेष्ठ, दानियों में दानवीर, अद्वितीय टेक वाले, पाप सृष्टि में भी पुण्यधाम के समान, निष्ठुर माता से लेकर अन्यायी गुरु तक सब की अनुदाता द्वारा रचे हुए प्रतिकूल संयोगों से निरंतर संग्राम करते हुए दानवीर कुन्ती पुत्र महारिशी कर्ण तक जाना होगा। खेंगार के साथ जूनागढ़ की टेक गई, सोरठ का स्वातान्त्र्य गया ; मात्र शौर्य के बल पर निर्मित सत्ता की भावना गई—और इनके साथ अमर कीर्ति भी ! वह सिर धुनती प्रजा और सती राणक को छोड़ गया—

धीमे-धीमे 'जय अम्बे' की ध्वनि क्षीण हो गई और थोड़ी देर पश्चात् तो मात्र नाम ही को सुनाई पड़ने लगो। कई बार तो 'जय सोमनाथ' का घोष करते हुए पट्टणी सैनिक आपस ही में भिड़ पड़ते थे, किन्तु इससे कि कहीं सोरठी कोई दाव न खो बैठें पट्टणियों ने युद्ध चालू ही रखा।

'महाराज ! लीलादेवी ! परशुराम ! त्रिभुवनपाल ! जगदेव ! सभी हो न ? पट्टणियों ने विजय प्राप्त की है। बोलो 'जय सोमनाथ।'

'जय सोमनाथ' का घोष चारों ओर गूंज उठा। 'महेता जी, मैं हूं परशुराम।' 'मैं लीलादेवी' एक चबूतरे पर बैठीं हुई रानी का स्वर

आया । 'मैं जगदेव ।'

'भाभी !' एक कोने से त्रिभुवनपाल का स्वर आया । 'मैं जीवित हूँ किन्तु मेरे पांव में घाव लगा है । और मुझ पर तीन शव पड़े हुए हैं । घबराना मत ।'

'महाराज ! हम सब पट्टणी हैं ।' जीवित बचे हुए सैनिकों ने कहा ।

'किन्तु महाराज कहाँ हैं ?' परशुराम ने शंका से पूछा ।

'महाराज ! महाराज !' मुंजाल ने जोर से पुकारा ।

'और काक कहाँ है ?' लीलादेवी ने पूछा ।

'काक ! काक ! परशुराम ने काक को पुकारा ।

'जाओ मशालें ले आओ ।' मुंजाल महेता ने आज्ञा दी ।

कुछ सैनिक मशाले लाने के लिए दौड़ पड़े । इतने में भूमि पर पड़े हुए एक सोरठी सैनिक ने आधा उठकर तलवार से मुंजाल महेता पर प्रहार किया और बोला, 'जय अम्बे !' दूसरे ही पल महाअमात्य ने तलवार से उसे ठिकाने लगा दिया और हँसकर बोले 'जय सोमनाथ ।' यह अच्छी रही । मरते मरते मुझे भी साथ ले जाना चाहता था । घबरओ मत, थोड़ी ही लगी है । मैं उस चबूतरे पर बैठता हूँ ।'

इतने में राजमहल के चौक के सामने के एक घर की खिड़की में से आग की लपटें निकलीं । थोड़ी देर के पश्चात् घर के छप्पर से लपटें निकलने लगीं । चारों ओर लाल प्रकाश फैल गया । किसी ने घर में आग लगा दी थी । उस घर के जलने से तुरंत दूसरा भी जल उठा और चारों ओर तीव्र प्रकाश छा गया । उस प्रकाश में रणक्षेत्र भयंकर दिखाई पड़ रहा था । सात सौ आठ सौ शव एक दूसरे के ऊपर अस्त व्यस्त पड़े हुए थे । रह रह कर चीत्कारें सुनाई पड़ती थीं । रुधिर से लिप्त लगभग दो सौ पट्टणी सैनिक एक साथ धीमे-धीमे इस प्रकार चले आ रहे थे मानों प्रेतलोक की यात्रा से लौट रहे हों । अनुभवी

वृद्ध योद्धा भी इस दृश्य को देख कर कांप उठे।

'परशुराम! उठो। जल की व्यवस्था करो। किसी ने नगर में आग लगा दी है।' मुंजाल महेता ने पांव पर पट्टी बांधते हुए कहा।

परशुराम ने अनाहत सैनिकों को बावड़ी की ओर भेजा। घरों में छिपी हुई स्त्रियाँ और बच्चे घबराकर, कोलाहल करते हुए घरों से बाहर निकले। मुंजाल महेता लंगड़ाते लंगड़ाते उधर गए, कोई मत घबराओ जूनागढ में अब जयसिंहदेव सोलंकी का राज्य है। सब निर्भय हो जाओ। चलो, आग बुझाओ। परशुराम तुम आग बुझाओ। परमार तू मशालें ला। जल्दी कर और महारा और काक को खोजना आरंभ कर।

एक दम चुपचाप आज्ञाओं का पालन होना आरंभ हो गया स्त्रियाँ घरों में से पानी लाने लगीं, पट्टणी सैनिक बावड़ी से पानी लाने लगे और इस प्रकार आग बुझाने का प्रयत्न होने लगा। नगर के रहे सहे सैनिक भी आग के भय स आ गएं। पट्टणियों ने तुरंत उन्हें पकड़ पकड़कर बांधना आरंभ किया।

इतने में खेमा नायक मशालें लेकर आ पहुँचा।

'कौन खेमा?' मुंजाल महेता बोले, 'तू कहां से आ गया?'

'मैं मुख्य द्वार पर पहरा दे रहा था।'

तू और परमार इन शवों को देखो। जीते और मरे हुओं को अलग करो। सैनिकों! चलो, जल्दी करो। महाराज और काक दोनों नहीं मिल रहे हैं। परमार! शीघ्रता करो। मुंजाल ने कहा।'

'महाराज एक बात कहूं?' खेमा ने मुंजाल के निकट आकर धीमें से कान में कहा—'दोनों में से एक की भी खोज करने की आवश्यकता नही।'

'क्यों?'

-महाराज नगर के बाहर गए हैं और मुझे आपसे कहने को कह

गए हैं कि वह वंथली गए हैं।'

'वंथली ! किसलिए ?'

'यह मुझे नहीं मालूम।'

'और काक !'

'भटराज घोड़े पर बैठकर उनके पीछे गये है।'

मंजाल चकित हो गया—'क्या दोनों साथ गये ?'

'नहीं बापू ! पहले महाराज गये।'

'घोड़े पर ?'

'नहीं सांडनी पर।'

'कितने आदमी थे ?'

खेमा तनिक सकुचाया।

'घबरा मत, जो हो सो सच-सच कह दे।'

'एक भूत था और एक अचेत स्त्री भी थी।'

मुंजाल महेता की आँखें चमकने लगीं।

'खेमा ! तू एक साँडनी तैयार कर, मैं अभी आता हूं मुंजाल ने धीरे से कहा और फिर जोर से परशुराम को आज्ञा दी, 'परशुराम ! महाराज वंथली गये हैं। मैं भी जाता हूँ। तुम आग बुझाकर जूनागढ़ पर अधिकार करो। मैं प्रातःकाल लौट आऊंगा। ध्यान रहे, सोरठी धोखा न कर जाएं। लीलादेवी ! इधर आए तो।' मुंजाल ने कहा।

लीलादेवी मुंजास के निकट आई मुंजाल ने धीरे से कहा—'आप मेरे साथ चलिए।'

रानी समझ गई और मुंजाल के साथ जाने के लिए तैयार हो गई। मुंजाल और रानी धीरे-धीरे चलकर मुख्यद्वार पर पहुंचे। वहाँ सांडनी तैयार थी। दोनों उस पर सवार हो गये।

'खेमा ! महाराज किस मार्ग से गये हैं ?'

'उस मार्ग से।'

'यह मार्ग कहाँ जाता है ?'

'मैंने यहां के लोगों से पूछा हैं। वह कहते हैं कि यह मार्ग वढ़वाल को जाता हैं।'

'मुझे वंथली ले जा सके ऐसा व्यक्ति दे'

'महाराज। सांडनी वाला सोरठो हैं किन्तु हमारा विश्वासी है। यह सब मार्ग जानता है।'

'अच्छा तो चल, देखता हूँ,' मुंजाल ने कहा। साँडनी चली।

नगर के बाहर निकलने पर मुंजाल ने धीमे स्वर में रानी से कहा—'बहन ! शिकार हाथ से निकल गया।'

'कैसे ?'

'महाराज राणक को लेकर चल दिये।'

'अच्छा ?' तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

'हां, परन्तु चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। मैं उन्हें पाताल में से भी खोज निकालूंगा। अभी तो वंथली जाकर मीनलदेवी को सूचना देनी चाहिए। महाराज के जाने की बात को ढंकी रखने की भी व्यवस्था करनी हैं।'

'महेता जी ! कब तक आप इन लोगों के पाप ढांपते रहेंगे।'

'जब तक जीवित हूँ। मैं जैसा भी हूँ, हूँ तो पाटण का सेवक न।' हँसकर मुजाल ने कहा।'

## २९

महाराज की आज्ञा से हमीर ने जितना बन सका उतने वेग से सांडनी को भगाया। उसके होश उड़े हुए थे, जूनागढ़ का पतन, खेंगार

ग्रौर उसके स्वामी देशलदेव की दुर्दशा, जयसिंहदेव जैसे महाप्रतापी महाराज का सान्निध्य, ग्रौर बाबरा जैसे ग्रमानुषी ग्रौर भयंकर प्राणी के संग से वह इतना घबरा गया था कि बिना पीछे देखे बिना हाँके ही गया। प्रातःकाल होते ही ग्रचेत राणक को जयसिंहदेव को सौंपकर बाबरा सांडनी पर पीछे मुंह, नीचा करके, पड़ गया। कोई बावरा के विषय में जान न सके इसलिए दिन में उसे सदा सबसे दूर ही रखा जाता था। किन्तु यदि साथ में लेना ही पड़ता था तो वह सिर नीचा करके पड़ा रहता था। प्रातःकाल होते ही एक छोटे गांव के सामने सांडनी खड़ी करके सब एक वृक्ष के नीचे उतरे। हमीर महाराज के लिए थोड़ा बहुत भोजन बनाने लगा ग्रौर महाराज पानी छिड़क कर राणक की मूर्छा भंग करने का प्रयास करने में लगे। बड़ी कठिनाई से राणक को चेतना लौटी। जैसे ही उसकी चेतना लौटीं। वैसे ही वह उठकर दूर जा बैठी ग्रौर हाथों से सिर पकड़ कर रात्रि की भयंकर घटनालों का स्मरण करने लगी। उसका मुख कुम्हला गया था।

'मुझे कहाँ ले जा रहे हो ?' उसने भावहीन स्वर में पूछा।

'वढ़वाल, वहाँ हमारा ब्याह होगा।'

'क्यों व्यर्थमें हाथ-पांव मार रहे हो ?'

'क्यों ?'

जहाँ भी ले जाग्रोगे वहाँ मेरा तो एक ही मार्ग है।'

'कौनसा ?'

'मेरे रा' का।' उसकी ग्राँखों में ग्राँसू नहीं थे किन्तु उनसे भी ग्रधिक शोकदर्शक शुष्कता थी।

'राणक, उतावली मत बन। वढ़वाण पहुंचने पर हम निश्चिन्त होकर बातें करेंगे।'

राणक ने उत्तर नहीं दिया। इसके पश्चात् वह मौन ही रही उसने भोजन करना ग्रस्वीकार कर दिया। वह मौन होकर सांडनी पर

चढ़ी और हमीर ने सांडनी हांक दी। थोड़ी ही देर पश्चात् पीछे से घोड़े की टाप का-सा शब्द सुनाई पड़ा। महाराज ने हमीर को सांडनी खड़ी करने को आज्ञा दी। सांडनी खड़ी हो गई। राजा कान लगा कर सुनने लगे। किन्तु घोड़ा इधर ही आ रहा है या नहीं यह न समझ पड़ा। थोड़ी देर पश्चात् टाप बंद हो गई। कोई निरर्थक शब्द होगा ऐसा मानकर महाराज ने सांड़नी को फिर भगाने की आज्ञा दी।

सांयकाल वह फिर विश्राम करने के लिए रुक गए। मार्ग में थोड़ी थोड़ी दूरी पर पट्टणी चौकियां थी। पाटण के राजा का सन्देश ले जा रहा हूँ, यह बहाना बना देने पर कोई नहीं रोकता था। रात को चन्द्रमा के प्रकाश में भी उन्होंने यात्रा जारी रखी। कभी-कभी राजा को घोड़े की टाप सुनाई पड़ती थी किन्तु उन्होंने चिंता नहीं की। चन्द्रमा के अस्त होते-होते वे वढ़वाण आ पहुंचे। महाराज की आज्ञा से हमीर ने द्वार से चौकीदार को बुलाया।

'किससे काम है ?'

'विजयधवल गढ़रक्षक को बुला।' महाराज ने आज्ञा दी।

'तुम कौन हो ?'

'जयसिंहदेव सोलंकी।'

चौकीदार स्तब्ध होकर बिना कुछ बोले गढ़रक्षक को बुलाने चला गया। थोड़ी ही देर पश्चात् मशालें लेकर विजयधवल गढ़ रक्षक आ पहुंचा।

'गढ़रक्षक! द्वारखोल। कब तक मुझे यहाँ खड़ा रखेगा ?' महाराज चिल्लाए। विजयधवल ने खिड़की खोलकर देखा और महाराज को देखकर चकित हो गया। क्या कहे उसे कुछ सूझा नहीं। उसने एकदम द्वार खोले।

'हमें राजगढ़ में ले चल, और ध्यान रहे, मैं यहाँ आया हूँ यह बात कोई न जाने।'

'जो आज्ञा।' कहता हुआ विजयधवल आगे-आगे चल पड़ा।

राजगढ़ समीप ही था। नया ही बना था। अधिकतर लोग युद्ध में चले गये थे। इस समय उसमें कोई नहीं था। अँधेरी रात में छोटे पर्वत के समान वह स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

'अन्नदाता!' विजयधवल किसी प्रकार अपनी उत्सुकता न रोक सका।

'क्या है?'

'देवी कैसी हैं?'

'अच्छी हैं।' तिरस्कार पूर्ण उत्तर मिला। विजयधवल आगे पूछने का साहस नहीं कर सका।

'विजयधवल! रा' को मारकर जूनागढ़ ले लिया है।'

'हैं!' आश्चर्यचकित होकर गढ़रक्षक ने इस विचित्र ढंग से पदार्पण करने वाले राजा के सामने देखते हुए कहा।

'हाँ।' राजा ने कहा।

राजगढ़ आ गया और गढ़रक्षक के आदमियों ने द्वार खोल दिए।

'हमीर! देवी को अन्दर ले जाकर बिठा, मैं अभी आता हूँ,' महाराज ने आज्ञा दी।

देवड़ी सांडनी से उतरकर मौन होकर राजा के पीछे चल रही थी। उसके निस्तेज मुख पर एक प्रकार की निश्चलता छाई हुई थी। वह ऐसे चल रही थी मानों उसे कोई घसीट रहा हो। राजा की आज्ञा सुनकर वह यंत्रवत् हमीर के साथ चबूतरे पर चढ़कर अंदर चलीग यी। साथ में एक मसालची अंदर गया। राजा गढ़रक्षक की ओर घूमे। 'गढ़रक्षक!

'अन्नदाता!'

'यहाँ कोई ब्राह्मण है?'

'महाराज......।'

'राजगढ़ का पुजारी है?' महाराज ने अधीर होकर कहा।

'अन्नदाता !' हाथ जोड़कर गढ़रक्षक बोला, 'यहाँ कोई नहीं है, इसलिए वह सोने के लिए गाँव में जाता है। देखता हूँ, उसका कोई शिष्य हो तो......।'

मानो गढ़रक्षक के वाक्य का उत्तर देने के लिए दूर से वेदोच्चार करती हुई एक ध्वनि सुनाई पड़ी......।

चत्वारि शृंगात्रयोऽस्यपादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तसोरिऽस्य।

'अवश्य कोई ब्राह्मण है।' राजा ने कहा। गढ़रक्षक दौड़कर उस ध्वनि की ओर गया और थोड़ी देर पश्चात् एक लम्बे लड़के को साथ लेकर आया। राजा अधीर होकर खड़े रहे।

'अन्नदाता ! यह तो लड़का है।'

नवागन्तुक लगभग पन्द्रह वर्ष का लड़का था। उसने एक छोटी-सी धोती पहन रखी थी और शरीर पर भस्म लगा रखी थी। उसके भाल पर त्रिपुंड था। गढ़रक्षक के शब्द सुनकर वह अभिमान से हँस पड़ा, 'लड़का लगता हूँ तो मुझे यहां लाए किसलिए हो ?' और किसी के न समझ में आने पर भी आत्मसंतोष के लिए बोला—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

'छोकरे !' अधीर राजा ने पूछा, 'कैसा ब्राह्मण है ?'

'कान्यकुब्ज।'

'कुछ आता-जाता है ?'

वह लड़का अभिमान से हँस पड़ा, 'काम क्या है ?'

'गढ़रक्षक ! तुम जाओ।' राजा ने विजयधवल को आज्ञा दी, 'प्रातः काल होने पर आ जाना।'

गढ़रक्षक स्पष्ट समझ गया था कि कोई विचित्र प्रसंग आ गया है, किन्तु राजा की आज्ञा का अनादर तो किया नहीं जा सकता था, इच्छा न होते हुए भी विदा हुआ।

'ब्राह्मण ! तुझे ब्याह कराना आता है ?'

'आप ब्रह्म या गंधर्व, पिशाच या राक्षसी, कौनसी विधि से ब्याह कराना चाहते हैं, बताइए !'

'कोई भी विधि हो, मतलब विवाह से है।'

'अन्नदाता !' शांति से लड़के ने कहा, 'इतने उतावले क्यों हो रहे हैं ? आप कौन हैं यह तो बताइए।'

'मैं कोई भी होऊं तू चल।'

'चल रहा हूँ। किन्तु जितनी जल्दी आपको ब्याह करने की है उतनी ही जल्दी मुझे आप से परिचय प्राप्त करने की है।' लड़के ने शान्ति से कहा।

'क्यों ?' लड़के के बोलने के ढंग से विस्मित होकर राजा ने कहा।

'मैं बिना योग्य दक्षिणा पाए आपके समान शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करता। आप जल्दी में हैं और कोई बड़े आदमी हैं।'

तुझे क्या चाहिए ? क्रोधित होकर पैर पटकते हुए महाराज बोले।

'आप कौन हैं ?' मुस्कराकर शांति से लड़के ने पूछा।

'पाटरण का जयसिंहदेव सोलंकी' कुढ़ते हुए राजा बोले। 'मुझे जानता नहीं ?'

'ओहो पृथ्वीपति हैं !' लड़के ने मुस्कराकर हाथ जोड़े, 'मेरे धन्यभाग, चलिए क्या करना है ?'

'बोल तुझे क्या चाहिए ?'

'अब मुझे दक्षिणा की चिन्ता नहीं। परम भट्टारक जयसिंहदेव महाराज के चरणों की तो रज हूँ मैं, चलिए।' कहकर वह लड़का तनिक मुस्कराकर आगे बढ़ा।

'तेरा नाम क्या है ?' राजा ने पूछा।

'भाव।' लड़के ने आत्मविश्वास के साथ कहा। राजा ने बहुत ध्यान नहीं दिया उन्हें क्या मालूम कि कितने वर्षों पश्चात् और किस प्रकार भविष्य में यह नाम उनके कानों से फिर टकराएगा ? राजा को यह लड़का बहुत विचित्र लगा और उसकी छोटी उम्र देखते हुए उसके

'अन्नदाता !' हाथ जोड़कर गढ़रक्षक बोला, 'यहाँ कोई नहीं है, इसलिए वह सोने के लिए गाँव में जाता है। देखता हूँ, उसका कोई शिष्य हो तो......।'

मानो गढ़रक्षक के वाक्य का उत्तर देने के लिए दूर से वेदोच्चार करती हुई एक ध्वनि सुनाई पड़ी......।

चत्वारि शृंगात्रयोऽस्यपादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तसोरिऽस्य ।

'अवश्य कोई ब्राह्मण है।' राजा ने कहा। गढ़रक्षक दौड़कर उस ध्वनि की ओर गया और थोड़ी देर पश्चात् एक लम्बे लड़के को साथ लेकर आया। राजा अधीर होकर खड़े रहे।

'अन्नदाता ! यह तो लड़का है।'

नवागन्तुक लगभग पन्द्रह वर्ष का लड़का था। उसने एक छोटी-सी धोती पहन रखी थी और शरीर पर भस्म लगा रखी थी। उसके भाल पर त्रिपुंड था। गढ़रक्षक के शब्द सुनकर वह अभिमान से हँस पड़ा, 'लड़का लगता हूँ तो मुझे यहां लाए किसलिए हो ?' और किसी के न समझ में आने पर भी आत्मसंतोष के लिए बोला—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ।

'छोकरे !' अधीर राजा ने पूछा, 'कैसा ब्राह्मण है ?'

'कान्यकुब्ज।'

'कुछ आता-जाता है ?'

वह लड़का अभिमान से हँस पड़ा, 'काम क्या है ?'

'गढ़रक्षक ! तुम जाओ।' राजा ने विजयधवल को आज्ञा दी, 'प्रातःकाल होने पर आ जाना।'

गढ़रक्षक स्पष्ट समझ गया था कि कोई विचित्र प्रसंग आ गया है, किन्तु राजा की आज्ञा का अनादर तो किया नहीं जा सकता था, इच्छा न होते हुए भी विदा हुआ।

'ब्राह्मण ! तुझे ब्याह कराना आता है ?'

'आप ब्रह्म या गंधर्व, पिशाच या राक्षसी, कौनसी विधि से ब्याह कराना चाहते हैं, बताइए !'

'कोई भी विधि हो, मतलब विवाह से है।'

'अन्नदाता !' शांति से लड़के ने कहा, 'इतने उतावले क्यों हो रहे हैं ? आप कौन हैं यह तो बताइए।'

'मैं कोई भी होऊं तू चल।'

'चल रहा हूँ। किन्तु जितनी जल्दी आपको ब्याह करने की है उतनी ही जल्दी मुझे आप से परिचय प्राप्त करने की है।' लड़के ने शान्ति से कहा।

'क्यों ?' लड़के के बोलने के ढंग से विस्मित होकर राजा ने कहा।

'मैं बिना योग्य दक्षिणा पाए आपके समान शीघ्रता में कोई कार्य नहीं करता। आप जल्दी में हैं और कोई बड़े आदमी हैं।'

तुझे क्या चाहिए ? क्रोधित होकर पैर पटकते हुए महाराज बोले।

'आप कौन हैं ?' मुस्कराकर शांति से लड़के ने पूछा।

'पाटण का जयसिंहदेव सोलंकी' कुढ़ते हुए राजा बोले। 'मुझे जानता नहीं ?'

'ओहो पृथ्वीपति हैं !' लड़के ने मुस्कराकर हाथ जोड़े, 'मेरे धन्यभाग, चलिए क्या करना है ?'

'बोल तुझे क्या चाहिए ?'

'अब मुझे दक्षिणा की चिन्ता नहीं। परम भट्टारक जयसिंहदेव महाराज के चरणों की तो रज हूँ मैं, चलिए।' कहकर वह लड़का तनिक मुस्कराकर आगे बढ़ा।

'तेरा नाम क्या है ?' राजा ने पूछा।

'भाव।' लड़के ने आत्मविश्वास के साथ कहा। राजा ने बहुत ध्यान नहीं दिया उन्हें क्या मालूम कि कितने वर्षों पश्चात् और किस प्रकार भविष्य में यह नाम उनके कानों से फिर टकराएगा ? राजा को यह लड़का बहुत विचित्र लगा और उसकी छोटी उम्र देखते हुए उसके

बोलने का ढंग भी असाधारण लगा। परन्तु इस लड़के के विषय में विचार करने का उनको अवकाश नहीं था। उन्होंने लड़के को अन्दर आने की आज्ञा दी। महाराज अन्दर के कमरे में गये। प्रातःकाल होने आया था अतएव महल में थोड़ा-बहुत प्रकाश फैल गया था। उस प्रकाश में उन्होंने राणक को एक कोने में बैठा हुआ देखा। कुछ दूर पर हमीर खड़ा हुआ था।

'हमीर! बाहर जा और सांडनी संभाल।'

'जो आज्ञा।।' हमीर वहाँ से चला गया। जैसे ही वह गया महाराज ने तुरन्त द्वार बन्द कर दिया और अर्गला लगा दी। लड़का यह सब ध्यान से देख रहा था।

'देवड़ी!'

'परन्तु राणकदेवी ने उत्तर नहीं दिया।

'राणक!' जयसिंहदेव फिर गला खंखार कर बोले, 'यह ब्राह्मण तैयार है। चलो, अब विवाह कर लें।'

राणकदेवी ने झुका सिर ऊपर उठाया। उसकी म्लान आंखें राजा को देखने लगीं—'मुझे क्यों क्लेश पहुंचाते हो? मैं तो सोरठ के जीवन सर्वस्व के चले जाने पर वैसे ही मर गई हूं।'

'नहीं, राणक! जयसिंहदेव की पटरानी बनकर तू फिर सजीव हो जायगी।'

'जयसिंह, सुनो, खेंगार जैसे वीर चले जाने पर फिर भी तुम्हारा गर्व न गया। मेरे सोरठ का अजित रा' चला गया तो तुम कौन?' अधीर होकर राणक बोली।

'सारी पृथ्वी मुझे मानती है और आज तुझे भी मानना पड़ेगा।' गर्व से राजा ने उत्तर दिया।

'नीच राजा! मैंने अपना हृदय केवल एक ही पुरुष को दिया था, वह मर गया और मुझे और धरती दोनों को विधवा कर गया। धरती

चाहे तुझे स्वीकार कर ले, और जीते जी उसकी रहूँगी।'

'राणक ! धरती न कभी उसकी थी और न है। तू भी कभी उसकी न थी न है। उठ ! चल, इस ब्राह्मण को विलम्ब हो रहा है। ब्राह्मण, चल, तुझे जो करना हो करना आरम्भ कर।'

'सावधान !' देवड़ी ने कहा। उसके बैठते हुए स्वर में भी तनिक सत्ता प्रकट हुई। 'तू ब्राह्मण का पुत्र होकर यह अत्याचार खड़ा-खड़ा देख रहा है ?'

'देवी !' निःसीम शांति से भाव बोला, 'इतना हठ क्यों कर रही हो ? शास्त्र का वचन है कि जो देश जीतता है वह देशाधिपति की स्त्री भी जीत लेता है। आपसे विवाह करने का महाराज को अधिकार है। महाराज को वरमाला पहनाने का अधिकार आप···।'

राणकदेवी ने कानों पर हाथ रख लिया। मुख से क्षोभ टपक रहा था। 'मुझे क्या मालूम कि ऐसा घोर कलियुग आ गया है ? यह राजा और यह ब्राह्मण ! जाओ, चले जाओ ! अपना जला मुँह काला करो। मुझे क्यों सताते हो ?'

'राणकदेवी !' अधीर होकर राजा बोला, 'मैं जैसा हूँ, हूं। चल। कहकर उन्होंने हाथ लंबा किया। राणकदेवी ने अपना हाथ आँचल में छिपा लिया।

'हाथ ला।'

'सात जन्म तक सिर मारे तो भी इस हाथ का स्वामी तू नहीं बन सकेगा।' देवड़ी क्रोधित होकर बोली।

'देखता हूँ तू कैसे ना करती है ?' होंठ पीसते हुए राजा बोले। क्रोध से आंखों की पुतलियाँ बाहर निकल आईं। नथुने फूल उठे। कपाल पर बीच की नस उभर आई। 'इस समय तू मर भी जायगी तो मेरी ही स्त्री होकर मरेगी। चल, हाथ ला।' राजा गरज उठे और अपना हाथ राणक की ओर बढ़ाया। भाव पाणिग्रहण के मन्त्रोच्चार करने के

लिए तत्पर हुआ।

रांणक ने हाथ को और अधिक दृढ़ता से आंचल में छिपा लिया।

'ला, नहीं तो बाहों में भर कर उठा लूँगा। क्रोध में राजा ने कहा।

'मुझे छूने का पाप करेगा? दुष्ट! तू जीते जी नरक में जायगा। राणक ने होंठ काट लिए।

एकाएक उसका मुख वैसा ही शववत् और निश्चेतन हो गया जैसा भविष्यवाणी करते समय हो गया था। उसकी आंखों की पुतलियों के वर्ण में परिवर्तन हो गया और उनमें से एक विचित्र ज्योति प्रकट हुई। भाव यह परिवर्तन देखकर चकित हो गया, भयभीत राजा तनिक पीछे हट गए।

शीघ्र ही राजा का क्रोध फिर फट पड़ा। उसके हृदय में से विषमता, क्रूरता, आवेश, क्रोध, सबकी मिलकर एक विशाल ज्वाला निकली। कोई उनका विरोध करे यह उनसे सहन नहीं होता था और इस समय हठी स्त्री के हठ को चूर करने की प्रबल इच्छा से वह भला-बुरा सब भूल गए।

'तू—तू मेरा विरोध करती है?' उन्होंने दांत पीसे। उनकी आँखें लाल हो गईं। उन्होंने क्रूरता से हाथ उठाया।

'शुष्कता से राणक ने उत्तर दिया, 'हाँ।'

राजा का हाथ राणक को जोर से धरती पर गिरा देने के आवेश का अनुभव मात्र करके काँपने लगा।

'सूर्योदय हो रहा था पूर्व की जाली में से एक रक्त की चमकती धारा के समान लाल किरण कमरे के मध्य में आई। बाहर से किसी ने बन्द द्वार पर ठोकर मारी।

'द्वार खोलो!' एक प्रचंड क्रोध भर स्वर सुनाई पड़ा।

## ३०

अचानक आने वाली इस ललकार से जयसिंहदेव चौंके और राणक को मारने के लिए उठाया हुआ हाथ अनायास ही तलवार की मूठ पर चला गया। उनकी हिंसकवृत्ति जाग उठी और वे द्वार की ओर घूमे।

'अन्नदाता ! भले ही सब चिल्लाएं, आप अपना काम कीजिए न !' भाव ने राजा को सलाह दी, 'आप क्यों व्यर्थ में समय गँवाते हैं ?'

महाराज को यह सलाह अच्छी लगी और वे फिर राणक की ओर घूमे। बाहर आगन्तुक की अधीरता बढ़ती जा रही थी। वह जोर से दरवाजा तोड़ने का प्रयत्न करने लगा। एक-दो-तीन-चार लातों के निरंतर प्रहार से द्वार की अर्गला ढीली हो गई और राजा ने राणक को स्पर्श करने से पहले ही पांचवीं लात से अर्गला के दो टुकड़े हो गए झटके से द्वार खुल पड़ा। महाराज क्रोधित होकर घूमे। द्वार में रौद्र रूप धारण किए हुए और हाथ में नंगी तलवार लेकर काक खड़ा हुआ था।

क्रोध से काक का मुँह लाल हो रहा था। उसकी आंखें ऐसी थीं मानो एक ही दृष्टि में सबको भस्म कर दें। वह हांप रहा था परंतु नितान्त निरुद्वेग था।

'आप यहाँ ?' कटाक्ष करते हुए काक बोला, 'पाटण का स्वामी सेना को छोड़, शिविर त्याग कर चोर के समान देवड़ी को लेकर इस प्रकार भागता फिर रहा है ?' काक की दृष्टि भाव पर पड़ी। तू कौन है ?' ब्राह्मण है ? 'यहाँ क्या कर रहा है ?' क्या राजा का विवाह कराने आया है ?' काक तिरस्कार से मुस्करा दिया।

'तू क्यों आया ? चला जा। महाराज क्षुब्ध थे और उन्हें क्रोध

आ रहा था वह बड़ी कठिनाई से बोल सके ।

'घबराइए न, महाराज !' काक शांति से बोला, 'मैं यहाँ रहने नहीं आया हूँ, देवी के सती होने के पश्चात चला जाऊंगा ।'

'काक ! निर्लज्ज ! नमक हराम ! तूने मेरा पीछा किया है, क्यों ठहर ।' कहकर महाराज तलवार निकालकर प्रहार करने के लिए तत्पर हुए ।

'शान्त रहिए ।' काक बोला, 'आप स्वामी थे और हैं । आपके विरुद्ध मैं शस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहता किन्तु यदि आपकी नीयत देवड़ी से ब्याह करने की हो···तो...

'जो मेरी इच्छा होगी वही करूंगा ।'

'तभी तो करोगे जब में करने दूंगा ।'

'तू—तू है कौन ? मेरा दास······।'

'हाँ । इसलिए कहता हूँ । इस समय मेरी मानिए । मेरा रक्त खौल रहा है मैं कहीं कुछ का कुछ·········।' किन्तु उसके अधिक बोलने से पहले ही महाराज छलांग मारकर उस पर कूदे । काक सावधान था । महाराज की तलवार उससे टकराई और चिनगारियाँ निकल पड़ीं । दोनों ने अपनी तलवारें हटा लीं । राजा ने काक को घायल करने के लिए फिर तलवार उठाई ।

'जयसिंहदेव !' गर्जना के समान गम्भीर स्वर में काक बोला, 'क्या मरना चाहते हो ?'

उत्तर में राजा ने एक और प्रहार किया । काक ने एक ओर कूद कर प्रहार को व्यर्थ किया और राजा के फिर प्रहार करने के पहले ही वह उनके निकट जा पहुंचा । महाराज ने तलवार पीछे खींचकर उठाने के लिए जैसे ही झुकाई वैसे ही काक ने एकदम उनके निकट कलाई पकड़ कर मरोड़ दी । काक ने उनकी कलाई इतनी शीघ्रता से

पकड़ी और इतने जोर से मरोड़ी कि महाराज संभलें-संभलें उससे पहले तो उन्हें अपना हाथ कुहनी से टूटता सा लगा।

'तलवार छोड़ दीजिए···छोड़िए...छोड़िए।' कलाई मरोड़ते हुए वह बोला, 'नहीं तो अभी यह हाथ टूट जाएगा।'

राजा ने काक के मुख की ओर देखा। उसकी आँखों में गहनता थी और उन्हें ऐसा लगा मानो उनसे फूटती किरणें उन्हें जला रही हों। वे समझ गए कि काक इस समय न मान की ओर देखेगा न दया करेगा। राजा ने दाँत पीसकर तलवार छोड़ दी। काक ने उस पर अपना पाँव रखा ओर महाराज का हाथ छोड़ दिया।

'जयसिंहदेव! अब दूर जाकर बैठ जाओ। मैं देवड़ी को ले जा रहा हूं।

'तू—!' द्वेष से गर्दन हिलाते हुए महाराज बोले—'देखता हूँ कैसे ले जाता है।

'तो देखिये।' कहकर काक देवड़ी की ओर एक डग बढ़ा। देवड़ी खड़ी होने के लिये तनिक सीधी हो गई। महाराज ने उछलकर काक की दोनों बाहों से कमर पकड़ी ली। तलवार हाथ से निकल जाने पर महाराज यों मल्ल युद्ध प्रारम्भ करेंगे यह काक ने नहीं सोचा था। काक को क्रोध आ गया। उसने तलवार फेंक दी और पीछे लिपटे हुए महाराज को उलटे हाथ से पकड़ा। कुछ क्षण तक दोनों अडिग खड़े रहे। महाराज ने दबाव डाला। काक नीचे झुका। ऐसा लगा कि वह अभी भूमिसात् हो जायगा कि एकाएक काक ने पूरी शक्ति लगाकर पिछले हाथ से महाराज को पकड़कर उलटा कर दिया।

महाराज ने पशु जैसी चित्कार की। चित्कार करते समय उनका ध्यान कुछ हट गया और काक ने उन्हें उलटा करके, अपने शरीर से छुड़ाकर एक कोने में पटक दिया। महाराज जोर से धरती पर गिरे उनका मन भंग हो गया। वह उठे नहीं। काक ने महाराज की चीत्कार

सुन ली थी इसलिए वह द्वार की ओर देखता हुआ खड़ा हो गया। एकाएक जाने कहाँ से एक काला रौद्र स्वरूप कूदकर कमरे में आ गया।

'बाबरा ! इसे पकड़ ले।' राजा ने आज्ञा दी।

बाबरा काक पर कूदने के लिए घूमा ही था कि काक बोला, 'साव-धान बाबरा !' आगे बढ़ने से पहले सोच ले एक बार तो जीवित छोड़ दिया था किन्तु इस बार जीवित नहीं छोड़ूंगा।'

बाबरा ने भवों के लम्बे केशों को ऊंचा करके दृष्टि डालकर अपने विजेता को पहचाना। उसके पांव जहां थे वहीं रुक गए। उसकी आंखें भय से सफेद हो गईं। उसके काले मुख का भी रंग उड़ता दिखाई पड़ा।

'पकड़ इसे।' जयसिंहदेव ने आज्ञा दी।

उत्तर में भयभीत श्वान जिस प्रकार गुर्राता है वैसे ही गुर्राकर वह पीछे हट गया। नीचे का होंठ लटका रहने देकर वह एकटक काक की ओर देखने लगा। राजा यह परिवर्तन देखकर भयभीत हो गए।

काक हंस पड़ा। 'क्यों महाराज ! बहुत जोर आ रहा है ? और किसी को बुलाना है ? चलिये, उस कोने में बैठ जाइये।'

राजा ने आवेश में कोई उत्तर नहीं दिया और तिरस्कार से बाबरा की ओर देखा, 'तेरी मौत आई है क्या ?'

'महाराज ! पराई आशा रखने वाला सदा निराश ही होता है।' काक ने कहा।

राजा उसकी ओर देखे बिना ही द्वार की ओर जाने लगे। काक द्वार के बीच में जाकर खड़ा हो गया।

'महाराज ! इस समय यह सब रहने दीजिए। मैंने बाहर का द्वार बन्द कर दिया है और विजयधवल गढ़रक्षक को घायल करके एक कोठरी में बन्द कर दिया है। बुद्धिमान हो तो चुपचाप एक कोने में बैठ जाइये।'

महाराज मौन होकर द्वार के आगे खड़े रहे।

'चलिए बैठ जाइये।'

महाराज ने देखा कि अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया तो काक उन्हें जबरदस्ती बिठा देगा। वह चुपचाप दूर जाकर खड़े हो गए। बाबरा इधर-उधर देखता हुआ चला गया।

'ए छोकरे! यहाँ आ।'

'क्यों क्या है?' भाव दूर एक कोने में खड़ा हुआ था सो आगे आकर बोला।

'इधर आ।' काक ने डाँटते हुए स्वर से कहा। भाव आया।

'राजगढ़ का तलगृह कहाँ है?'

भाव ने जानबूझकर उत्तर नहीं दिया।

'सुनता है या नहीं?' काक ने पूछा।

'अन्दर की दूसरी कोठरी में से होकर जाना पड़ता है।'

'तू मार्ग जानता है।

'हां।'

'चल, बता।' भाव ने महाराज की ओर देखा।

'सुना की नहीं?' भाव का कान पकड़कर काक ने कहा।

'हाँ।' कान सहलाते-सहलाते भाव बोला।

'तो फिर चल काक महाराज के निकट गया, 'अन्नदाता! आगे चलिए।'

'कहाँ' क्रोध से कांपते हुए राजा ने पूछा।

'जहाँ मैं कहूँ वहाँ। उस तलगृह में।' महाराज ने चकित होकर काक को देखा। उसके मुख से भयंकर निश्चय टपक रहा था, चलिए।'

'क्यों?' राजा ने चारों ओर अपनी निःसहाय अवस्था का अनुभव करके पूछा।

'आमात्य और रानी के बिना अकेला राजा शोभा नहीं देता। थोड़े

समय के लिये अलग रहने पर ही देखिये आपने क्या-क्या कर डाला ? अब आप दो एक दिन के लिये इसी तलगृह में विश्राम करि। मैंने मुंजाल महेता और लीलादेवी को संदेशा भेज दिया है। दो-एक दिन में वह रा' का माथा लेकर राणकदेवी को चिता पर चढ़ाने के लिए आ पहुँचेंगे। फिर जो आपकी इच्छा हो कीजिएगा। अभी तो जो मैं कहता हूं वही करिये। आइये, पधारिये।'

महाराज ने काक के सामने हठ से देखा विरोध करने का विचार हुआ किन्तु उन्होंने सोचा इस समय विरोध करने से क्या लाभ !

'क्यों महाराज' पाँव नहीं उठते क्या ? मैं उठाऊं ? तनिक हाथ ऊंचा करके काक ने कहा।

महाराज ने एक तिरस्कार-भरी दृष्टि काक पर डाली और फिर दाँत पीसकर दिखाये मार्ग पर धीरे-धीरे चलने लगे।' चल, ब्राह्मण ! मार्ग दिखा,' काक ने भाव से कहा। भाव इस विचित्र और दुर्जय योद्धा से भयभीत हो गया था। वह चुपचाप आगे-आगे चलने लगा।

'देवी' तनिक बैठना। मैं अभी आया।' चलते-चलते काक ने राणकदेवी से कहा।

आगे भाव, पीछे महाराज और अन्त में काक इस प्रकार वह तीनों एक दो खण्ड पार करके अन्दर के भाग में गये। एक आधे अँधेरे खण्ड में वह आ पहुँचे।

'महाराज ! यह रहा तलगृह।' भाव बोला।

'पत्थर उठा।' काक बोला।

'मुझ अकेले से कैसे उठेगा ?'

'अन्नदाता, आप भी तनिक नीचे झुकिये, इससे प्रतिष्ठा नहीं चली जायगी।'

जयसिंहदेव ने गर्व से गर्दन हिलाई।

'अब भी आपने अपनी स्थिति नहीं पहचानी, क्यों ?' काक ने

कठोर स्वर में प्रश्न किया। 'मैं नीचे झुकूँ और आप कुछ गड़बड़ कर सकें, यही न ! चलिए।' कह कर काक ने महाराज की भुजा पकड़ी। आँखों में द्वेष और क्रोध की ज्वाला जलने पर भी उन्होंने झुककर काक पत्थर को उठाने में सहायता की। पत्थर के उठ जाने पर सीढ़ियों पर का द्वार दिखाई पड़ा।

'चल, द्वार खोल,' काक ने भाव को आज्ञा दी। द्वार खुलने पर अन्दर हवा की सरसराहट सुनाई पड़ी।

'तल गृह तो अच्छा है। पधारिए, अन्नदाता !' काक ने महाराज से कहा।

जयसिंहदेव ने अन्तिम बार काक की ओर देखा।

काक तू जानता है तेरे कृत्य तेरी क्या दशा बनाएँगे ?' द्वेष-भरे स्वर में राजा बोले।

'मैं आपको और अपने कृत्यों को भली भाँति जानता हूँ।' काक ने शाँति से कहा, 'मेरी चिंता मत कीजिये। चलिये।'

'तेरी चिन्ता करने को अब रह ही क्या गया है ?' तिरस्कार से राजा ने कहा, तेरी स्त्री-बच्चे भृगुकच्छ में भूखों मर रहे हैं और तुझे मैं यहाँ ठिकाने लगा ही दूँगा।'

'क्या ?' काक ने आँखें फाड़कर गरजते हुए पूछा।

राजा उदासीनता से तलगृह में उतरने लगे। काक की भवें तन गईं। उसने महाराज की ठोड़ी पर हाथ रखा।

'बोलो, क्या कहा ?'

'कुछ नहीं।' राजा ने उत्तर दिया। काक ने उनकी ठोड़ी पकड़ कर हिलाई।

'बोलो, क्या कहा ?'

'रेवापाल ने लाट में विद्रोह किया। तेरे स्त्री-बच्चे गढ़ में चले गए हैं और वहाँ अनाज कभी का समाप्त हो गया है। अब तक तो

वह कभी के मर भी गए होंगे।'

'कैसे जाना ?' काक गरज उठा।

'तेरा ही कोई सोमेश्वर कह गया था।'

'फिर आपने क्या किया ?' काक की आँखें फट गईं। उसके स्वस्थ मस्तिष्क से अपरिचित अन्धड़ उसके मन में खड़ा हो गया।

'कुछ नहीं। तू जाने और तेरा लाट जाने मुझे क्या मतलब है ?'

'नीच कृतघ्नी, तुम सोलंकियों के गर्भ से कैसे पैदा हो गए ?' सांप के मुख से निकलती हुई फूत्कार के समान फूत्कार करते हुए काक बोला, 'याद रखना यदि मेरी स्त्री और मेरे बच्चों को कुछ हो गया तो तुम्हारा चिह्न तक शेष नहीं रहने दूँगा।' भयंकर आंधी में बिजली के कड़ाके के साथ घोर गर्जना होने पर जैसा वातावरण हो जाता है वैसा ही वातावरण इस समय हो गया। महाराज की आँखों से भय प्रकट हुआ और वह तलगृह में उतर पड़े। काक ने भाव को भी उतरने की आज्ञा दी।

'मैं ?' भाव बोला, 'मैं क्यों ?'

'बाहर जाकर सच-झूठ बकते फिरता है क्या ?' और फिर महाराज की देख-भाल कौन करेगा !' चल उतर।'

'आदमी तुम जल्लाद हो।' बड़बड़ाता हुआ भाव तलगृह की सीढ़ियां उतरा।

'मैं कुछ ही देर में तुम्हारे खाने-पीने के लिए ले आता हूँ। मैं तुम्हें भूखों नहीं मारूँगा।' काक ने राजा को सुनाकर कहा।

काक ने सीढ़ियों का द्वार बन्द कर दिया, ऊपर पत्थर की दृढ़ता से जमा कर लौह शलाका लगा दी और फिर राणकदेवी के निकट गया।

## ३१

क्या महाराज ने जो कहा वह सत्य है ?' क्या वास्तव में भृगुकच्छ में विद्रोह हुआ ? क्या पट्टणी सेना कट मरी ? क्या रेवापाल ने वचन का पालन नहीं किया ? क्या देवानायक भी विश्वासघाती निकला ? क्या गढ़ में से अनाज चुरा लिया गया ? ऐसे अनेक सम-विषम भावों की भयंकर झंकार से काक का मस्तिष्क चकरा गया। उसके मन में भय घर कर गया जैसा उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

उसकी क्रोध से जलती हुई आँखें निस्तेज सी हो गईं। वह धीरे-धीरे बाहर राणकदेवी के निकट आया।

'देवी !' उसने गला ठीक करके कहा, 'अब कोई चिंता नहीं।'

'भाई ! इन दो-दो उपकारों का ऋण किस जन्म में चुकाऊँगी ?'

'देवी ! इसी जन्म में चुकाने का समय आ गया है।'

चकित होकर राणक ने उसकी ओर देखा, 'कैसे ?'

'मेरे अन्नदाता ने मुझ से अभी-अभी कहा है कि भृगुकच्छ में विद्रोह हो गया है और मेरी स्त्री और मेरे बच्चे गढ़ में भूखों मर रहे हैं। देवी ! आप सती हैं आप आशीष दीजिए। मुझे इस आशीष की अत्यन्त आवश्यकता है। मेरे निःसहाय बच्चे, मेरी···मेरी···।' काक का गला क्षोभ से भर आया—'मंजरी भूखों मर रही होगी। मैं यहाँ··· वह वहाँ। काक ने कपाल पर से पसीना पोंछ लिया। 'भोलानाथ ! मुझे ऐसे स्वामी की सेवा करने की क्यों बुद्धि दी ?'

'मेरे भाई !' राणक ने मृदुल स्वर में आश्वासन दिया, 'अम्बा माँ तेरी सहायता करेंगी। मुझे सहायता देने वाले को माँ कभी दुःखी नहीं करेंगी। अब तू यहाँ से जा।'

'नहीं देवी !' काक ने सिर हिलाकर कहा, 'मेरा अन्नदाता विषक्त नाग है। वह मेरी पीठ पीछे जाने क्या कर डाले। इतने दिन इस प्रकार

व्यतीत हो गए तो दो और सही । रानी आ जायें तो आपको उन्हें सौंपने के पश्चात मैं चला जाऊँगा । देवी ! अब आप निश्चिंत होकर बैठिए। मैं बाहर जाकर सब व्यवस्था कर आऊँ और कुछ खाने-पीने की भी व्यवस्था करूँ।' काक वहाँ से उठकर बाहर गया ।

बाहर जाकर पहले उसने जिस गढ़रक्षक को घायल करके कोठरी में डाल दिया था उसको सँभाला ।

'गढ़रक्षक-जी ! अब तुम निश्चिंत हो जाओ ? मजबूरी थी, मैं करता भी तो क्या ? महाराज की आज्ञानुसार सब करना ही पड़ा। बहुत लगी तो नहीं ? शीघ्र अच्छे हो जाओगे । महाराज की आज्ञा है कि किसी से एक अक्षर भी न कहना । नहीं तो प्राणों पर आ बनेगी ।'

गढ़रक्षक ने कपाल पर हाथ ठोंका, 'मेरा ऐसा क्या अपराध···।'

गढ़रक्षक जी ! यह पूछने से कोई लाभ नहीं । तुम्हारा घर कहाँ है ? मुझे बताओ तो मैं वहाँ जाकर आदमियों को बुला लाऊँ । लगता है तुमने मुझे नहीं पहचाना है ?'

'नहीं···।'

'मेरा नाम काक है ।'

'भृगुकच्छ वाले भटराज काक···?'

'हाँ, वही । देखो, खेंगार की रानी को सती होना है इसलिए महाराज उन्हें यहाँ लाए हैं । लोग यह बात न जानने पायें । एक-दो दिन में मीनलदेवी, मुंजाल महेता और रानी के आ जाने पर राणकदेवी सती होंगी । तब तक सब गुप्त रखना है ।'

'अच्छा ।'

'अब तुम घर जाओ और मुझे चार-पाँच अच्छे विश्वासपात्र आदमी दो ।'

'भटराज ! इतनी-सी बात थी तो मुझे पहले ही कह दिया होता न ! मेरा पैर व्यर्थ में काट डाला ?' कुढ़ते हुए गढ़रक्षक ने कहा ।

'चिन्ता मत करो, कल तक अच्छे हो जाओगे।'

गढ़रक्षक ने काक को अपने घर का ठिकाना बताया। काक ने वहाँ जाकर आदमियों को सूचना दी। आदमी आकर गढ़रक्षक को पालकी में बिठाकर घर ले गए। गढ़रक्षक ने कुछ आदमी काक के साथ भी कर दिए। काक ने पुजारी को बुलवाकर भोजन बनवाया, खाया और फिर महाराज और भाव को जाकर भोजन दे आया। थोड़ी देर पश्चात् उसने महाराज को एक-दो गद्दे ले जाकर दे दिये और आराम करने के लिए कहा।

बाहर आकर काक ने जूनागढ़ के पराजित होने के उपलक्ष में पूजा का ढिंढोरा पिटवाया, और साथ-ही-साथ जयसिंहदेव के वहाँ आने की बात कहकर स्वागत के लिए उत्सव कीतैयारियाँ करने की आज्ञा दी। कुछ सैनिकों को महाराज का स्वागत करने के लिए आगे भी भेज दिया। यह सब करने पर भी काक की स्थिरता जैसी थी वैसी न रही। उसकी आँखों से स्पष्ट लगता था कि उसके मस्तिष्क पर कोई भारी भार पड़ा हुआ है। जो सदा शांत रहता था वह दबाई हुई भावनाओं के कारण आज अस्पष्ट रूप से अशांत सा दिखाई दे रहा था। सन्ध्या को उसके हृदय की व्यथा और बढ़ गई। गढ़ पर चढ़ कर जाने कब तक वह भृगु-कच्छकी ओर देखता रहा। उसे मानो शांत संध्या में अपने पीड़ित प्रियतम का क्रंदन सुनाई पड़ने लगा। समय और स्थान का अंतर भूलकर, देह को त्याग कर मंजरी से मिलने के लिए उत्सुक उसके हृदय ने यात्रा आरम्भ की।

पहले अनेक बार वह मंजरी को छोड़कर युद्ध में गया था किन्तु कभी उसे ऐसा भय नहीं लगा था। इस समय क्यों ऐसा भय घर कर गया यह वह नहीं समझ सका। ऐसा अपरिचत भय मानो किसी भयंकर परिणाम की भविष्यवाणी करता-सा लगा। संध्या का मन्द पवन जैसे उसके हस्तस्पर्श की मृदुता और उसका उच्छ्वास-गन्ध लेकर आया हो।

ऐसा भास हुआ मानो उसने अभी-अभी उसका चुम्बन किया है। अब तक युद्ध के कारण और राज्य-कार्य की निरन्तर खटपट के कारण सूक्ष्म भावों पर मनन करने और उनका विश्लेषण करने का उसे समय नहीं मिला था, किन्तु इस समय सम्पूर्ण जीवन के संचय किये हुए संस्कारों ने भाव परंपरा खड़ी कर दी। उसके हृदय में इस समय मंजरी का क्या स्थान था यह वह अस्पष्ट रूप से समझने लगा। वह विभिन्न देह वाली स्त्री उसकी स्त्री या उसके बच्चों की मां नहीं थी, वह उसकी प्राणेश्वरी होने के कारण ही निराले सिंहासन पर विराजमान न थी, वह उसका प्राण थी—उसके प्राणों की भी प्राण प्राणाधार थी। वह जीवन ही उसके आधार पर था। जिस प्रकार प्राण जब निकलने की तैयारी में हों तो सम्पूर्ण देह भी उसके पीछे जाने को तत्पर हो जाती है उसी प्रकार वह भी आपत्तियों में पड़ी हुई मंजरी के पास दौड़ जाने को हो उठा। उसका मस्तिष्क एक ही बात सोच रहा था—मंजरी और मंजरी बस उसकी आत्मा एक ही काम के लिए छटपटा रही थी—मंजरी से भेंट करने के लिए। भीम द्वारा चीर दी गई जरासंघ की जंघा के दो टुकड़े जैसे एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हो उठे थे उसी प्रकार काक मंजरी से मिलने के लिए अधीर हो गया। कई बार तो उसे लगा कि राणक को वहाँ छोड़कर जाने में अब कोई हर्ज नहीं है किन्तु सती को इस प्रकार छोड़कर जाने में उसे फिर भय लगा। उसकी कर्तव्य परायणता और उसकी मित्र-भक्ति ऐसी थी कि वह उसे इस मन के संकट को झेलने के लिए उत्साहित कर रही थीं।

दूसरा दिन भी निकल गया। तीसरे दिन उसकी अधीरता की सीमा लांघ गयी। अन्त में थककर उसने वंथली की ओर जाने का निश्चय किया। परन्तु संध्या को एक अश्वारोही मीनलदेवी आदि के आने का समाचार लेकर आया। काक घोड़े पर बैठकर उनका स्वागत करने गया। वढ़वाण से पाँचेक कोस दूर मीनलदेवी, लीलादेवी और मुंजाल महेता

अश्वारोहियों सहित मिल गये। वह सब सराय में बैठे ही थे कि घोड़ा दौड़ाते हुए काक आ पहुँचा। सब काक को देखकर कुछ चौंके। उसका मुख दृढ़ता से बन्द था, उसकी आंखें फटी हुई थीं और उनमें उन्मादपूर्ण निस्तेज स्थिरता थी। मुंजाल महेता उठकर आगे आये। 'क्यों' क्या बात है काक ?' बढ़ती उम्र के साथ महाआमात्य ने वात्सल्य-भाव प्रकट करना भी बहुत सीख लिया था।

'सब अच्छे हैं।' खोखले स्वर से वह बोला और चारों ओर देखकर दोनों रानियों को नमस्कार किया। मुंजाल के आँख से संकेत करने पर सभी सैनिक दूर जा खड़े हुए।

'देवी ! महेता जी ! इस समय मैंने पाटण की कीर्ति की रक्षा की है, अंतिम समय।' काक ने आराम की सांस ली।

तीनों जिज्ञासा से देखने लगे, 'क्या हुआ ?' मीनलदेवी ने पूछा।

'देवी ! मैं आया उस समय वह ब्राह्मण से लग्न पढ़वा रहे थे। द्वार तोड़कर मैंने अन्दर प्रवेश किया। महाराज को निःशस्त्र किया। उनके बाबराभूत को भगाया और बड़ी कठिनाई से उन्हें तलगृह मे बन्द किया। नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया है कि आपके जाने पर कल राणक देवी सती होंगी। रा' का शव लाए हैं न ?'

'हां, माथा साथ लाया हूं।' मुंजाल ने कहा। महाराज तलगृह में बन्द है यह सुनकर लीलादेवी के मुख पर क्षण मात्र के लिए अस्पष्ट मुस्कराहट आई और चली गयी।

'अच्छा किया देवी !' मीनलदेवी की ओर घूमकर काक बोला, उस सती का आशीर्वाद माँगिए कि पाटण का राज्य अमर रहे। उसे छोड़ने से कोई लाभ नहीं है। अच्छा अब मुझे दीजिए।'

'आज्ञा ?' मीनलदेवी ने पूछा।

'कहां जा रहा है ?' लीलादेवी ने आश्चर्य चकित होकर आँखें फाड़ीं

'हाँ !' दाँत पीसकर काक बोला, 'देवी ! आपके पुत्र की सेवा

करने में कोई लाभ नहीं है ।मैं उन्हें जब तलगृह में बन्द कर रहा था। उस समय उन्होंने मुझे सूचना दी कि मेरे स्त्री-बच्चे भृगुकच्छ के गढ़ में भूखों मर रहे हैं । इतने वर्षों की सेवा का यह पुरस्कार मिला है मुझे ! और आप में से किसी को भृगुकच्छ सेना भेजने का भी अवकाश नहीं था ।' क्रोध में वह मुंजाल की ओर देखने लगा ।

'काक ! शांत रह,' मुंजाल ने कहा । मैंने तेरे सोमेश्वर और उदा महेता के पुत्र वाहड़ को कभी का सेना लेकर भेज दिया है और हम भी चल ही रहे हैं ।' काक कुछ देर तक घूरता रहा ।

'महेता जी ! कह लाट जीतने का प्रश्न नहीं है वरन् गढ़ में प्रवेश करने का प्रश्न है । सेना लेकर रेवापाल को पराजित करने में समय लगेगा परंतु मुझे तो गढ़ में अनाज ले जाना है । मुझे आपकी जय पराजय की चिन्ता नहीं है मैं या तो अपनी स्त्री की रक्षा करूंगा या मर जाऊंगा ।'

मुंजाल ने जाकर काक की पीठ पर हाथ फेरा ।

'भाई ! उद्विग्न मत हो । तेरी बात सत्य है, तू भले ही जा । तुझे सैनिक चाहिए न ? बैठ जा । दो घड़ी में कुछ बहुत नहीं बिगड़ जायगा ।

काक निःश्वास लेकर बैठ गया ।

सैनिकों की मुझे आवश्यकता नहीं खेमा को आप साथ लाए हैं ?'

'नहीं । वह जूनागढ में ही रह गया है ।'

'अच्छा, तो मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ । खंभात से दो सांडनियाँ और ले लूंगा । सोमनाथ पाटण से मुझे आवश्यकतानुसार सहायता मिल जाय ऐसा आज्ञा-पत्र लिख दीजिए ।'

'अच्छा, हम भी कुछ ही दिनों में आ पहुंचेंगे ।'

कठोर भाव से काक मुस्करा दिया ।

'देवी !' मुंजाल ने मीनलदेवी से कहा, 'तनिक अन्दर आइए ।'

एक बात कहनी है।' मीनलदेवी उठकर मुंजाल के साथ अन्दर गयी। लीलादेवी ने काक पर स्नेह-भरी दृष्टि डाली।

'काक ! इस जगह निराश क्यों हो रहा है ? भोलानाथ सब ठीक करेंगे। काक ने मौन रहकर गर्दन हिलाई।

'तूने सब मेरे लिए किया। इसका ऋण कैसे चुकाऊं ? काक ने उपर देखा, 'देवी ! मुझे कुछ भी समझ नहीं पड़ता। मुझे कुछ हा जाय तो बेचारे लाट का ध्यान रखना। अब कोई रहा नहीं।'

'काक ! ऐसी अमंगल बात क्यों बोल रहा है ? तुझे क्या हो सकता है ?'

कुछ समझ में नहीं आता कि क्या कहूं।' काक ने गर्दन हिलाई। रानी ने कभी काक को इस प्रकार अस्थिर और निराश न देखा था उसके हृदय में भी विचित्र-सा भय घर कर गया।

थोड़ी देर पश्चात काक ने सिर उठाया, 'महेता जी ने आज्ञा-पत्र लिखा ?'

'यह रहा।' मुंजाल मेहता ने आकर काक को आज्ञापत्र दिया।

'तलगृह अन्दर के खण्ड में—राणकदेवी जहां हैं वहाँ से तीसरे खण्ड में है। ऊपर पत्थर है। राणकदेवी को मैंने सब दिखा दिया है।'

'अच्छा तू चिन्ता मत कर, जा।'

काक एक अक्षर भी न बोला। बाहर निकल कर वह सांडनी पर जा बैठा।मुंजाल मेहता और लीलादेवी देखने लगे। शांत चन्द्रिका के क्रूर प्रकाश में दूर जाती हुई काक की सांडनी अदृष्ट हो गई।

## ३२

रात बीते मीनलदेवी की सवारी वढ़वाण पहुँची और बाजे-गाजे के साथ धूमधाम से राजगढ़ में प्रविष्ट हुई। सांडनी पर से उतरते ही मीनलदेवी तुरन्त राणकदेवी के निकट गई। मीनलदेवी का रा' खेंगार से चाहे जितना वैर हो और उनके पुत्र को छोड़कर रा' से ब्याह करने के कारण राणक पर चाहे जितना द्वेष हो किन्तु इस समय तो वे पराजित शत्रु की विधवा को योग्य मान देने के लिए प्रस्तुत हो गईं। वह अपने पुत्र की स्त्रियों के प्रति मोह की बात भली-भाँति जानती थीं। उन्हें उसके बुरे चाल-चलन पर उन्हें पश्चात्ताप भी होता था।

रानी लीलादेवी सहित मीनलदेवी राणकदेवी के निकट गईं और जय अम्बे!' कहते हुए सती के चरण-स्पर्श किए। राणक की आँखों में दैवी तटस्थता आ गई थी।

'अम्बाभवानी माँ तुम्हारा भला करें।' सती ने शत्रु की माँ और पत्नी को आशीर्वाद दिया। 'मीनलदेवी! मेरे रा' को लाईं' उसकी आंखें म्लान हो गई थीं।

'हाँ माथा ले आई हूं।'

राणक ने निःश्वास लिया, 'कल प्रातःकाल ही मुझे सती होना है।'

'जैसी सती की आज्ञा।'

'मेरे रा' को यहाँ भिजवा दो।'

'माना! ला तो!' मीनलदेवी ने अपने अनुचर को आज्ञा दी।

अनुचर दुशाले में लिपटा हुआ रा' का सिर ले आया। पल भर के लिए राणक के मुख से म्लानता जाती रही। वह एकदम खड़ी हो गई। आगे बढ़कर उसने अनुचर से सिर ले लिया। राणक ने वह अपने हाथ में—मानो वस्त्र में लिपटा नन्हा शिशु हो—लेकर मृदुता से ऊपर का आवरण हटा दिया।

'मेरा रा'......।' सभी ने अश्रु-भरा स्वर सुना किन्तु उसकी आंखों में आँसू नहीं थे।

थोड़ी देर तक वह रा' के आहत मुख की ओर देखती रही और फिर बड़े स्नेह से उसने कपास पर आए हुए रक्त से सने केशों को ऊपर किया। धीमे-से मुस्कराई, म्लान मुख से यह कहते हुए 'मेरे रा' ! मेरे सोरठ के स्वामी ! मैं आती हूँ।' उसने अपने पति के मस्तक को छाती से चिपटा लिया।

मीनलदेवी और लीलादेवी की आँखें सजल हो उठीं।

राणक ने रा' का माथा चौकी पर रख दिया और मीनलदेवी से कहा, 'मैं घी का दीपक जलाना चाहती हूं।'

'हाँ, अभी भिजवाती हूँ,' कहकर मीनलदेवी उठी। दोनों पट्टराणी रानियां वहाँ से चली गईं।

थोड़ी देर के पश्चात रा' के माथे के सामने घी के दो दीपक रख कर राणक उसके सामने बैठकर एकाग्र हो देखने लगी। उसकी आँखों में न जाने क्या भाव आए और गए।

वह रह-रह कर 'मेरे रा' के सिवा और कोई दूसरा शब्द नहीं बोलती थी।

धीरे-धीरे रात व्यतीत हो गई।

पौ फटने के समय भी राणक वहीं-की-वहीं बैठी हुई थी।

मुंजाल महेता अंदर आए। एक-दो विश्वास-पात्र व्यक्ति लेकर वह सीधे अन्दर के खण्ड में गए और तलगृह ढूंढकर उसे खुलवाया और स्वयं अन्दर उतरे। गद्दों की शैया पर जयसिंहदेव निस्तेज और म्लान होकर पड़े हुए थे।

'क्यों आया है ?' जयसिंहदेव ने निर्बल स्वर में पूछा।

'यह तो मैं हूं महाराज !' मुंजाल बोला।

राजा जैसे तैसे करके हाथ टेक कर उठ बैठे।

'कौन, महेता जी ! आप आ गए ? किधर गया वह हरामखोर ? उसे पकड़ो, कहीं भाग न जाय ।'

'चिन्ता मत कीजिए । सब ठीक कर दिया है । चलिए ।'

राजा मौन होकर उठे और मुंजाल के निकट आए । आपके साथ ब्राह्मण था वह कहाँ गया ?' मुंजाल ने पूछा ।

'यह रहा ।' भाव कोने में से निकलकर सामने आया ।

'देख छोकरे !' मुंजाल ने कठोर स्वर में कहा, 'चुप रहना आता है ?'

'उसके लिए मुझे कहना नहीं पड़ेगा ।' भाव ने हँसकर कहा ।

'मुझसे फिर मिलना ।'

'जी हाँ, अवश्य मिलूँगा ।' भाव बोला ।

मुंजाल महेता महाराज को ऊपर ले गये । महाराज के शरीर पर धूल थी और उनके पाँव खड़खड़ा रहे थे ।

'महाराज सीधे निवास में जाइए और स्नानादि करके भोजन कर लीजिए ।'

'साथ में और कौन-कौन आया है ?'

'मीनलदेवी और लाटराणी ।'

'सारे नगर ही को न्यौता देकर ले आते न ?' क्रुद्ध करके राजा ने कहा, वह काक किधर गया !'

'कहीं नहीं । आप स्वस्थ तो हो जाइए ।'

'किन्तु है कहाँ ?' राजा ने हठ किया ।

'जयसिंहदेव !' मुंजाल ने कठोरता से कहा, 'हम श्रावकों के पांचवें व्रत के अनुसार पर स्त्रीगमन से विमुख होने वाले और कराने वाले, दोनों को पुण्य मिलता है । अभी जो मैं कहता हूं वह करो, फिर देखा जायगा ।'

राजा का मन उत्तर देने को हुआ किन्तु निर्बल होने के कारण वह ही मौन रहे। रनिवास में लीलादेवी का शांत तिरस्कार झेलने के लिए जाना उन्हें मर्मान्तक लगा। किन्तु और कोई मार्ग न होने के कारण उन्होंने मुंजाल की सलाह ही स्वीकार की।

प्रातःकाल होने से पूर्व ही सम्पूर्ण नगर घरों से बाहर निकल आया। पुरुष और स्त्री खेंगार की सती हो रही रानी को कुंकुम और फूल से पूजने के लिए निकल पड़े। मार्ग में अपार भीड़ थी और नागरिक भोगावा तीर पर श्मशान की ओर जा रहे थे। डंकों और शहनाइयों की ध्वनि गूँज रही थी। घुड़सवारों और पैदलों का जलूस चला। नगर-भर में 'जय अंबे !' 'जय अंबे' का नाद गूँज रहा था। सूर्योदय के साथ-साथ ही लोग भी राजगढ़ से श्मशान की ओर चले। स्वर्ण-खचित वस्त्र से सुसज्जित डोली पर फूलों के ढेर पर रा' का माथा रखा हुआ था। श्मशान की ओर जाते हुए लोगों में दुःखी देख पड़ते महाराजाधिराज और मुंजाल महेता की ओर लोग देखने लगे।

पीछे सती राणक 'जय अंबे' का उच्चारण करती हुई आई। उसके पीछे राजमाता, दासी और अन्य स्त्रियां थीं। सती जिधर जाती उधर हजारों आदमी 'जय अंबे' का घोष करके कुंकुम उछालते और चरणों में पुष्प चढ़ाते। 'सती माता की जय !' की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। मार्ग के दोनों ओर खड़े हुए स्त्री-पुरुष सती के निकट आते, साष्टांग प्रणाम करते और आशीर्वाद की याचना करते। वढ़वाण का राजमार्ग सती के चरणस्पर्श से कुचलते हुए फूलों से सुशोभित हो रहा था।

सब लोग भोगावा के तीर पर आए। चारों ओर सैनिक खड़े हो गए और मध्य में स्त्रियां और डोली उठाकर चलने वाले खड़े हुए सब की आंखों में अश्रु बहने लगे।

चिता चुन दी गई मंथर गति किन्तु निडरता से राणक उस पर चढ़ गई। उसके मुख पर आनन्द छा रहा था। ब्राह्मण ने उसके ललाट पर कुंकुम तिलक किया। श्रीफल रखा और रा' का माथा उसे

दे दिया 'खम्मा मेरे रा' को' कहकर राणक ने पति का माथा ले लिया और स्नेह से उसे गोद में रखकर 'जय अंबे !' 'जय अंबे !' बोली। जयसिंहदेव ने अग्नि दी—और डंकों शहनाइयों और तूर्य के नाद से गगन गूँज उठा। गुलाल और कुंकुम ने चारों ओर का वातावरण लाल कर दिया।

'जय अंबे ! सती माता की जय !' का घोष होता ही रहा। चिता के आसपास गुलाल और कुंकुम उड़ते ही रहे। अग्निदेव एक लकड़ी से दूसरी पर कूदे। एक मयाज्वाल उठी और राणक के केश जल उठे।

चारों ओर तुमुल नाद हुआ। चारों ओर का वातावरण कुंकुममय हो गया। 'जय अंबे' की एक चीत्कार इस हल्ले-गुल्ले में सुनाई पड़ी।-सती राणक देह छोड़कर रा' के साथ चली गई।

भोगावा इस सती की भक्ति की परम कसौटी को देखती रही।

## ३३

भृगुकच्छ के गढ़ में समय काटे नहीं था। मंजरी में अब उत्साह नहीं रहा था। थोड़ा बहुत समय तो वह महादेव के मंदिर में या पुत्र के निकट काट देती फिर शेष समय कोट पर, नष्ट हुए राजा के निर्जन प्रासादों में घूमती—राज्यलक्ष्मी के समान गर्वीली फिर भी सुन्दर, निस्तेज फिर भी मोहक, वह सदा घूमा ही करती। फिर-फिरकर वह नदी के स्रोत की ओर दृष्टि डालती। कई बार उसकी उन आँखों में अवर्णनीय भाव प्रकट होते। आज रात को उसका प्राणाधार अवश्य लौट आयगा वह आशा बांधती और प्रणयिनी की अधीरता से वह उसके लौटने की बाट देखती रहती।

प्रणयी की प्रतीक्षा करने से बढ़कर हृदय द्रावक अनुभव जीवन में और नहीं होता। किसी दूसरी वस्तु में मन रमता ही नहीं। कोई नहीं आया है ऐसा विश्वास होते हुए भी आने वाले को देखने की उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। हजारों काम छोड़कर दृष्टि टिकाकर देखते रहने में ही उसे जीवन का महत्व दिखाई पड़ता। संभव है वहाँ से हट जाने पर आने वाला न आए कुछ ऐसा भय उसे लगता था। वहाँ खड़े-खड़े की हुई तपस्या के बल से आने वाला खिंचा चला आयगा संभवतः ऐसी उसकी श्रद्धा थी।

यह होते हुए भी आने वाला नहीं आया। पत्तों या कंकड़ों के गिरने में उसे परिचित पगध्वनि का भान होता। क्षितिज पर सूर्य-किरण के फूटते ही पति की आती हुई नौका दिखाई पड़ती, उड़ता हुआ पंछी उसमें आशा का संचार करता मानो वह उसकी नौका का पाल हो पवन की सनसनाहट में, दूर से आती हुई किसी भी ध्वनि में काक का ही स्वर सुनाई देता। ऐसा अनुभव होते ही पल-भर के लिए हृदय धड़क उठता, और आशा-भरी दृष्टि से वह चारों ओर देखती, आशा द्वारा रचे हुए मृगजाल को एक क्षण निहारती और दूसरे ही क्षण अकुलाने लगती। गहन निराशा चारों ओर फैलकर उसे डुबो देती।

इस प्रकार आने वाले प्रणयी की प्रतीक्षा करने में मजरी को चौरासी लाख जन्मों के दुख का अनुभव होता था। एक-एक पल एक-एक युग के समान लगने लगा। एक क्षण की वेदना या भावना में जीवन भर की करुण मार्मिक कहानी समाई हुई थी, किन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा। अपने पति के साहस, उसकी शक्ति और चतुराई में उसे पूर्ण विश्वास था। उसके भाग्य में उसे श्रद्धा थी। वह लौटेगा अवश्य ऐसा उसे विश्वास था।

जब बच्चे अधीर हो उठते थे तब तो साहस रखना कठिन हो जाता था। महाश्वेता कभी-कभी दयापूर्ण मुख से पूछती, 'पिताजी कब लौटेंगे?' उसे उत्तर देते समय मंजरी की आँखें भर आती थीं।

किन्तु ऐसी निर्बलता वह अधिक समय तक नहीं रहने देती। इस इस निर्बलता से उसके पति का गौरव खंडित होता था ऐसा वह मानती थीं, और अपने को उसकी महत्ता का कीर्ति ध्वज समझकर साहस बनाए रखती थी। उसका सुकुमार शरीर क्षीण होता जा रहा था। उसका कोमल मुख निस्तेज होता जा रहा था। उसकी विशाल आँखें और भी बड़ी दिखाई देती थीं किन्तु उसका गौरव अधिक-से-अधिक अडिग होता जा रहा था। निर्बलता बढ़ जाने की संभावना के कारण वह सदा अपने अन्तर के भावों को वह अंतर ही में दबाए रखती थी।

उसका विश्वास होता जा रहा था कि शस्त्रप्रयोग करना उसे कभी न आएगा फिर भी उसने अभ्यास चालू रखा। उससे समय कटता था, रात्रि को नींद आती थी और वह पति के योग्य होती जा रही है इस विचार से उसके हृदय को कुछ सांत्वना मिलती थी।

थोड़े दिनों पश्चात् अब आँबड़ महेता में भी आमूल परिवर्तन हो चुका था वह गम्भीर हो गया था और उसका मोह बिलकुल जाता रहा था। उसे लगा कि पाटण की कीर्ति केवल उसके साहस पर अवलम्बित है, अतः उसका लड़कपन और अविचार जाते रहे। पाटण के उत्ताधीश होने का उसे जो गर्व था वह टेक का रूप लेकर अब और भी व्यापक हो गया। काक और त्रिभुवनपाल, परशुराम और मुंजाल देवप्रसाद, विमलमंत्री और महान् शक्तिशाली भीम की वीरता के संस्मरण उसके चरित्र का निर्माण में योग दे। इन सभी की कीर्ति का तो वह उत्तराधिकारी था इसलिए उत्तराधिकारी की योग्यता प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो रहा था। वह सभी को उत्साह दिलाता, गढ़ के चारों ओर दृष्टि रखता, और भृगुकच्छ की हलचल पर भी ध्यान देता। गम्भीर और सत्ताशील—वह शिशु न रह कर योद्धा हो गया था।

मंजरी के प्रति भी उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया था। वह

मंजरी से स्नेह करता था—किन्तु दूसरी ही भावना से। उसको सुविधा देने में, उसके अभ्यास में, उसके उत्साह को बनाए रखने में वह सदा लगा रहता था—प्रणयी के पागलपन से नहीं अगाध भक्ति से। उसके लिए मंजरी संसारी स्त्री न थी, बल्कि उसके जीवन की अधिष्ठात्री—कोई देवी जैसी थी। मानो वह कोई अस्पृश्य शक्ति हो इस प्रकार वह उसकी ओर देखता रहता था। उसकी दृष्टि से विकार जाता रहा और उसकी भक्ति से वासना लुप्त हो गई। विशुद्ध भावनाओं के अर्घ्य से सदा पूछने योग्य उसकी मंजरी उसके मन की योगमाया थी। माता का निर्मल प्रेम, बहन का शुद्ध स्नेह—उसके प्रति मंजरी की यह भावनाएं उसे भली लगती थीं। काक के स्मरण से अब वह चिढ़ता नहीं था; बल्कि उसे लगता मानो काक उसी का हो, उसके स्मरण से उसका स्वयं का गौरव बढ़ता हो।

मंजरी और महाश्वेता दोनों के निर्मल मस्तिष्क पर भी मेघ छा गए थे। सभी लाड़-प्यार करते थे किन्तु उन्हें चैन नहीं था। गम्भीर मणिभद्र भोजन बनाता और बच्चों को रखता। नेरा की स्त्री गंगली तेलन सभी काम करती, देवा कोट पर पहरा देता और नेरा भी काम में लगे रहने का स्वांग रचता।

एक दिन प्रातःकाल देवा आंबड़ महेता को कोट पर ले गया। नीचे एक सैनिक दस-बारह दूसरे सैनिकों को गढ़ में से नीचे आने का पथ दिखा रहा था। उसे देखकर आंबड़ चिन्तित हो उठा।

'यह क्या पहरा दे रहे हैं?'

'लगता तो ऐसा ही है।' देवा ने कहा।

'रेवापाल को अभी अवकाश नहीं है क्या?'

'विजय प्राप्त करके निश्चिन्त हो गया होगा।' देवा ने कुढ़कर कहा, देवी कहां हैं?'

'पूजा करने गई हैं, क्यों?'

'अन्नदाता!' देवा जबान करती हो ऐसे स्वर में कहा, 'देवी को,

'कीकाभाई' और 'कीकी बहन' को यहाँ से हटा देना उचित होगा।'

'क्यों ?' चकित होकर आंबड़ ने पूछा।

'दस-ग्यारह दिन हो गए परन्तु अब तक कोई सूचना नहीं मिली। भाई...।' देवा का स्वर टूट गया, भाई अब नहीं आयेंगे।' उसने गर्दन हिलाई, 'वे जब गये तब मेरी झोंपड़ी पर उल्लू बोल रहा था।' वृद्ध ने इस प्रकार कहा मानो सभी भय अपशकुन के कारण ही सत्य हो जाते हों।

'किन्तु यहां अपने पास अभी अनाज पर्याप्त है।'

'आठ दिन भी नहीं चलेगा।'

आंबड़ की आंखें फट गईं, 'हैं ?'

'हां, आज से हम एक समय ही खायेंगे।'

थोड़ी देर तक आंबड़ महेता एकटक देखते रहे। स्थिति सचमुच गम्भीर होती दिखाई दे रही थी।

'और वह देखा...।' देवा ने फिर नीचे खड़े हुए मनुष्यों की हलचल की ओर आम्रभट का ध्यान आकर्षित किया।

आम्रभट मौन होकर खड़ा रहा।

'बाहर निकलने का मार्ग अब बन्द हो जायेगा।'

'तब ?'

'देवी और बच्चों को गांव में ले जाकर छिपा दीजिए। हम लोग गढ़ टिकाए रखेंगे।'

आंबड़ थोड़ी देर विचार करता रहा और फिर गर्दन हिलाने लगा। देवा की बात उसे ठीक लगी।

आंबड़ वहाँ से महादेव के मन्दिर की ओर मुड़ा। सदा इसी समय मंजरी पूजा करने जाती थी। वहां जाकर बाहर से ही आंबड़ ने महादेव को नमस्कार किया और चबूतरे पर बैठ गया।

मंजरी पूजा करके बाहर आई। पहले वाला उसका गौर वर्ण इस समय फीका-सा पड़ गया था। उसके मुख पर चिन्ता थी।

'देवी !'

'क्यों भाई।' उसके उत्तर में मिठास था।

'यहाँ का अनाज तो घटने लगा,' आँबड़ ने कहा।

'मणिभद्र ने मुझसे कहा था,' मंजरी ने उत्तर दिया। 'क्या अभी वथली सूचना नहीं पहुँची होगी ?'

'देवी ! ये अशान्ति के दिन हैं। सम्भव है सूचना न भी मिली हो।'

'आज से और सब एक समय खायेंगे।'

'हाँ, इससे कम-से-कम पन्द्रह दिन तो चल जायेगा। किन्तु उसके पश्चात् ?'

'मैं भी एक समय ही खाऊँगी।'

आम्रभट चबूतरे पर से उठ खड़ा हुआ।

'क्या पागल हो गई हैं ?'

'क्यों ?'

'आप एक समय खाएंगी तो गढ़ की रक्षा कैसे होगी ? आँबड़ को मंजरी की कोमल काया के कुम्हला जाने का भय हुआ, 'आपको चाहिए उतना अनाज है।'

'किन्तु सब एक समय और मैं दो समय खाऊँ ?'

'नहीं, आप, बच्चे और मैं दो समय खायेंगे। अन्तिम समय तक हमें गढ़ टिका रखना है। पाँच दिन तक प्रतीक्षा करेंगे। फिर आवश्यकता होगी तो देखा जायेगा। आप भूखी कैसे रह सकेंगी ?'

'और स्त्रियाँ तो दिनों तक उपवास करती हैं।'

'वह तो भूखों मर-मर कर आदी हो जाती हैं। परन्तु आप तो मर जायेंगी।'

'अच्छी बात है, देखूँगी,' हँसकर मंजरी ने कहा, 'किन्तु ऐसा किये बिना और कोई चारा भी तो नहीं है।' मंजरी का हास्य अब भी वैसा ही मोहक था।

'देवी ! इससे तो एक दूसरा काम क्यों न कर ? आपको और बच्चों को गाँव में छिपा दें तो कैसा ? हम गढ़ की रक्षा कर लेंगे।'

मंजरी का हास्य जाता रहा। उसकी विशाल आँखें स्थिर हो गईं।

'आँबड़ महेता ! यह गढ़ तुम्हारे राजा का नहीं है, मेरे दुर्गपाल का है।' जब तक देह में प्राण हैं तब तक मैं इसे नहीं छोड़ूँगी।'

'बहुत कष्ट सहना पड़ेगा, देवी !' आग्रह से आँबड़ ने कहा, 'और गढ़ की रक्षा करने के लिए हम तो हैं।'

'आँबड़ महेता !' गर्व से सिर ऊँचा करके मंजरी ने कहा, 'गढ़ छोड़ना ही होगा तो जीते जी नहीं छोड़ूँगी। दुर्गपाल आयें और मैं कहीं छिपकर बैठी रहूंगी—नहीं। उन्होंने भी सोच रखा होगा कि वह नहीं हैं तो अन्तिम समय तक मैं ही गढ़ की रक्षा करूँगी।'

आँबड़ ने देखा कि मंजरी मानेगी नहीं इसलिए वह मौन रहा। इस स्त्री की सहज दृढ़ता के सामने वह सदा पराजित हो जाता था।

## ३४

इसी दिन देवा, मणिभद्र और नेरा की पत्नी ने अनाज के भाव कर लिये और यह निश्चय किया कि मंजरी, आँबड़ महेता और बच्चों को छोड़कर सभी एक समय खायेंगे।

इतने दिनों में वास्तविक दुःख तो नेरा तोतला को ही उठाना पड़ा था। स्वच्छन्द घूमना, दिन में चार-छः बार पेट भर कर खाना, दुपहर को चार-छः घड़ी विश्राम करना और हो सके वहां तक सेका हुआ पापड़ नहीं तोड़ना यही उसके जीवन के अटल सिद्धान्त थे। धार्मिक श्रद्धा से इतने वर्षों तक तत्परता से उसने यह सब निभाया था, और अब एक

ही स्थान में बैठे रहना, देवा की अधीनता में दो बार खाना और दोपहर को न सोना—आपत्तियों की इस भयंकर परम्परा ने उस पर अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया था। उसकी आँखों में सदा दुःख झलकता रहता था। उसकी तीन-तीन ठोड़ियाँ खाली होते थैलों के समान झूलने लगी थीं। उसकी विशाल तोंद ढीली पड़ने लगी थी और उसकी पतली टांगें अब कांपने लगी थीं। अधिकतर तो वह किसी कौने ही में पड़ा रहता था और किसी आने-जाने वाले के सामने मरते हुए श्वान की-सी करुणा दृष्टि से देखा करता था।

ऐसे कष्टों की भीड़ के कारण उसे आंबड़ महेता का भय न रहा मंजरी के प्रति सम्मान न रहा, बच्चों के प्रति स्नेह न रहा—उसे सभी अपने कट्टर शत्रु लगते वह सब न उसे पेट भर खाने को देते, न जी भर सोने देते और न ही गांव में भाग जाने देते। उस पर से अपनी तेलन से तो वह घबरा गया था। उसकी भयंकर जिह्वा देवी की लाठी से भी अधिक शक्तिवान थी और भूख और दुःख से बचे-खुचे प्राण को वह निकाले बिना न रहती। जब वह बोलने लगती तो बिचारे नेरा को प्रेतलोक भी अच्छा मालूम होने लगता था जैसे भैंसासुर के लिए कालिका थी वैसे उसके लिए उसकी पत्नी। वह उससे त्रस्त हो गया था और उसकी धाक से जाल में फंसी मछली जैसी मनोदशा का अनुभव करता था।

वह एक दीवाल के सहारे पड़ा हुआ था। मुंह फाड़कर पेट की भूख को खाकर शांत करने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था। मानो यह सुख भी बहुत अधिक था कि उसकी पत्नी ने आज्ञा सुना दी कि आज से एक ही समय खाना मिलेगा। नेरा ने पहले तो सुनी-अनसुनी कर दी।

'बहरा हो गया है क्या ?' गंगली ने कहा, 'अब से एक ही समय खाना मिलेगा। अनाज समाप्त हो आया है,—अनाज।' जैसे-तैसे करके

नेरा उठकर बैठा। उसकी समझ ही में न आया कि यह अनाज कैसे अकस्मात समाप्त हो गया।

'क···क···क···कैसे स···समाप्त हुआ ?'

'तेरा भाग्य।'

'ए···एक बार ख···खाना हो···गा ?' नेरा के होंठ टेढ़े होकर लटक गये।। यह नया दुःख इतना भारी लगा कि उसमें अब बोलने की भी शक्ति न रही। अब तक दो बार खाने को मिला था वह उसके लिये पानी पीकर उपवास करने के समान था।

'हाँ, एक बार······।'

'च···च···चल ना यहां—से च···च···चले चलें।' उसने गंगली से कहा। उसकी आधी सूजी सी आँख में से आंसू गिरने लगे। भूख के कारण उसकी जबान भी लड़खड़ाने लगी थी।

'निर्लज्ज कुछ लाज-शर्म भी है !' तेलन ने आंखें निकालीं, 'देवी और 'कीकाभाई' सब को छोड़कर चले जाएँ ? जन्म लेकर खाने के सिवा तूने और कुछ भी सीखा है ? तुझे पाटण का भट किस मूर्ख बनिये ने बना दिया ? तेरे स्थान पर तेरी माँ के पेट से पत्थर गिरा होता तो अच्छा होता, किसी शौच-गृह की दीवार में लग जाता।' गंगली गर्व से बोली, 'बोल, अभी खाना है कि दुपहर के बाद ?'

निराशा से नेरा की गर्दन लुढ़क गई। मरने के सिवा और कोई राह उसे सूझी नहीं। 'अभी' झाग-भरे मुंह से शब्द निकाला। कल रात खाने के दो घड़ी बाद से ही उसे कड़ाके की भूख लग रही थी।

'तो फिर कल दुपहर तक रहेगा कैसे ?'

'रह लूंगा।' कहकर नेरा ने ऐसा निःश्वास भरा कि पत्थर भी पिघल जाय। परन्तु तेलन नहीं पिघली वह जाकर खाने को ले आई। अलबत्ता पतिव्रता धर्म की प्रेरणा से कुछ अपना भाग भी उसके भाग में मिला दिया।

भोजन आया तो नेरा बैठा रहा और भोजन की ओर देखने लगा। उसकी आँखों में पागलों की-सी चमक आ गई, उसके मुंह में पानी आ गया, उसके मुख पर लिप्सा का बेतुका हास्य झलक उठा ; उसके गले में से हर्ष की घरघराहट हुई। वह प्रसन्नता के मारे पागल-सा हो उठा ।

गंगली उसकी ओर तिरस्कार से देखने लगी ।

'चल, खा। यह पानी रहा, हाथ धो ले ।'

परन्तु तब तक तो नेरा ने खाना आरम्भ कर दिया था। डेढ़ 'रोटला,' दो कड़छी दाल-भात, प्याज और नमक—देखते-ही-देखते वह चट कर गया। खाकर अधिक की आशा से नेरा ने गंगली की ओर देखा, 'द···दूसरी···।'

'दूसरी क्या, तेरा सिर ! एक 'रोटला' तेरा था, और आधा मैंने अपना दे दिया। अब कुछ नहीं है।'

'पर कल तो दो थे।' नेरा ने अपना विरोध प्रकट किया ।

'आज से एक ही मिलेगा।' गगली ने क्रोध से कहा ।

'क···क···कल तक क···कुछ नहीं ?' नेरा ने विस्मित होकर पूछा ।

'अधिक चाहिए तो आग है।' कहकर वह चली गई।

कुछ समय तक निःसहाय बनकर नेरा देखता रहा, फिर एक ऐसा निःश्वास भरकर जो दूर-दूर तक सुनाई दे सकता है, मुंह धोकर पानी पिया।

कितने ही दिन हो गए। उसे पेट भर कर भोजन प्राप्त न हुआ था। उस पर एक पूरे दिवस निराहार रहने की मुसीबत। क्यों ये मूर्ख लोग यहाँ पड़े हुए हैं ?' क्यों उसे यहाँ से जाने नहीं देते ? वह इतना थक गया था कि और आगे विचार किये बिना ही नींद के झोंके आने लगे।

नींद में उसे हलवाई की दूकानों, और जलेबियों के ढेर के स्वप्न आते रहे। मुंह के सामने लड्डुओं से भरा थाल दिखाई पड़ता कि दुष्ट गंगाली उसे खींचकर ले जाती—स्वयं जैसा भूखा था वैसा ही भूखा रह जाता है, पेट में लगता मानो होली जल रही हो।

कुछ देर पश्चात् वह जागा। दुःखमय स्वप्न जाते रहे या नहीं यह देखने के लिए वह कुछ ऊपर उठा, तब उसे वास्तविक परिस्थिति का भान हुआ। सुख तो स्वप्न में ही था जिसमें लड्डू और मालपुए देखकर मुंह में पानी आता था। जागने पर तो दो ही बातें होती थीं—निर्जन गढ़ और अनन्त काल तक भूख और भूख। वह एकाएक काँप उठा—ऐसे पुरुष के समान जो अनगिनत पीड़ाओं द्वारा कुचला गया हो। दोपहर से पहले उसने दो 'रोटला' खाया था या नहीं यह भी उसे याद नहीं रहा। उसकी दशा तो ऐसी थी मानो वर्षों से उसके पेट में अन्न ने प्रवेश नहीं किया हो।

कुछ देर तक वह होंठ चाटता हुआ सूजी हुई आंख से आकाश की ओर देखता रहा। ऐसा लग रहा था मानो उसके मुख कीरे खाओं में भूख की वेदना का सृजन करने के लिए वह सिरजनहार से प्रार्थना कर रहा हो। क्यों भई जब पेट दिया तो पेट-भर खाने को क्यों नहीं देता? थोड़ी देर पश्चात् उसने देवा नायक को उधर जाते देखकर पुकारा—'न···न···नायक !'

'क्या है ?' देवा ने इस आलसी की ओर देखकर कठोरता से कहा।

'आज···दू···दूसरी बार ख···ख खाना नहीं मिलेगा ?'

'नहीं···।' देवा ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

नेरा ने अपना सिर धरती पर इस प्रकार पटक दिया मानो कोई घातक पीड़ा उठी हो। इस आलसी और भुक्खड़ के प्रति देवा को इतना तिरस्कार था कि एक भी शब्द कहे बिना वह वहाँ से चला गया उसकी चलती तो वह नीचे जाकर इस पट्टणी को रेवापाल की भेंट

कर आता ।

कुछ देर नेरा निश्चेष्ठ पड़ा रहा । उसे लगा कि यह सब उसे जान-बूझकर भूखों मारना चाहते हैं । उसे अपनी स्त्री पर क्रोध आया, सु···स···कहकर वह गाली देने जा रहा था, किन्तु वह इतना निर्बल हो गया था कि मौन होकर पड़ा रहा ।

मुख क्षीण हो गया और नेरा की जबान तालु से चिपक गई । वह किसी प्रकार उठ बैठा और घिसटता-घिसटता कुंए के निकट आया । वहां एक घड़ा आधा भरा हुआ पाया । तो उसे मुंह से लगाकर वह सब का सब पानी पी गया ।

पानी पीकर कुछ तसल्ली मिली कुछ जान पैरों में आई । वह खड़ा हुआ किन्तु चक्कर खाकर गिर पड़ा । बड़ी कठिनाई से घुटनों का सहारा लेकर वह फिर उठा सूर्य अस्त हो रहा था । उसे ध्यान हुआ कि संध्या काल होते ही भोजन का समय हो जायगा, किन्तु इतने में उसे अपनी स्त्री के शब्दों का स्मरण हो आया--'एक ही बार खाना पड़ेगा !' किन्तु एक समय भी खाना खाया कब था ? गिरता-पड़ता वह रसोई-घर की ओर गया । वहाँ शांति थी । रसोई घर पर साँकल चढ़ाकर मणिभट चला गया था । उसमें कुछ-न-कुछ अवश्य होगा यह सोचकर वह अंधेरे की प्रतीक्षा में दीवार का सहारा लेकर बैठ गया । सम्भव है गंगली उसे देख ले इसलिए वह एक कोने में सिमट गया ।

किसी भी प्रकार समय व्यतीत नहीं हो पा रहा था और उसके पेट में भूख की ज्वाला बढ़ती जा रही थी सिर में चक्कर आने लगे, उसने सिर पर हाथ रख लिया किन्तु उससे भी कुछ लाभ नहीं हुआ । एक-दो बार उलटी हुई, जी और भी अकुलाने लगा ।

अँधेरा होने पर वह साहस करके उठा और रसोईघर की सांकल खोली । अन्दर अंधेरा था । चोर के समान वह सब कुछ इधर-उधर करने लगा किन्तु कुछ हाथ नहीं लगा । मणिभद्र ने आवश्यकता से

अधिक भोजन बनाया ही नहीं था।

वह चकराकर वहीं गिर पड़ा। उसके प्राण तिलमिलाने लगे। उसे अब किसी की चिन्ता ही न रही, उसे तो मात्र इतना भान था कि भूख से वह छटपटा रहा था।

नेरा ने जब से जन्म लिया तब से सदा आवश्यकता से अधिक ही खाया था, कम नहीं। भूख शब्द का उसके लिए कोई अर्थ नहीं था। सचमुच भूख की प्रचण्ड शक्ति का अनुभव करके उसकी सुध-बुध जाती रही।

कल दुपहर तक कैसे रहा जायगा। उसके पेट की अंतड़ियां इस प्रकार हिल उठी मानो अनेक बिल्लियां पंजों से खरोंच रही हों। उसने उलटी करने का प्रयत्न किया—पेट पर हाथ धरा—किन्तु वेदना बढ़ती ही गई।

एकाएक उसे कुछ याद आया। कोठार पास ही था। कोठार! कोठार! उसके शुष्क मुख में पानी आ गया परन्तु उसे आंबड़ महेता, देवा, गंगली का भय लगा। वह सब मिलकर उसके प्राण ले लेंगे। उसकी दृष्टि कोठार के द्वार पर जो टिकी तो फिर हटी ही नहीं।

'एक-दो मुट्ठी खा लूंगा तो कोई न जानेगा, उसने सोचा। वह लड़-खड़ा कर उठ खड़ा हुआ, गिर पड़ा फिर उठ खड़ा हुआ। धीरे-धीरे हाथ-पांव से चबूतरे पर चढ़कर कोठार के द्वार तक आया। उसने चारों ओर देखा—अन्धकार था। कान लगाए सुनसान था। थोड़ी देर तक वह पड़ा रहा, स्वभाव से शिथिल और भूख से व्याकुल अन्तरमन ने डंक मारा। डंक इतना हल्का था की भूख की वेदना से ही दब गया।

वह एक दम उठा और दीवार के सहारे खड़ा हो गया। चारों ओर सन्नाटा था। रात गहरी हो चली थी। भूख और थकान से सभी निश्चिन्त होकर सोये हुए पड़े थे धीरे से कोठार की सांकल खोली और चौकन्ना होकर देखने लगा। थोड़ी देर तक कान लगाये सुनता रहा किन्तु कोई

शब्द नहीं आया। द्वार खोलकर वह अन्दर गया।

वह क्या कर रहा था इसका उसे भान नहीं था, वह तो मात्र यह जानता था कि जो कुछ वह कर रहा है उससे भूख शांत हो जायगी।

वह हाथ और घुटनों के बल अनाज ढूंढने लगा। अन्त में एक कोने में वह चार मटकियां पा गया।

अब उसकी अधीरता की सीमा न रही।

एक मटकी में हाथ डालने का उसने प्रयत्न किया किन्तु मुंह संकरा होने के कारण उसमें हाथ न जा सका। अंधेरे में उसकी आंखें चमक रही थीं। उसने मटकी को उलटकर अनाज से मुट्ठी भरी। मटकी में से दाल निकली देखकर उसने मुट्ठी खोल दी और दूसरी मटकी की ओर मुड़ा। जल्दी-जल्दी उसने मटकी उलटी की। उसमें से चावल निकले। वह तीसरी मटकी की ओर मुड़ा। उसमें से पिसा हुआ आटा निकला। इस समय उसकी दशा पागल की-सी थी। अविचारी विनाशक वृत्ति ही उसे प्रेरित कर रही। उसने चौथी मटकी उलटी। उसमें से भी आटा निकला। उसने अनाज और आटे का ढेर लगा दिया। अनाज का ढेर लगाने में नेरा की कल्पनाशक्ति को आनन्द से भर दिया।

पागल की भांति वह हँसा और उस ढेर में बड़े प्यार से हाथ फेरने लगा। इतने में बाहर किसी की पद्चाप सुनाई पड़ा। वह चौंका। कांप ही तो उठा। ऐसा लगा कोई बिल्ली भागी है। उसने सोचा, अधिक देर यहां नहीं रुकना चाहिए।

भूख के कारण उसकी आकुलता बढ़ गई अब भोजन पके कैसे? कच्चा खाया जायगा? ऐसे कई प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठ खड़े हुए। उसका मस्तिष्क उन्मादी-सा हो गया, ऐसा लगा मानो कोई तार टूट गया हो। पशु की लोलुपता से वह वहां पड़े हुए ढेर में से दो मुट्ठी भरकर खाने लगा। हँसा और फिर खाता ही चला गया। कच्चा आटा, चावल, दाल बड़े वेग से लुप्त होने लगे।

अन्त में वह थक गया, गले में कुछ बेचैनी होने लगी। एक बार खांसी आने से मुंह में का आटा चारों ओर फैल गया। उसने फिर खाना आरम्भ किया। बेचैनी के कारण गले से नीचे कुछ उतर नहीं सका। उसके पेट में पीड़ा होने लगी। उठने की शक्ति न रही इस-लिए वह वहां अनाज पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद कच्चे दानों ने भी अपना प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। उसके पेट में, गले में, कच्चे अनाज ने तांडव नृत्य प्रारम्भ कर दिया। उसकी आंखें निस्तेज हो गईं। उसने उठने का प्रयत्न किया किन्तु उठते ही गिर पड़ा। गिरते ही उलटी हुई, वर्षों मौन रहकर दासता करने वाली देह ने अंत में क्रांति कर दी। क्रांति ने घोर विप्लव का रूप धारण कर लिया।

मणिभद्र पिछले चबूतरे पर सोया हुआ था। वह एकदम उठा, कोठार से किसी बीमार का स्वर सुनाई पड़ा। वह दौड़कर आया। कोठार में कोई व्याकुल होकर मर रहा था। उसने मशाल जलाई और कोठार की ओर गया।

अनाज और आटे के ढेर में लौटता, समुद्र की तरंगों में नए तारे के हिलने-डोलने के समान अकुलाता, घबराता नेरा छटपटा रहा था·· कोठार कोढ़ के समान हो गया था। सारा अनाज निरर्थक हो गया था। उसके हाथ से मशाल गिर पड़ी और वह नेरा को उठाने के लिए दौड़ पड़ा।

## ३५

कच्ची नींद से मंजरी जाग पड़ी। ऐसा लगा मानो बाहर कोला-हल हो रहा हो। उसका हृदय धड़क उठा। उसने भी आज एक ही समय खाया था इसलिए उसके सिर में कुछ पीड़ा थी।

मंजरी ने बच्चों की ओर देखा। महाश्वेता और वीसरि दोनों पुष्पलताओं की भांति एक दूसरे से चिपटकर सोये हुए थे। पल-भर के लिए माँ का हृदय स्नेह से उमड़ पड़ा।

वह उठी, दीपक जलाया और फिर पुकारा, 'गंगली !'

गंगली एकदम चौंककर उठ बैठी, 'देवी !'

'कुछ कोलाहल सुनाई दे रहा है।'

गंगली दौड़ कर ऊपर गई और खिड़की में से झुककर नीचे देखा 'रसोई घर के निकट कुछ गड़बड़ है। ठहरिए, मैं देख आती हूँ।'

'नहीं,' मंजरी ने आज्ञा दी। 'तू यहाँ बच्चों के निकट बैठ। मैं देख आती हूँ।' कहकर कन्धे पर आंचल डालकर वह जल्दी-जल्दी रसोईघर की ओर चली।

वहाँ मणिभद्र और देवा छटपटाते नेरा को चबूतरे के नीचे लिटा रहे थे।

'मणिभद्र !'

'अरे, देवी ! आप यहां कैसे ? तुरंत लौट जाइए। इधर आने जैसा नहीं है।'

'क्यों, है क्या ?'

'कुछ नहीं' देवी ने कहा, 'यह हरामखोर कोठार में घुस गया था।'

मंजरी ने छटपटाते हुए नेरा की ओर देखा। वह कुछ-कुछ होश में था। कोठार में से भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। कुछ सोचकर मंजरी चबूतरे पर चढ़ी और कोठार में झांका। मंजरी को घृणा हो आई और वह एक-दम पीछे हट गई। उसका सिर चकराने लगा।

'देवी ! यह आपका काम नहीं है, आप जाइए।' मणिभद्र ने प्रार्थना की।

अन्त में वह थक गया, गले में कुछ बेचैनी होने लगी। एक बार खांसी आने से मुंह में का आटा चारों ओर फैल गया। उसने फिर खाना आरम्भ किया। बेचैनी के कारण गले से नीचे कुछ उतर नहीं सका। उसके पेट में पीड़ा होने लगी। उठने की शक्ति न रही इसलिए वह वहां अनाज पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद कच्चे दानों ने भी अपना प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। उसके पेट में, गले में, कच्चे अनाज ने तांडव नृत्य प्रारम्भ कर दिया। उसकी आंखें निस्तेज हो गईं। उसने उठने का प्रयत्न किया किन्तु उठते ही गिर पड़ा। गिरते ही उलटी हुई, वर्षों मौन रहकर दासता करने वाली देह ने अंत में क्रांति कर दी। क्रांति ने घोर विप्लव का रूप धारण कर लिया।

मणिभद्र पिछले चबूतरे पर सोया हुआ था। वह एकदम उठा, कोठार से किसी बीमार का स्वर सुनाई पड़ा। वह दौड़कर आया। कोठार में कोई व्याकुल होकर मर रहा था। उसने मशाल जलाई और कोठार की ओर गया।

अनाज और आटे के ढेर में लौटता, समुद्र की तरंगों में नए तारे के हिलने-डोलने के समान अकुलाता, घबराता नेरा छटपटा रहा था··· कोठार कोढ़ के समान हो गया था। सारा अनाज निरर्थक हो गया था। उसके हाथ से मशाल गिर पड़ी और वह नेरा को उठाने के लिए दौड़ पड़ा।

## ३५

कच्ची नींद से मंजरी जाग पड़ी। ऐसा लगा मानो बाहर कोलाहल हो रहा हो। उसका हृदय धड़क उठा। उसने भी आज एक ही समय खाया था इसलिए उसके सिर में कुछ पीड़ा थी।

मंजरी ने बच्चों की ओर देखा। महाश्वेता और वौसरि दोनों पुष्पलताओं की भांति एक दूसरे से चिपटकर सोये हुए थे। पल-भर के लिए माँ का हृदय स्नेह से उमड़ पड़ा।

वह उठी, दीपक जलाया और फिर पुकारा, 'गंगली !'

गंगली एकदम चौंककर उठ बैठी, 'देवी !'

'कुछ कोलाहल सुनाई दे रहा है।'

गंगली दौड़ कर ऊपर गई और खिड़की में से झुककर नीचे देखा 'रसोई घर के निकट कुछ गड़बड़ है। ठहरिए, मैं देख आती हूँ।'

'नहीं,' मंजरी ने आज्ञा दी। 'तू यहाँ बच्चों के निकट बैठ। मैं देख आती हूँ।' कहकर कन्धे पर आंचल डालकर वह जल्दी-जल्दी रसोईघर की ओर चली।

वहाँ मणिभद्र और देवा छटपटाते नेरा को चबूतरे के नीचे लिटा रहे थे।

'मणिभद्र !'

'अरे, देवी ! आप यहां कैसे ? तुरंत लौट जाइए। इधर आने जैसा नहीं है।'

'क्यों, है क्या ?'

'कुछ नहीं' देवी ने कहा, 'यह हरामखोर कोठार में घुस गया था।'

मंजरी ने छटपटाते हुए नेरा की ओर देखा। वह कुछ-कुछ होश में था। कोठार में से भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। कुछ सोचकर मंजरी चबूतरे पर चढ़ी और कोठार में झांका। मंजरी को घृणा हो आई और वह एक-दम पीछे हट गई। उसका सिर चकराने लगा।

'देवी ! यह आपका काम नहीं हैं, आप जाइए।' मणिभद्र ने प्रार्थना की।

'कितना अनाज बिगड़ा ?' मंजरी का हृदय बैठने लगा।

'जितना बच जाय बस उतना ही सही।' खेद भरी वाणी में मणिभद्र बोला। उसके स्वर में निराशा थी।

मंजरी समझ गई और वहाँ से चली आई। उसे लगा कि दुर्भाग्य ने आखिरी वार किया है। वह कुछ भी निश्चत न कर सकी।

अपने कक्ष जाकर उसने गंगली को भेजा, 'देख, तेरा नेरा वहाँ छटपटा रहा है। उसने जाकर कोठार भी बिगाड़ दिया है।'

'मरे......।' भृगुकच्छ के तेलीबाड़े के शब्दकोष का प्रदर्शन करती हुई गंगली उठ गई।

मंजरी हताश होकर बैठ गई। कम खाकर पन्द्रह दिन तक गढ़ को टिकाये रखने की उसकी कामना नष्ट हो गई। नेरा द्वारा किया हुआ थोड़ा-बहुत विनाश उसने देखा था, और शेष की उसने कल्पना कर ली। पन्द्रह दिवस छोड़ पाँच दिवस भी टिका जा सकेगा या नहीं, प्रश्न केवल यह था। 'दुर्भाग्य, तूने क्या सोचा है ? उसने प्रश्न किया और सिर पर हाथ रख लिया। भूख और निराशा से उसका माथा फट रहा था 'नाथ ! जल्दी न लौटोगे ?' उसने दीनता से आकाश की ओर देखकर अपने काक का स्मरण किया।

बच्चों की ओर देखा। कितने सुहाने, सुन्दर बच्चे ! कितने सुन्दर स्वप्न देख रहे होंगे अभी ! उनके नन्हें हृदय में माता और पिता के प्रति श्रद्धा थी। उन्हें विश्वास था कि उनका प्रतापी पिता अवश्य आ पहुँचेगा। किन्तु यह श्रद्धा और विश्वास......?

उसके निर्दोष बच्चे, उसका वीर पति, उसकी भावना, उसका प्रेम—सबका मानो अंत आ पहुँचा था। बच्चे व्याकुल थे, पति सम्भवत: कारागार में सड़ रहा हो या युद्ध में काम आ गया होगा। उसकी भावना उसका प्रेम, उसके सभी स्वप्न अभी-अभी एक सैनिक ने धूल में मिला दिये थे। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

क्या खाने का सब कुछ समाप्त हो जायगा ? क्या वह सब भूखे मर जायँगे ? क्या उसका पति सचमुच शीघ्र नहीं लौटेगा ? सबका यह अंत ? उसने कपाल पर हाथ मारा और जाने कब तक रोती रही। महाश्वेता के मुख पर हास्य छा रहा था। नीचे झुककर उसने धीरे-से

अपनी कन्या को चूम लिया। वह काँप उठी। अकस्मात् कुछ हो जाय और उनकी रक्षा हो जाय तो ठीक, नहीं तो—'नाथ! नाथ तुम्हें देखने तक नहीं पाएंगे!' उसका हृदय चित्कार उठा।

क्या वह अपनी टेक, अपना अभिमान तोड़ दे? बच्चों को लेकर बेनां के पास चली जाती है तो अवश्य उनकी रक्षा हो जाती है। उसकी नाक गर्व से फूल उठी। लाड़-प्यार से पले हुए बच्चे शत्रु के यहां दीन-हीन बनकर रहें? और वह—काक की पत्नी—संरक्षण की याचना करे? उसकी विशाल आंखें गर्व से दीप्त हो उठीं।

वह कभी गढ़ नहीं छोड़ेगी। उसके होंठ गर्व से बन्द हो गये। यह गढ़ काक की वीरता की प्रतिनिधि थी। स्वयं—काक की दुर्जयता की उत्तराधिकारिणी—इस समय इसकी शरण छोड़ कर चली जाय? नहीं। काक की निष्कलंक कीर्ति के अवतार के समान वह प्राण रहते इसी गढ़ में रहेगी।

किन्तु इन बच्चों को तो यहां से हटा ही देना होगा। आंबड़ गढ़ छोड़कर शायद ही जाय। देवा या मणिभद्र भृगुकच्छ में छिपाने की कोई व्यवस्था नहीं कर सकते थे। तो क्या इन बच्चों को तेलन के भरोसे छोड़ दे? उसकी छाती कांप उठी। उसके सलोने बच्चे इस असंस्कृत तेलन की शरण लें?

बहुत विचार किया किन्तु कोई मार्ग सूझता ही नहीं था। उसका हृदय फटने लगा। वह रह-रहकर भविष्य के भय से कांप उठती थी। इन सुकुमार बच्चों को त्यागना होगा? क्या फिर उनके मृदुल मनोहर मुख न देख सकेगी? उत्तर मिलने से पहले वह रो पड़ी।

उसने रोना बन्द किया। वह अपने पति की अर्धांगिनी थी। उस की कीर्ति के लिए अपने प्राण देना उसका कर्तव्य था। किन्तु इन बच्चों की रक्षा?

'पतिदेव! भूल कर रही हूँ तो क्षमा करना।' वह रो पड़ी, 'क्षमा मांगने के लिए सम्भव है जीवित न रह सकूं।

उसने बच्चों को भेज ही देने का ही निश्चय किया। न जाने कब तक वह उनकी ओर देखती रही। इतने वर्षों से उनके मुख की अनदेखी रेखाओं को तल्लीनता से मन में उतारने लगी। 'कैसी माँ हूँ मैं ? अपने गर्व के लिये इन शिशुओं के प्राण संकट में डाल रही हूं। इनका क्या होगा ?' उसकी आंखों से फिर आंसुओं की झड़ी लग गई। उसके मन में एक प्रश्न उठा—'मैं किसकी ? अपने दुर्गपाल की या जिन्हें जन्म दिया उन बच्चों की ?' देर तक वह मौन बैठी रही। जननी तुम्हारा रक्षण न करेगी ? नहीं—नहीं—नहीं। मैं तुम्हारी नहीं इनकी हूँ। तुम प्यारे हो उससे अधिक यह प्यारे हैं। तुम्हारे बिना चल सकता है इनके बिना नहीं···मेरे नाथ ने मुझे दोनों सौंपे हैं—उनकी कीर्ति और उनके बच्चे। बच्चों को छोड़ा जा सकता हैं ? कीर्ति कीर्ति ! लोग आज स्मरण करेंगे कल भूल जायेंगे। बच्चे भी आज हैं कल नहीं। हाय ! हाय !' 'मैं माँ नहीं चुड़ैल हूँ।'

'मैं विश्वासघातिनी हूँ ? इसलिये मुझे बच्चे प्यारे हैं ; मुझे कीर्ति भी प्रिय है क्योंकि मैं अर्धांगिनी हूँ। ओह माँ बनूं कि अर्धांगिनी रेवा माँ !' वह फिर रो पड़ी, 'कुछ तो मार्ग दिखाओ।'

'मां—मां—मां ! किसलिये मां बनूं ? बचपन से स्वप्नों में मैंने अपने काल्पनिक पति की सेवा की। जन्म से ही मैं मन में अपने वीर की अर्धांगिनी बनी हूँ। मेरा वीर—मेरा वीर अन्त में आया और मैंने उसे प्राणों से भी अधिक समझा। मेरा जीवन सफल हो गया। मेरे स्वप्न सत्य हो गये। वीर काक की मैं अर्धांगिनी हुई। मैं उनकी अर्धांगिनी हूं—और कुछ नहीं होना चाहती। नन्हो ! मेरी आँखों के तारो ! तुम्हारी मां पीछे—अपने वीर की अर्धांगिनी पहले ! मैं—मंजरी—काक की पत्नी—और कुछ नहीं।' उसने आँसू पोंछ लिए। 'मेरे नाथ मुझे इस जन्म में और जन्म-जन्मान्तर में, और कुछ नहीं चाहिये, हाँ हूँ अपने नाथ की वीरांगना !' वह उठ खड़ी हुई।

पूरब में राजपीपला के कंगूरों पर उषा का प्रकाश फैल रहा था।

## ३६

मन्दिर में जाने कब तक वह उमापति की आराधना करती रही स्तवन, पुष्प और प्रार्थना द्वारा महादेव की याचना की सहायता करती रही। धीरे-धीरे उसके अन्तर में शांति रमने लगी। रात को जो भय सीमाहीन हो उठा था वह इस समय शांत मन्दिर में निरर्थक लगने लगा जो हो ठीक है,उसने अपना, अपने बच्चों का और अपने पति का भविष्य महादेव के हाथों सौंप दिया।

जब वह मन्दिर से बाहर निकली तो आंबड़ मेहता उसकी प्रतीक्षा में खड़ा हुआ था। वह भी निस्तेज था, उसकी आंखें चिन्ताग्रस्त थीं।

'देवी सब सुन लिया न ?' उसने खिन्न वाणी में पूछा।

'हां भाई ! मैंने तो देख भी लिया था। रात ही को उठकर देख आई थी। भाग्य ही प्रतिकूल जान पड़ता है।

'अब क्या करेंगे ?' आंबड़ ने पूछा।

'कुछ खाने के लिये बचा है ?'

'मणिभद्र-और गंगली ने बड़ी कठिनाई से धो-धोकर कुछ दाल-चावल अलग किये हैं। इन्हें सूखने डाल दिया है।'

'अच्छा।' उन्हें सेंकने से काम चलेगा।' स्वच्छता की परमपुजारिणी ने साहस से कहा।

'चलिए, देख आएँ।'

वह दोनों धीरे-धीरे म्लान मुख से रसोईघर में गये। वहां सारी रात परिश्रम करके गंगली ने सब धोकर लीप दिया था। चबूतरे पर कुछ दाल-चावल सूखने को पड़े थे।

'मणिभद्र !' आंबड़ बोला, 'बस इतना ही है ?'

'हां, बापू।' निःश्वास भर कर मणिभद्र रसोई से बाहर चला गया।

गंगली बाहर बच्चों के लिये पानी गरम करने के लिये चूल्हा सुलगा रही थी। वह आई। दूर बैठा देवा सब को इकट्ठे देखकर निकट चला

आया सभी के मुखों पर निराशा थी। अब क्या होगा, यही चिंता सब की आंखों में, सबके मुखों पर, सब की वाणी में स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। सब बिना बोले ही समझ गये कि जीवन-मृत्यु का प्रश्न सब सन्मुख है।

'सब एक बार भी खायं तो दो दिन से अधिक नहीं चलने का।' अन्त में मंजरी ने गला ठीक करके कहा।

भयंकर शांति छाई हुई थी। इस शांति से उत्पन्न व्याकुलता दूर करने के लिये थोड़ी देर बाद मणिभद्र ने ठण्डी आह भरते हुए कहा, 'अधिक-से-अधिक तीन दिन बस—हर भोलानाथ!'

'नेरा कैसा है?' मंजरी ने पूछा।

'उस झोंपड़ी में डाल दिया है। उसका जी ठिकाने नहीं है तेलन ने उत्तर दिया।

'अब क्या करेंगे?' आंबड़ मेहता ने प्रश्न किया। सभी के मस्तिष्क में यही प्रश्न था किन्तु कोई पूछ नहीं पा रहा था।

'भाई! तुमने मुझे गांव में ले जाकर छिपने की सलाह दी थी न?' मंजरी ने पूछा।

'हाँ!' हठ छोड़कर मंजरी बच जायगी ऐसी आशा से आँबड़ का हृदग खिल उठा। मनुष्य हृदय विचित्र होता है। मंजरी को उसी क्षण लगा मानो वह गौरव-भ्रष्ट हो गई है। 'तुम्हें.........।'

'नहीं।' मंजरी बीच ही में बोल उठी।

'बच्चों को यदि गंगली गांव में ले जाकर छिपा दें तो कैसा?' परन्तु आप?' मणिभद्र ने कहा।

'मेरी चिंता मत करो भाई। मंजरी ने गर्व से कहा।' 'मैं तो यहीं तेरे भाई के दुर्ग में रहूँगी।' देवा की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। छोटे बच्चे के समान उसने हाथ से आंसू पोंछ लिये।

'आँबड़ महेता! क्या विचार है?' सहज स्वर में उसने फिर पूछा।

आंबड़ के हृदय में गर्व की तरंगें उठ रही थीं। वह बोला 'तुम मानवी हो या देवी, यह आज तक मैं नहीं समझ पाया। क्यों व्यर्थ हठ

कर रही हो ?' बच्चों को आश्रयहीन कर रही हो और प्राण भी जोखिम में डाल रही हो।'

'भाई !' मृदुलता से मंजरी ने कहा, 'मैं रात-भर विचार करती रही हूं। गंगली यहाँ आई है यह कोई नहीं जानता। तेलीवाड़े में मेरे बच्चों को खोजने कोई जायगा भी नहीं, किसी को कोई डर न रहेगा। रहे हम लोग, सो यहीं पड़े रहेंगे।' कह कर उसने गर्व से अपने तेजस्वी देह की ओर देखा, 'हम चलेंगे तो उलटे बच्चे भी पकड़े जायेंगे।'

'मैं तो जाऊंगा ही नहीं, जब तक पाटण की ध्वजा यहां फहरा रही है तब तक यहां का सत्ताधीश मैं हूं।'

'तो भाई !' मंजरी ने भावावेश से कांपती हुई वाणी में कहा, 'तुम्हें तो दूसरों की टेक की रक्षा करनी हैं, परन्तु मुझे तो अपनी ही टेक की रक्षा करनी है। मैं कैसे जाऊं ?'

'किन्तु तब होगा क्या ?'

'होगा क्या ? कुछ दिवस पश्चात् आंबड़ महेता इस कुक्कुट-ध्वज की रक्षा करते हुए प्राण देंगे और मैं, दूर नहीं जाती मंजरी के गले में स्वर रुंध गया। उसने गला खंखार कर कहा—'नौका की प्रतीक्षा करते हुए देह त्याग दूंगी।' मंजरी के क्षीण मुख पर दृढ़ता थी। दुःख में, खेद में, निर्बलता में भी वह लक्ष्मी के समान ही तेजस्वी थी।

'देवी ! जहां आप वहां मैं। हर भोलानाथ ! आपके चरणों की रज सिर चढ़ाकर मर जाऊंगा।' मणिभद्र ने हंसने का उपक्रम किया।

आंबड़ से बोला न गया। उसकी दृष्टि के सन्मुख संपूर्ण संसार तैर रहा था।

'गंगली ! तुझसे यह हो सकेगा ?'

गंगली इस तेजस्वी स्त्री की ओर देखने लगी। उसका असंस्कृत हृदय सम्मान और सेवा के भाव से गद्गद् हो आया।

'देवी ! चिन्ता मत करो। मैं 'कीकाभाई' और 'कीकी बहन' की

जब तक देह में प्राण हैं तब तक रक्षा करूंगी। परन्तु गाँव में जाऊँगी कैसे ?'

'चौकी पार करना सहज काम है ।' देवा ने कहा ।

'फिर ठीक है, रात को गांव में जाना भी सरल होगा ।' गंगली ने कहा ।

'और इतने में यदि दुर्गपाल आ पहुंचे तो फिर कोई चिन्ता नहीं—अमर आशा को व्यक्त करते-करते मंजरी का मुख पुलक उठा, 'गंगली ! उस नेरा का क्या होगा ?'

'देवी ! तनिक भी न घबराओ,' हँसकर गंगली ने कहा , 'उसे कुछ नहीं होगा, और होगा भी तो नायक सब ठीक कर देगा ।' मंजरी इस स्त्री की सेवा-वृत्ति और उसके कठोर हृदय दोनों को ठीक से न समझ सकी ।

'चलो, मैं बच्चों को उठाती हूँ ।' कहकर मंजरी वहां से चल दी । मौन होकर आंबड़ महेता उसके साथ हो लिया । 'भाई !' कुछ देर पश्चात् मंजरी ने म्लान मुख से हँसकर कहा—'चिंता क्यों करते हो ? देवा मां ने जो सोचा होगा ।

'देवी ! किन्तु आपको कु······।'

'मुझे कुछ नहीं होने का । तुम पाटण के लिए, और मैं अपने पति के लिए मृत्यु- पर्यन्त इस गढ़ में रहेंगे । जाओ अब स्नानादि से निवृत्त हो लो निराश होने से भला क्या होगा ?' मंजरी अपने स्थान पर चली गई

आंबड़ देखता रहा । 'कैसा रूप और गुण !' उसके मुख पर श्रद्धा और भक्ति का पवित्र भाव छा गया । 'निश्चय ही देवी रेवा माँ की अवतार हैं ।' और वह नर्मदा की ओर देखकर वहाँ से चल पड़ा ।

मंजरी ऊपर गई और सोते हुए बच्चों की ओर कुछ देर तक देखती रही ।

वह दोनों बच्चों के बीच में सो गई, धीरे-से दोनों के सिर के बीच

में अपना सिर रखकर दोनों पर एक-एक हाथ रख दिया। दोनों बच्चों ने आँखें खोलकर मां का सिर देखा तो हँस पड़े। मंजरी ने पड़े-पड़े दोनों के सिर दो हाथों में लेकर छाती से चिपटा लिए।

'उठो रे, अब तक सो रहे हो?' उसने हँसते-हँसते कहा। हँसने के लिए भी उसे यत्न करना पड़ा था, किन्तु बच्चे यह बात न परख सके। उसके आलिंगन में मातृहृदय की उमड़ती भावनाएं थीं।

बच्चों से आज उसकी अंतिम भेंट थी। आज से वह दयाहीन पराए लोगों की शरण में चले जायेंगे, माता की यह भाव-भरी दृष्टि फिर कभी उन पर न पड़ेगी, अंतर की वेदना का अनुभव कर वह उठ बैठी और दोनों को बाहों में बांध लिया।

बच्चों को नहलाने के लिए वह उन्हें कुएं पर ले गई। गंगली गरम पानी ले आई। रह-रहकर उसने उनकी ओर देखा, उन्हें मल-मल कर स्नान कराया। स्नान से स्वच्छ और तेजस्वी हुए बच्चों को वह गर्व से देखती रही। वह उन्हें कभी स्नान न करा सकेगी, यह सोचकर उसका हृदय फटने लगा। बच्चे न देख सकें इस प्रकार सिर नीचा करके उसने आंसू पोंछे और बच्चों का चुम्बन किया।

उन्हें वह महादेव के मन्दिर में ले गई।

'बेटी महाश्वेता!' उसने लड़की से कहा, 'तुझे और 'कीकाभाई' को आज गंगली के साथ गांव जाना होगा।'

'और तुम?' महाश्वेता ने करुणापूर्ण मुख से माँ की ओर देखा। वौसरि पूरी बात भी समझ न पाया किन्तु आंखें फाड़कर उत्सुकता अवश्य प्रकट कर रहा था।

'मैं यहीं रहूँगी,' मंजरी ने कहा। वह सिसक उठना चाहती थी किन्तु किसी प्रकार उसने अपने को वश में किया। 'और तेरे पिता जा आयेंगे तो आऊंगी, अच्छा!'

'पिता जी कब आयेंगे?' वौसरि ने तुतलाती वाणी में पूछा।

'भाई, कल आयेंगे।' मंजरी ने उनके सिर पर हाथ फेरा।

'तो हम भी कल जायें तो ?'

'नहीं भाई ! जाना आज ही पड़ेगा । तू तो समझदार है न ? युद्ध का समय है । गंगली तुझे सम्भालकर रखेगी ।'

'अपने घर वौसरि ने पूछा ।

'नही, गंगलीं के घर । इसका घर भी बहुत अच्छा है, चलो ।' मंजरी अब और अपने को सम्भाल नहीं सकी । किसी प्रकार आँसू रोककर वह बच्चों को लेकर अपने कक्ष में आई । महाश्वेता माधुर्य का अवतार थी । क्या बोले यह उसे न सूझा, किन्तु आँसुओं से सजी हुई आंखें देखकर उसके नन्हे हृदय को चोट लगीं । चोटी हिलाते-हिलाते उसके मस्तिष्क में न जाने कैसे-कैसे विचार आए ।

'मां !' उसने साहस से गर्दन ऊपर उठाकर पूछा, 'और पिता जी कल न आयेंगे तो ?'

मंजरी का मुंह पीला पड़ गया किसी प्र ार साहस बांधकर उसने कहा 'आयेंगे क्यों नहीं ?' उसने साहस प्रकट किया । 'देख बेटी ! तू तो बड़ी है । भाई का ध्यान रखना, हां ! इसे कष्ट मत देना ।'

'माँ, मैं नहीं जाऊंगा ।' वौसरि ने अपना निर्णय दिया ।

'छि क्या पागल हो गया है ? देख, माँ का कहना मानेगा न ?'

'नहीं, मैं नहीं जाऊँगा ।' लड़के ने कहा ।

मंजरी से नहीं रहा गया । वह सुबक कर रो उठी ।

'माँ ! तू रोती क्यों है ?' वौसरि ने पूछा ।

'तू मेरी बात नहीं मानता इसलिए ।' मंजरी रो पड़ी ।

'मां ! मानूँगा, माँ ! मानूँगा । माँ मैं जाऊंगा ।' बौसरि ने मंजरी की ठोड़ी पकड़कर उसकी गर्दन घुमाई । वह हँस रहा था । जाना तो उसके लिए खेल था मां प्रसन्न हो जाय और खेल-का-खेल हो जाय, इन दो बातों में उसे कोई हानि नहीं दिखाई पड़ी ।

'मेरा अच्छा समझदार भाई ! चलो, हम कोट पर घूम आवें ।'

मंजरी बच्चों को लेकर घूमने गई । उसने बच्चों को दौड़ाया,

खिलाया और हँसाया। प्रतिपल उसे लग रहा था कि मातृत्व सुख का आज यह अंतिम दिवस है। बच्चे थक गए थे; वह उन्हें लौटाकर ले आई।

मणिभद्र मामा बच्चों के लिए खाने को ले आए जिसे उन्होंने खाया, ज्यों-त्यों करके दोपहर में मंजरी ने उन्हें सुला दिया। दोनों बच्चे व्याकुल थे अतः रह-रहकर जाग पड़ते थे और नींद में उसाँसें भरते थे।

मंजरी ने भी भोजन किया और फिर थकी-हारी मन को किसी दूसरी ओर लगाने के लिए लेट गई। आज सम्पूर्ण गढ़ में उदासी छाई हुई थी। कोई किसी के साथ बोल नहीं रहा था। सभी मंजरी के मन की व्यथा समझते थे और मौन रहकर ही अपनी सहानुभूति प्रकट कर सकते थे।

बच्चों को छोड़कर मरना बहुत ही करुणप्रद है। किन्तु बच्चों को अपने सामने ही प्राण देते देखना तो इससे भी अधिक करुणप्रद है; और बच्चों को स्वेच्छा से त्याग देने की व्यथा तो अकल्पनीय है। जैसे-जैसे उनके जाने का समय निकट आने लगा वैसे-वैसे मंजरी के हृदय के तार खिच-खिचकर टूटने की तैयारी करने लगे। उसके अंतर में एक व्यथा तो थी नहीं, हजारों थीं। दुःखों का कोल्हू पल-पल उसके प्राणों को पीस रहा था।

बच्चों को वह फिर नहीं देख सकेगी, उनकी किलकारियाँ फिर न सुन सकेगी, उनकी हँसी के साथ हँस नहीं सकेगी। अपने ही हाथों उन्हें निराधार, पराश्रित बनाकर स्नेहहीन जगत में भटकने के लिए छोड़ देने से और बड़ी क्या व्यथा हो सकती है? अब किसके पास बच्चे रोएंगे। किसके पास हठ करेंगे? किसकी गोद में चढ़ कर बैठेंगे? और स्वयं की बच्चों के होते हुए उसकी बाँझ से निकृष्ट दशा हो जायेगी। बच्चों के बिना वह जिएगी कैसे?

उसने धरती पर सिर रखकर अपनी कनपटी दबाई। 'कल मुझे

माँ कहकर कौन बुलाएगा ? और कल तुम्हारा क्या हाल होगा ?'
उसकी आंखें सजल हो गईं। 'मैंने तुम्हें जन्म दिया और आज इस प्रकार निराधार कर रही हूँ, मेरे जैसी अभागी माँ कोई होगी ?...... कितने सुन्दर हैं ?' ऐसे बच्चों की माता कितनी भाग्यशाली होती होगी ?'

'हाँ, इस समय मैं भाग्यशाली हूँ, रात को हतभागी हो जाऊँगी। लाड़लो ! किसी दिवस मुझे याद तो करोगे न ?

सूर्य अस्त हो गया। मंजरी रो-रोकर थक गई। बच्चों को भोजन कराया, वस्त्र पहिनाए। वह बच्चों को लेकर गढ़ पर चढ़ गई और एक टक पश्चिम दिशा की ओर देखने लगी। नदी के सम्पूर्ण पाट पर एक बगुला तक नहीं दिखाई पड़रहा था। वह व्याकुल हो उठी।

'माँ ! क्या देख रही हो ?'

'तेरे पिता जी इस समय आने वाले हैं।' मंजरी ने सुनाई पड़ने वाली वाणी में कहा।

'आ गए ?' वौसरि ने पूछा।

'नहीं।'

वह बहुत देर तक खड़ी नदी की ओर देखती खड़ी रही। बच्चों के साथ बोलने का उसमें साहस न रहा। वहाँ से हटकर वह देवल के चबूतरे पर बैठ गई।

संध्या होते ही आँबड़ महेता, मणिभद्र और गंगली आये।

'समय हो गया ?' कांपते स्वर में मंजरी ने पूछा।

'नहीं अभी समय है। देवा तैयार होने गया है।'

'मां ! जाने का समय हो गया क्या ?' महाश्वेता ने पूछा।

'हाँ, बेटी। गंगली ! तैयार हो गई ?'

'गंगली !' आँबड़ ने कहा, 'ले यह कड़ा। यदि मुझे कोई आवश्यकता हो तो मेरा भाई वाहड़ महेता है। खम्भात में खोजने पर मिल जायगा। उसे यह कड़ा देना। तेरी वह हर प्रकार से सहायता

करेगा ।'

गंगली ने कड़ा ले लिया और चुपचाप कमर में बांध लिया ।

'जितना शीघ्र हो सके पाटण जाकर त्रिभुवनपाल महाराज की रानी काश्मीरा देवी को बच्चे सौंप आना ।' मंजरी ने कहा ।

'अच्छा देवी ! आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिएगा । भोलानाथ करेंगे तो सब ठीक हो जायेगा ।' तेलन की आंखों में भी आंसू आ गए ।

वौसरि ने जमुहाई ली । 'थोड़ी देर हो जाय तो चिन्ता नहीं, इसे तनिक सुला लूं ।' कहकर मंजरी कुछ खिसकी और थोड़ी दूर बैठकर वौसरि को थपथपाकर सुलाने लगी ।

मंजरी को लगा मानो वह स्वयं अपने पुत्र के गले पर कटार फेर रही हो । थोड़ी दर में वौसरि सो गया ।

'बेटी महाश्वेता !' मंजरी ने आलिंगन करते हुए कहा, 'जाते समय रोना मत, हां ! तू तो वीर है न ?'

'मां !' महाश्वेता रो पड़ी । 'तुम्हारे बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगेगा ?'

'तेरे पिता जी के आते ही मैं आ तो जाऊंगी । देख तू तो समझदार है भाई को संभालना और काश्मीरा देवी के यहां सयानी बनकर रहना और तेरे पिता जी··· ।' बात बदलकर वह बोली 'देख तेरे पिताजी आयें तो उनकी सेवा करना, मेरी लाड़ली !'

'······मां तुम ?' अधीर होकर सुबकते हुए महाश्वेता ने पूछा ।

'मैं न आऊं—तो—मुझे···भूल मत जाना बेटी ।' मंजरी सिसक उठी । साहस करके उसने आंसू रोक लिए और वौसरि को उठा लिया ।

उसकी आंखों में स्थिर तेज प्रकट हुआ । गर्दन ऊंची करके दृढ़ता से वह द्वार तक गई और वौसरि को गंगली के हाथों पर रख दिया ।

'गंगली !' मेरे प्यार में पले फूलों को संभालना।' मंजरी ने निःश्वास लिया। सबकी आँखें सजल हो गई।

'देवा !' आँबड़ ने कहा, 'पथ में असुविधा तो नहीं होगी न ? न हो तो मैं आऊँ।'

'बापू ! चिन्ता मत करो। गंगली को ठीक स्थान पर पहुंचाकर ही लौटूंगा।'

देवा खिड़की खोलकर बाहर गया और वौसरि को थाम लिया। इसके बाद महाश्वेता को बाहर लिया। उस वीर बालिका ने एक शब्द बोले बिना हाथों ही से माँ से विदा मांगी।

उसके नन्हें नासमझ हृदय में इस समय न जाने क्या-क्या उठ रहा होगा ? यही तो समझ नहीं पड़ता था ?

'बेटी ! अच्छी तरह रहना !' मंजरी ने कहा। देवा ने खिड़की बन्द की और आँबड़ ने अंदर से ताला लगा दिया।

मंजरी अधिक समय तक वहाँ खड़ी नहीं रह सकी। वह अकेली जल्दी-जल्दी गढ़ के कंगूरे पर चली गई।

इतने में अपार शोक में कोई उसे सांत्वना देने का भी साहस नहीं कर सका।

## ३७

जिस प्रकार हिंसक पशु की आँखों की ओर देखकर उसका अहेरी उस पर से दृष्टि नहीं हटा सकता उसी प्रकार मंजरी नदी में चांदनी के प्रतिबिम्ब पर से न हटा सकी। चांदनी और उसके प्रतिबिम्ब से तो उसकी पुरानी मैत्री थी। भृगुकच्छ आने के पश्चात् शायद ही कोई ऐसी पूर्णिमा बीती हो जिसके अल्हाद का आस्वादन उसने न किया हो इस समय वह कटु लगते हुए भी आकर्षक लग रही थी।

एक विचित्र प्रकार की शून्यता उसके हृदय में व्याप्त हो गयी थी। न वह विचार कर सकती थी, न भावनाएं ही जागरित हो रही थीं। प्रस्तर मूर्ति की भाँति वह खड़ी रही। उसकी निस्तेज आंखें नदी के ज्योत्स्नामय पाट पर टिकी हुई थीं।

नेरा द्वारा किए गए विनाश में से बचे हुए दाल-चावल की उबाल बनाई हुई 'राबड़ी' मात्र ही उसने दुपहर को पी थी। सम्पूर्ण दिन गहन चिन्ता ही में कटा था। सन्ध्या को मन की स्थिरता बनाये रखने के लिए उसने भारी प्रयत्न किया था। इस समय उसके पेट और माथे पर शारीरिक निर्बलता अपना प्रभाव दिखा रही थी किन्तु इस ओर ध्यान दे सके इतनी चेतना उसे न थी। दुखों ने उसे जड़ बना दिया था।

एक भटका हुआ पंछी फड़-फड़ करता हुआ कोट से टकरा कर उड़ गया। उसकी फड़फड़ाहट से मंजरी की जड़ता भंग हुई। उसने घबरा-कर चारों ओर देखा, और धड़कते हृदय को हाथों से दबाया। उसकी सब भावनाएं तीव्र हो उठीं। भूख, अस्वस्थता, निःसहायावस्था, वात्सल्यपीड़ा, पति विरह सभी भावनाओं का उसे ध्यान हुआ। कोट पकढ़कर वह जड़ बनी खड़ी रही। उसके दुखों का कहीं भी तो कूल-किनारा नहीं था।

वह धीमे-धीमे महादेव के मन्दिर में गई परन्तु वहाँ कल न पड़ी। जिस देवता ने उसकी यह दशा की अब उससे और अधिक क्या कहे?

थोड़ी देर पश्चात् खोजता-खोजता मणिभद्र आया।

'देवी! रात बहुत हो गई, अब सो जाइए, नहीं तो शरीर अस्वस्थ हो जाएगा।

'अच्छा, भाई!' बड़ी कठिनाई से उसने उत्तर दिया। 'आँबड़ मेहता सो गए?'

'नहीं। वह तो देवा की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। वह भी बहुत बेकल हैं।'

'देवा अभी तक नहीं आया?'

'नहीं।'

'क्यों क्या हो गया ?'

'नीचे पहरा बहुत कठोर है इसीसे विलंब हो गया होगा। किन्तु देवा बहुत चतुर है, काम करके ही रहेगा।'

'ओर उस नेरा को क्या दशा है ? मैंने उसे देखा ही नहीं है।'

'देवी ! उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'

'क्यों ?'

'गम्भीर पेचिश हो गई है घड़ी-दो-घड़ी का अतिथि है।'

'अरेरे !—और वह बेचारी गंगली......।'

'वह तो सुखी हो जायगी। अब आप नीचे चलिये और तनिक विश्राम कीजिये।'

'चलो, मैं आंबड़ महेता को देख लूँ।' कहकर मंजरी होंठ दबाकर आगे बढ़ी।' एकाएक उसके पेट में शूल उठा और वह बैठ गयी। मणि-भद्र उसकी सहायता को दौड़ा।

'कुछ नहीं।' हाँपती हुई मंजरी मणिभद्र को विश्वास दिलाने के लिए क्षीण हंसी हंसकर बोली, 'सभी ने मुझे फूल की तरह रखा है, तो परिणाम ऐसा तो होगा ही।'

कुछ देर पश्चात् होंठ दबाकर वह कोट का सहारा लेकर सीधी खड़ी हो गई और मणिभद्र का सहारा लेकर द्वार की ओर चली।

द्वार के सामने हाथ से पेट को दबाए हुये उदा महेता का सुकुमार कुंकर पाटण के गौरव की रक्षा कर रहा था। वह खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि अपने पिता की सलाह मानकर उसने अपने भाई के समान एकाहार किये होते तो आज यह दशा न होती। सम्पूर्ण जीवन आनंद में व्यतीत करने के कारण भूख बहुत पीड़ा पहुंचा रही थी।

'भाई ! कैसे हो ?' बड़ी कठिनाई से मंदरी के शुष्क कंठ से स्वर निकला।

'अच्छा हूँ।' पेट से हाथ हटाते हुए आंबड़ बोला, 'अब आप जाकर सो जाइए।'

'देवा के लौट आने पर सो जाऊंगी।'

'उसे तो अभी विलम्ब होगा। तनिक लेट तो जाइये।'

मंजरी जानती थी कि उससे और अधिक नहीं बैठा जायगा इसलिए वह बोली, 'अच्छा, देवा आ जाए तो मुझे सूचित करना।'

'अच्छा बहन।'

चन्द्रमा की चांदनी में मणिभद्र के हाथ पर हाथ रखकर जैसे-तैसे चल रही सुकुमार सुन्दरी की ओर आँबड़ स्नेह-भरी दृष्टि से देखने लगा। 'बेचारी की कैसी दशा हो गई हैं उसकी सहायता करने जितनी शक्ति हो यदि प्रभु दे देता तो!' दुःखी अवस्था में भी उसे साहस का संचार हुआ। सम्पूर्ण विश्व में वह और यह निःसहायावस्था में एक साथ मिले हैं। यह निःसहायावस्था न होती तो मिलते कैसे?'

जैसे ही मंजरी जाकर लेटी उसे नींद लग गई। किन्तु थोड़ी ही देर बाद वह फिर जाग पड़ी। द्वार के सामने कोई बात करता-सा लगा बच्चों का क्या हुआ? वह एकदम उठी, साड़ी ओढ़ी और नीचे उतर कर जितना शीघ्र बन सका द्वार की ओर गई।

देवा भूमि पर छटपटा रहा था और मशाल जलाकर उसकी ओर देख रहा था। मंजरी का हृदय धड़का। वह दौड़कर पहुँची।

'क्या है?'

'कुछ नहीं देवी!' कठिनता से देवा बोला 'कीका-भाई और बहन और गंगली सुरक्षित पहुँच गये हैं। चौकी पार करली है, किंतु मैंने कहा नहीं था।' वह साँस बिलकुल नहीं ले पा रहा था और उसके मुंह से झाग आ रहे थे। उसके गले में एक तीर लगा था। उसका पिछला भाग दिखाई दे रहा था।

'किन्तु तुझे यह क्या लगा है भाई?'

'देवी!—मैं लौट रहा था। झाड़ी में कुछ खड़खड़ हुआ और किसी

चौकीदार ने तीर मारा। मैंने कहा नहीं था—मेरी झोंपड़ी पर यों-ही उल्लू नहीं बोलता।' देवा ने गर्दन हिलाते हुए कहा। उससे स्पष्ट बोला नहीं जा रहा था और उसकी जिह्वा अटकी-अटकी पड़ती थी।

'देवा!' आंबड़ बोला, 'तीर निकाल लूं?'

'नहीं बापू नहीं।' गर्दन को एक ओर लुढ़काते हुए देवा ने कहा, अन्दर घुस गया है। निकालोगे तो समय तो आ ही गया है। अभी नहीं। ओह—देवी—देवी—भाई आवे तो कहना—कि—देवा ने भूल-कर —को—को—ठार फेंक दिया। मेरे भाई! भाई।' वृद्ध की आँखें पत्थराने लगीं। मंजरी उसके निकट जाकर बैठ गई और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। थोड़ी देर पश्चात् वृद्ध की मूर्छा कुछ दूर हुई। उसने आंखें फाड़कर मंजरी की ओर देखा।

'देवी! 'कीका···भाई' सुरक्षित है। सोए···हुए थे। किसी ने नहीं देखा। देवी! भाई—ओ भाई—देवी—!' उसने गले पर हाथ रखा। 'पानी!' उसकी आंखें फिरने लगीं। मणिभद्र दौड़कर पानी लाया और मंजरी ने अंजुली से देवा के मुंह में पानी डाला। 'देवी··· भोलानाथ···भला करे। जाइए···आ···प जाइए। आप को यह नहीं देखना चाहिये। हर···भोलानाथ।'

'तू घबरा मत,' मंजरी ने कहा। 'कुछ दवाई लाऊं।'

'देवी—देवी! दवा···क्या···काम···जाइए···आप जाइए।' वृद्ध ने चिढ़कर कहा, 'आप···जाइए···नहीं देखा जायगा।'

मंजरी वृद्ध का मन रखने के लिए उसे मणिभद्र को सौंपकर उठ खड़ी हुई।

'जा···इए·········दे·········वी·········।' कहकर उसने फिर अपना गला पकड़ा।

मंजरी के चले जाने पर देवा ने तीर निकालने के लिए कहा। आँबड़ ने धीरे-से खींच लिया; घाव में से वेग से रक्त बह निकला। वृद्ध का सिर मणिभद्र के हाथों में लुढ़क गया। उसके गले में थोड़ी देर

तक घरघराहट हुई, फिर आंखें फट गईं, और उसके प्राण निकल गए।

'हर-हर शंभो' मणिभद्र ने कहा, 'यमराज फिर आ पहुंचा है।'

आँबड पीला पड़ गया था। उसने कल्पना भी न की थी कि इतनी विडंबना, इतने दुःख, और इतने संकट का सामना करना पड़ेगा। परन्तु आपत्ति के समय में भी आत्मबल स्थिर रखा।

'मणिभद्र ! जो पार्श्वनाथ भगवान् करें वही ठीक। इसे चलकर अभी ही जला दे।'

'भाई, उसकी भी तो ऐसी ही दशा है।'

'किसकी ? नेरा की ?'

'हाँ।' दोनों चुपचाप जिसमें नेरा पड़ा था उस झोंपड़ी में गये।

दोनों जाकर झोंपड़ी के द्वार के सामने खड़े हो गए, अन्दर से आती हुई दुर्गन्ध असहनीय थी। यम के सान्निध्य से वह दोनों अपने दुःख को भूल गए परन्तु त्रास से उनके हृदय बैठ गये। एक ही दिन में उनका जीवन-स्रोत वे अन्त की ओर प्रवाहित होने लग गया था।

आधी घड़ी में नेरा का श्वास बन्द हो गया।

'तुम उस ओर लकड़ियाँ चुनो तब तक मैं इसे स्नान करा दूँ। इसके पश्चात् दोनों को चिता पर रख देंगे; मणिभद्र ने कहा।'

आंबड़ महेता चुपचाप काम में लग गया। उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया था। जो जीवन-भर उस पर नहीं बीता वह एक दिन में बीत गया।

मणिभद्र कुएं से पानी ले आया और जैसे-तैसे करके नेरा के गन्दे शव को पानी से धोया। आँबड़ महेता के आने पर दोनों ने उसके शव को चिता पर रखा, देवा के शव को भी लाकर चिता पर रख दिया।

मणिभद्र ने कुछ मन्त्र पढ़ कर चिता को अग्नि स्पर्श दिया।

मणिभद्र से आंबड़ बोला, 'मुझे चक्कर आ रहे हैं। मैं जाता हूँ। मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता।'

'जाओ ! सो जाओ। लकड़ियां थोड़ी जलने लग जायें तो मैं भी आता हूं।'

'मैं देवी के निवास-स्थान के नीचे के कमरे में बैठा हूँ। मुझे देवी से दूर होना अच्छा नहीं लगता। उनका भी जी अच्छा नहीं है।' जैसे-तैसे चलते हुए आँबड़ बोला।

'हाँ, यही ठीक है।'

मणिभद्र का शरीर परिश्रम, व्रत और उपवास से पुष्ट था। निर्बलता को छोड़ इस समय और किसी बात का अनुभव नहीं हो रहा था। किन्तु अभी-अभी के परिश्रम से वह भी अधिक थकन अनुभव कर रहा था।

कुछ देर तक वह चिता की ओर देखता रहा, अग्नि ठीक प्रकार से जलती देखकर वह जाने के लिए उठा। 'चलो जीव ! अब और ठहरने से क्या होगा ? हर भोलानाथ ! जाने किस नक्षत्र में भृगुकच्छ आया। उस पर से सामने यति मिल गया था। सो सत्यानाश तो निश्चित था ?'

देवा के भाग्य में नेरा का साथ लिखा था।

## ३८

मंजरी अपने वास स्थान पर आई। मणिभद्र का उच्चारण 'हर-हर शंभो' सुना और कांप उठी। देवा मर गया, नेरा मरने को पड़ा था, कल किसकी बारी होगी ? मणिभद्र की, आँबड़ की या उसकी ?

उसने बिस्तर पर लेटकर कानों पर हाथ रख लिए। 'ओ: !' इस जीवलेवा समय में उसे रोने की भी इच्छा न हुई। उसे सोना भी अच्छा न लगा। वह उठ बैठी। खिड़की में खड़ी रही। नदी की ओर देखने लगी।

'माँ ! माँ ! तू सुनती क्यों नहीं ? यह क्या कर रही है ? हमारा क्या होने को है ? मेरे दुर्गपाल कहाँ ! मैं कहाँ ! बच्चे कहाँ ! दुर्गपाल ! नाथ ! तुम भी कैसे निर्दयी हो गए ? तुम कहां चले गए ? तुम्हें क्या हो गया है ! जयसिंहदेव ने मरवा दिया ?' उसके धड़कते हुए हृदय में नया धक्का लगा, 'नहीं, नहीं, किसकी मजाल कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके।'

'किन्तु मैं किधर जाऊँ ? नाथ ! नाथ ! तुम मुझे क्यों छोड़ गए ? तुम निकट होते तो मरना भी सुहाती। तुम्हारी गोद में सिर रखकर तो मरती......।'

वह बोल न सकी। उसका जी भर आया। वह उठ बैठी और मुंह ढककर रोने लगी। 'मेरे नाथ—मेरे—स्वामी—।' को छोड़ और कोई शब्द नहीं निकल रहा था।

वह देर तक रोती रही और पागल की भांति बोलने लगी। धीरे-धीरे रोने का वेग कम हुआ, अब वह क्रन्दन करने लगी, 'नाथ ! नाथ ! यह क्या कर रहे हो ?'

हे नाथ ! हे महाराज ! हे स्वामी ! आप मुझे त्याग क्यों रहे हैं? मैं मारी गई—मेरा नाश हो गया—निर्जन वन में मैं डर गई हूँ। हे महाराज ! आप तो धर्मज्ञ और सत्यवक्ता हैं।

उसका स्वर भंग हो गया और सिसकते-सिसकते वह मूर्छित हो गई।

सारी रात वह ऐसी ही निर्बल अवस्था में पड़ी रही। नर्मदा के जल से शीतल होकर प्रभात का मन्द-मन्द पवन जब बहने लगा तो वह जागी। जागते ही वह उठ बैठी।

आज उसका शरीर टूट रहा था, सिर फटा जा रहा था। रगों में रक्त इतने वेग से प्रवाहित हो रहा था जैसे उसे ज्वर हो। पछले दिन की घटनाओं का स्मरण हो आने पर उसके क्षीण होंठ बन्द हो गए और निस्तेज आँखों में तेज आ गया।

मैं रोई, मैंने क्रन्दन किया। बच्चों को भेजते समय साधारण स्त्री की भाँति मेरी छाती फट गई।' उसे अपने प्रति तिरस्कार हो आया। 'मैं दीन बन गई, असहाय हो गई। मैंने तुम्हें दोष दिया—मैंने अपने नाथ को दोष दिया ? मुझे हो क्या गया ? अपने नाथ को मैंने अविचारी, घातकी नल की पंक्ति में रख दिया ? मुझे यह क्या हो गया ? उसकी भवें खिंचकर निकट आ गईं। 'मेरी निर्बलता, मेरी अधो अधोगति की सीमा पार गई है। मुझसे तो आँबड़ और बेचारा मणिभद्र ही अच्छे। उन्होंने अब तक आँख से एक आँसू तक न गिरने दिया।

नाथ ! तुमने मुझ अधम पर क्यों विश्वास किया ? तुम वीर हो तो मुझे वीरांगना समझ बैठे। मैं तो इस प्रकार रो रही हूँ। मेरे वीर ! क्षमा करो। मुझे नहीं मालूम था कि कवि-कुल-शिरोमणि की कन्या और तुम्हारी पत्नी इस प्रकार निर्बल हो जायगी।'

'नाथ ! क्षमा करो ! अब ऐसी निर्बलता नहीं दिखाऊँगी। संसार से मेरा क्या सम्बन्ध ? मुझे जीवन और मृत्यु से क्या ? तुम और मैं—एक दूसरे के—अमर वीरता के दो प्रतीक। जहाँ हो वहाँ देव ! विजयी होना, जीवन में और मृत्यु में—मैं तुम्हारी दासी—मैं भी विजयी ही होऊँगी। मुझे न शत्रु का डर और न यम का......।'

वह उठी, केश सँवारे। ओढ़नी ठीक की। नीचे उतरना सहज नहीं था क्योंकि उसके पांव स्थिर न रह पाते थे, फिर भी जैसे-तैसे करके वह उतरी।

क्षमता न होते हुए भी वह दृढ़ता से डग भरती हुई रसोईघर की ओर गई। वहाँ आंबड़ और मणिभद्र बैठे-बैठे बातें कर रहे थे। मंजरी को देखकर वह चौंके।

वह एक दिन और रात में उसकी श्वेत त्वचा संगमरमर से भी अधिक श्वेत हो गई थी। केवल उसके मुख पर तेज की लाली तनिक दिखाई दे रही थी। उसकी आंखों के आस-पास काली रेखाएं पड़ गई थीं। उसकी पागल की-सी आंखें अपार्थिव तेज से जल रही थीं। वह

सावधानी से, किन्तु महाकठिनाई से आगे बढ़ रही थी। वह तेजस्वी, सुन्दर, और मदमाती मंजरी की परछाईं मात्र ही तो रह गई थी।

'देवी कैसी हैं ?' आंबड़ दौड़कर आगे आया।

'अच्छी हूं, भाई !' उसके उच्चारण से लगता था कि वह वाणी में स्थिरता लाने की पूरी शक्ति से प्रयत्न कर रही है।

'बैठिये, देवी !' कहकर मणिभद्र ने आसन दिया। मंजरी ओढ़नी सिमटाकर धीरे-से बैठ गई।

'नेरा कैसा है ?'

'उसने भी देह छोड़ दी।'

'दोनों का अग्निदाह किया ?'

'हाँ।'

मंजरी कृत्रिम हास्य कर बोली, 'हम आठ थे, उनमें से तीन बच गये हैं।'

'देवी ! हम एक विचार कर रहे थे।' आँबड़ ने खंखार कर कहा।

'क्या ?'

'दो दिवस में खाद्य तो चुक जायगा। कुछ दिनों में हम भी इन दो के पथ का अनुसरण करेंगे : फिर भी तो गढ़ गिरेगा ही।'

मंजरी कुछ बोली नहीं।

'इससे तो यहाँ से बच निकलने का प्रयत्न करें तो कैसा रहे ? आँबड़ ने पूछा।

मंजरी विस्मत हो गई। उसकी विशाल आँखों में तिरस्कार प्रकट हुआ और उसके हाथ काँप उठे।

'आँबड़ भाई ! तुम मणिभद्र और जहाँ जाना हो जा सकते हो। वह तिरस्कार से बोली। परन्तु याद रहे मणिभद्र को तो भीख माँगकर जीवन यापन करना है, तुम्हारा क्या होगा ? उदा महेता के पुत्र को मृत्यु पर्यन्त लज्जित होकर जीना होगा।' बोल-बोलते मंजरी का श्वास चढ़ गया इसलिए वह कुछ ठहर गई।

'किन्तु देवी, यहाँ रहने में कोई लाभ भी तो नहीं दीख पड़ता।' डरते-डरते आँबड़ ने कहा।

'लाभ !' तनिक खाँसकर मंजरी कहने लगी। उसकी निर्बल वाणी में तेज और संस्कार प्रतिध्वनित हो रहे थे। 'भाग जाओगे तो लाभ होगा। स्त्री मिलेगी, पिता की सम्पति मिलेगी, चाटुकार महान् भी कहेंगे किन्तु अकेले हाथ भृगुकच्छ का गढ़ टिका रहने का यश नहीं मिलेगा। कहीं शत्रुओं के हाथ में पड़ कर मरे तो माँ की कोख लजाओगें। और यहाँ—'मंजरीं पुनः खाँस उठी, 'और यहाँ···म···रोगे तो···जब तक एक भी गुजराती रहेगा वहाँ 'तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी।'

'देवी ! किन्तु इस प्रकार जीवन नष्ट कर देना—' मणिभद्र कहने लगा।

'भाई !' कठोरता से मंजरी ने कहा, 'जीवन और मृत्यु कायर के लिए होते हैं, किन्तु वीर के लिए तो केवल कीर्ति ही होती है।'

'किन्तु देवी !' आँबड़ ने कहा, 'आपका स्वास्थ्य भी तो ठीक नहीं है। गढ़ का जो होना होगा सो होगा किन्तु यदि आप को कहीं कुछ हो गया तो दुर्गपाल और हम संसार को क्या मुंह दिखायेंगे ?'

'महेता ! मंजरी ने कहा, 'कल तो मैं पागल हो गई थी। तुम्हें प्राण रक्षा करनी है तो प्रसन्नता से जाओ। किन्तु मैं—जब तक दुर्गपाल न आ जायं या गढ न गिर जाय तब तक—जीते जी यहाँ से नहीं टलूंगी।' कुछ देर तक वह चुप रही। फिर बोली, जीवन क्या, और मृत्यु क्या ? मैं—शेषनाग को मात करने वाले महारथी की अर्धांगिनी हूं।' उसकी आंखें चौड़ी हो गईं। मैं तो यहीं रहूँगी, यहीं अपने दुर्गपाल की प्रतीक्षा करूंगी। मर जाऊंगी तो मृत्यु में भी अपने प्रचण्ड वीर का वामांग···उस गढ़ पर···उनको कीर्ति के समान ज्वलंत और अडिग···।' उससे वाक्य पूरा न हो सका, खांसी आगई। जैसे तैसे खाँसी रोककर उसने ओढ़नी के आंचल से मुंह पोंछा तो ओढ़नी पर रक्त दिखाई दिया। उस के नथुने फट रहे थे।

'देवी ! मुंह में से रक्त निकला है।' मणिभद्र ने कहा।

'मुझे थोड़ा जल दे।'

मणिभद्र ने जल दिया।

'मैं अपने कक्ष में जाऊँगी। मुझे सहारा दे। मुझे चक्कर आ रहे हैं।'

मणिभद्र मंजरी का हाथ पकड़कर ले गया और बिस्तर पर लिटा दिया। वह और आँबड़ अपना दुःख भूल कर मंजरी की टहल में लग गए। दोनों के हृदय में चिंता थी। दोनों को लगा कि मणिभद्र के कहने के अनुसार सचमुच यमराज का फिर आगमन हुआ।

मंजरी को ज्वर चढ़ने लगा, थोड़ी ही देर पश्चात् उसे सन्निपात सा होने लगा मणिभद्र और आंबड़ ने बारी-बारी से वहीं बैठने का नश्चय किया।

मंजरी कुछ देर तक तो मौन पड़ी रही और फिर कुछ देर तक अस्पष्ट रूप से बड़बड़ाने लगती। प्रलाप में भी अधिकतर वह काक ही को सम्बोधित करती। मणिभद्र आग जलाकर मंजरी के लिये खिचड़ी बना लाया और थोड़ी-थोड़ी करके उसके गले उतारी, किन्तु थोड़े ही समय बाद उसने उलटी कर दी।

'मणिभद्र ! अपना समय आ गया।' आंबड़ ने कहा।

'भाई ! मैंने तो देवी की रक्षा करने की योजना करली है। पन्द्रह वर्ष पहले जब देवी को देखा था तब से इनकी सेवा में प्राण अर्पण कर देने का निश्चय किया था। आज मेरा वह निश्चय सफल हुआ।'

'पन्द्रह वर्ष पहले ?'

'हां। मेरे गुरू इनके दादा होते हैं। इतने वर्ष तो जैसे तैसे काट दिए और अन्त में भाग्य में यही था तो यहां आ पहुंचा। हर-हर-महा-देव।' बोलते-बोलते मणिभद्र सिसक उठा।

'सच बात है भाई !' स्नेह से मणिभद्र के पांव पर हाथ रखते हुए आंबड़ बोला, यह कोई स्त्री नहीं है ! देवी हैं !' मंजरी के लिए उसके पास और कोई शब्द नहीं था।

आंबड़ की आंखें सजल हो गई। मणिभद्र ने सहानुभूति से उसका हाथ दबा दिय। पाटण के धनाढ्य मंत्री के अविचारी कुंअरी और जूनागढ़ के भटकते हुए ब्राह्मण को इस देवी की भक्ति में मातृ भाव का अनुभव हो रहा था। भक्ति की पात्र अचेत होकर अपन दूरवासी पति का नाम रट रही थी।

दोपहर के पश्चात् थोड़ी देर तक मजरी शांत और निश्चेष्ट पड़ी रही। रह-रहकर उसे खांसी आती थी, दोनों टहल करने वालों की चिंता भी बढ़ रही थी।

'संध्या को मंजरी का ज्वर उतर गया और उसने आँखें खोली।

'आए ?' उसने पूछा।'

मणिभद्र और आंबड़ ने एक दूसरे को देखा। 'अभी आते हैं।' मणिभद्र ने कहा।

मंजरी ने फिर आंखें मींच लीं। मणिभद्र फिर खिचड़ी बना लाया और मंजरी को पिलाने का प्रयत्न किया किन्तु वह टिकी नहीं। तीव्र ज्वर और उन्मादी कल्पना के पंखों पर चढ़कर मंजरी सन्निपात की सृष्टि में विचरण कर रही थी। वह केवल काक का नाम रट रही थी। सृष्टि में वह एक ही मूर्ति की खोज कर रही थो। उसने त्रिभुवन खोज डाले किन्तु उसका दुर्गपाल न मिला। वेग बढ़ा, अधीरता बढ़ी किन्तु उसके दुर्गपाल का पता नहीं मिला। 'नाथ! नाथ!' वह इतना ही बोलती रही।

रक्तिम ज्वाला से भयानक बने अंधकारमय प्रदेश में त्रस्त हृदय से उसने प्रवेश किया। कोई उसे खींचे लिए जा रहा था।' 'मेरे नाथ!' चीखी। एकाएक न जाने कहां से एक प्रचण्ड स्वरूप उसकी अंगार-भरी आंखों ने देखा। वह काला था। उसका मुख कुछ-कुछ देवा के मुख से मिलता जुलता था। उसकी आंखों में रक्त था, मुंह पर कठोरता थी। मंजरी कांप उठी। 'नाथ!' उसने उड़कर जाते-से स्वर में कहा।

चारों ओर अंधकार था। मध्य में निरंतर विकराल होता हुआ

वह स्वरूप निकट आता जा रहा था। उसने मंजरी को आने का संकेत किया, आंख से या हाथ से,यह नहीं दीख पड़ा।

मंजरी को क्रोध आया—ऐसा क्रोध आया कि उसका श्वास रुद्ध-सा होता लगा। 'मेरे नाथ की आज्ञा बिना तू मुझे बुलाने वाला कौन है!' वह स्वरूप और भयंकर हो उठा। मंजरी गर्व से हंस दी—वह तो शेष और भैरव को हराने वाले काक की अर्धांगिनी थी। 'मेरे नाथ की आज्ञा!' 'नाथ की आज्ञा' की भयंकर ध्वनि भुवनत्रय में गूंज उठी। उस अन्धकार के त्रासादायक वातावरण में से—मानो विनष्ट होती हुई सृष्टि के गर्जन में से, पल-पल सर्व-व्यापी होते हुए उस भयंकर स्वरूप के विशाल होते मुख में से प्रचण्ड, सर्वग्राही प्रतिध्वनि हुई, 'नाथ की आज्ञा।' और ब्राह्मण-श्रेष्ठ पितरों के तपोबल के प्रभाव से, अपने दुर्धर्ष और दुर्जय, प्रतापी वीर की अडिगता से, अपने गगनचुम्बी गर्व के गौरव से अनुप्राणित हृदय और रगों ने उसे उत्तर दिया, 'नाथ की आज्ञा!'

एकाएक मंजरी शीघ्रता से उठ बैठी। 'यह ले आई।' उसने चारों ओर देखकर कहा, 'नाथ, कहां हो ?' उसकी आंखें फट गई थीं। 'नाथ!' कहकर उसने ओढ़नी संभाली और उठकर सीढ़ियां उतरने लगी।

आंबड़ महेता के पेट में पीड़ा हो रही थी अतः वह वहाँ नहीं था, मणिभद्र एक कोने में बैठा था। थोड़ी देर हुई, उसे झपकी आ गई थी मंजरी को सीढ़ियां उतरते देखकर वह चौंका। 'देवी! देवी!'

'आज्ञा ले आती हूँ।' कहकर मंजरी शीघ्रता से नीचे उतर कर बाहर निकली।

'किसकी ?' मणिभद्र हांपता-हांपता उसके पीछे दौड़ा। वह बिलकुल घबरा गया था।

'मेरे—नाथ······।'

आगे मंजरी और पीछे मणिभद्र—इस तरह चले जा रहे थे। मंजरी शववत् किन्तु दृढ़ता से शीघ्रगति से चली जा रही थी। उसकी

विक्षिप्त-सी आंखें गढ़ के पश्चिमी कंगूरों पर टिकी हुई थीं।

'देवी ! देवी !' डरकर मणिभद्र बोला। उसे धरती डोलती-सी लगी

मंजरी ने उत्तर नहीं दिया।

'नाथ ! ओ नाथ !' मंजरी बड़बड़ाने। पश्चिमी कंगूरे तक पहुंचने से पहले ही वह लड़खड़ा कर गिर पड़ी, और मणिभद्र उसे संभाले उससे पहले ही वह पत्थर पर गिर पड़ी। मणिभद्र उसके निकट जा बैठा। मंजरी अचेत पड़ी थी और उसके मांथे से रक्त बह रहा था।

मणिभद्र घबरा गया। उसने आंबड़ महेता को पुकारने के लिए ऊपर देखा।

थोड़ी दूर पर धरती ऊपर उठी और उसमें से धीरे-धीरे देवा नायक का प्रेत हाथ में मशाल लेकर ऊपर उठता हुआ दिखाई पड़ा।

बेचारे ब्राह्मण का कलेजा मुंह को आ गया। वह सिर पर पांव रखकर भागा। 'ओ बाप रे !' की चीत्कार गले में ही अटक गई।

## ३९

काक ने यथाशक्ति शीघ्रता से लाट का मार्ग पकड़ा। सोरठ की एक घड़ी में योजन चलने वाली साँडनियों ने भी ऐसा उतावला सवार पहले कभी नहीं देखा था। धूप में संध्या की शान्ति में चन्द्रमा से शोभित रात्रि में भी यह सवार आगे बढ़ा जा रहा था। वह स्वयं थकता नहीं था और दूसरों के थकने की उसे चिन्ता थी।

वह थोड़े समय में खा-पी लेता और चलती हुई साँडनी पर ही सो जाता पर व्यग्रता कम नहीं होती थी।

आखिर वह लाट पहुंचा। दामा नायक, सामन्त, कावा, मल्लाह और उसके दूसरे मल्लाह साथी वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे।

उन्होंने जहाज भी तैयार रखा था। मुंजाल महेता का आज्ञा-पत्र लेकर काक सोमनाथ पाटण के दुर्गपाल से मिला और तुरन्त जहाज पा लिया।

काल जैसा भयंकर, मौन और गम्भीर—मात्र एक शब्द से या आँखों की पलकों के संकेत से वह आदेश देता। उसके आदमियों को उसकी यह गम्भीरता समझ में नहीं आई। फिर भी उसका उन पर प्रभाव पड़ा। जैसे समुद्र के पानी पर क्रोध उतारा जा रहा हो इस प्रकार अधीरता से और आतुरता से वह जहाज लेने में योग देता था।

नदी के मुहाने पर लखी गाँव में रेवापाल का थाना होना चाहिये यह सोचकर काक ने जहाज समुद्र में ही रहने दिया और आधी रात के बाद वह, दामा और सामन्त तैर कर नदी में आये। कावा मल्लाह अपने तीन मल्लाहों के साथ एक डोंगी में बैठकर चुपचाप पीछे आया और लखी गाँव से बचकर काक, दामा और सामन्त को उसमें ले लिया। काक के कहे अनुसार डोंगी में पन्द्रह दिन के वास्ते भोजन सामग्री, कुदाली, फावड़ा और बेलचा आदि रख लिए गए थे।

लखी गाँव से भाड़भूत तक की यात्रा बड़ी कठिन रही। इसके किनारे पर वह नहीं उतर सकते थे, साथ ही सामने आने वाली डोंगी पास आकर उनको देख न ले यह भी सदा ध्यान में रखना पड़ता था। ज्वार और भाटे के समय भी उनको नाव साधनी पड़ती थी चाँदनी रात थी, इसलिए कहीं ऐसा न हो कि कोई देख ले, यह भी ध्यान रखना पड़ता था और बहुधा नजर बचाने के लिए दूसरे किनारे से डोंगी ले जाना पड़ता था। काक अधीर हो उठा था, परन्तु उसकी सावधानी में कोई कमी न आई थी। रात और दिन एक से ही गिनने पड़ते और जैसे-जैसे समय बीतता जाता था वैसे-वैसे उसकी चिन्ता बढ़ती जाती थी।

किसी तरह वह भाड़भूत पहुँचे। उसके और भड़ौंच के बीच बहुत से छोटे-छोटे गाँव थे इसलिए किसी का ध्यान उस ओर आकर्षित किये

बिना वह किनारे-किनारे अपनी यात्रा पूरी कर रहे थे।

कृष्णपक्ष शुरू हो गया था, इसलिए संध्या होने के बाद अंधकार का लाभ उठाकर वह कोट के नीचे आ पहुँचे। कोट के पश्चिम के कोने के नीचे पत्थर पर वह और दामा उतरे, और डोंगी घुमाकर सब देख-भाल कर आये। सर्वत्र शान्ति और निर्जनता थी। चन्द्रमा उदय हो रहा था।

यह विशाल दीवार किस प्रकार पार की जा सकेगी यह किसी की समझ में नहीं आया, काक को यह चिन्ता न थी। समय आने पर गढ़ में से भाग निकलने के बहुत से गुप्त मार्ग उसने बनवाये थे। उसमें से एक रास्ता पश्चिमी कोने के नीचे नदी पर निकलता था। इस रास्ते की जानकारी, सोमेश्वर, देवा और उसे इन तीन आदमियों को ही थी। जिस रास्ते से बाहर निकला जा सकता था उससे अन्दर कैसे जाया जा सकता है?

काक ने यहाँ पहुंचने का आशय सबसे बतला दिया था। एक मल्लाह डोंगी में बैठा रहा, और बाकी सबने कमर से अनाज बाँधा और हाथ में एक-एक बेलचा अथवा गदाली ले ली।

काक ने ध्यान से देखा और काले पत्थरों के नीचे गुप्त मार्ग की स्थिति जान ली। उसने गोह को तुरन्त ऊपर फेंका और वहाँ जमा दिया उसने सब आदमियों को दूर खिसक कर खड़े रहने के लिए कहा और गोह से बँधी हुई रस्सी पकड़ कर वह ऊपर चढ़ गया और बड़ी कठिनाई से एक मोखे में पैर रखकर किले में उगे हुए एक पेड़ की टहनी पकड़ कर खड़ा रहा। मोखा छोटा दिखाई दे इसलिए उसमें एक बड़ा पत्थर नाममात्र के लिए फँसा हुआ था, अपने बेलचे से उसने उसे ढीला किया और सावधानी के लिए हुँकार करके उसी औजार से उसे नीचे ढकेल दिया पत्थर पानी में गिरा। काक ने नीचे खड़े हुए आदमियों से ऊपर आने के लिए कहा और बढ़ी हुई सुरंग में घुस पड़े।

काक ने सुरंग में जाकर मशाल जलाई, सुरंग में रहने वाले सांप चमगादड़ पक्षी भय से चारों ओर भागने लगे। भयानक चीं-चीं करती हुई चमगादड़ें गोल-गोल चक्कर लगाने लगीं। धीरे-धीरे सब आदमी ऊपर सो गये, और जीव-जन्तुओं को कुचलते हुए चलने लगे। काक की दृष्टि संचेष्ट और भौंहें सिकुड़ गई थीं और डग स्थिरता से पड़ रहे थे। जैसे वह साकार भूतनाथ भैरव हो, ऐसा दिखाई दे रहा। वातावरण प्रेतलोक से भी अधिक भयानक लग रहा था। काक के अनुयायियों का जी घबराने लगा।

सुरंग में चलते-चलते सीढ़ियाँ आईं। सीढ़ियों की खिड़की पर पत्थर ढँका हुआ था, वह ऊपर से हटाया जा सकता था। बेलचा और कुदाली की मदद से सब इस पत्थर को हटाने में लग गये। थोड़ी देर बाद पत्थर ढीला हो गया। एक साथ सबने जोर लगाकर उठाया। ऊपर की जमीन का पतला स्तर खिसका और पत्थर हट गया।

काक हाथ में मशाल लेकर ऊपर चढ़ा। पहले तो गढ़ का भाग निर्जन दिखाई दिया पर फिर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। एक आदमी भागा जा रहा था।

काक उसके पीछे दौड़ा और थोड़ी-सा छलाँगों में उसे पकड़ लिया।

'कौन है ?' काक ने पूछा।

मणिभद्र के होश उड़े हुए थे। काक को पहचान नहीं सका। काक ने उसका मुंह ऊपर उठाया और उसे पहचाना।

'कौन मणिभद्र ? मुझे पहचानता नहीं क्या ? भागा जा रहा है क्यों ? मैं काक हूँ।' मणिभद्र के होश ठिकाने नहीं थे, 'यह तो मैं हूँ काक। मूर्ख ! मैं भूत नहीं हूँ।'

'कौन दुर्गपाल ? पहचानकर मणिभद्र काक से चिपट पड़ा।

'हाँ, भाई हाँ, और तेरी बहन कहाँ है ?'

'उस ओर बेहोश पड़ी है। सन्निपात हो गया है।' काक को चैन पड़ा। वह ठीक समय पर आ तो पहुँचा, 'और बच्चे ?' एकदम उसी

ओर मुड़ते हुए उसने कहा।

'खाने का समान समाप्त होते ही उन्हें गौरव में छिपा दिया है।'

काक को शान्ति हुई। 'और देवा ?'

'कल देवलोक प्रयाण कर गया।'

'और दूसरा कौन है ?'

'उधर आँबड़ महेता है, भूखों मर रहा है।'

'दूसरा कोई है ?'

'और कोई नहीं।'

'दामा ! इन सबके लिए खाने की व्यवस्था कर।' कहकर काक, मंजरी के पास बैठ गया और मजरी के मुंह पर हाथ फेरा। उसका हृदय धड़क रहा था। काक ने उसके माथे से बहता हुआ रक्त पोंछा और उसे उठा लिया।

'ठहरे हुए कहाँ हो ?' काक ने पूछा।

'चलिए बताऊँ।' मणिभद्र आगे-आगे चला।

काक मंजरी को उठाकर रहने के स्थान पर ले गया। उसे बिस्तरे पर सुला दिया और उपचार करने लगा सब वहाँ से चले गये।

काक ने अपनी प्रियतमा को देखा कलेजा मुंह को आ गया। कितने दिनों से वह चिन्तित था। मंजरी से मिलने की आशा उसने छोड़ दी थी, पर आखिर वह मिल ही गई। उसने उसका सिर अपनी गोद में रखा और उसके बन्द नेत्रों की ओर देखने लगा।

ज्यों-ज्यों वह ध्यान से देखता गया त्यों-त्यों उसका मन एक महान भय से अभिभूत होता गया। मंजरी का शरीर जैसे गल गया था और उसकी त्वचा श्याम पड़ गई थी। उसके होंठ मुरझा कर कुरूप हो गये थे, उसकी आँखों के आस-पास काले दाग दिखाई दे रहे थे, फिर भी अनंत आशा उसके अंतर को धैर्य प्रदान करती रही।

उसने उसके माथे पर हाथ फेरा। उसका माथा अंगारे की तरह जल रहा था। गले की एक नस फड़क रही थी।

सहसा मंजरी ने आँखें खोलीं। उसने काक को देखा—पहचाना।

'नाथ ! नाथ ! आ पहुँचे मेरे प्रियतम !' तुरन्त ही जोर लगाकर वह उठ बैठी। आ गये ! सचमुच ! मैं होश में हूँ ? आ गये ?' उसने काक पर हाथ फेरा।

'हाँ, मैं ही हूँ। तू शांत हो जा, मैं आ पहुँचा हूं। काक ने उसे उठा कर फिर सुलाने का प्रयत्न किया।

'आ गये ? मैं जानती थी, तुमसे बिना मिले मैं मरने वाली नहीं थी। मैंने यमराज से ठीक ही कहा था कि अपने स्वामी की आज्ञा बिना नहीं आ सकती।' वह काक से लिपट गई और उन्मत्त की तरह बोलने लगी, 'दुर्गपाल ! स्वामी ! मुझे अब अंत तक छोड़ना मत। मुझे यहीं अपनी गोद में मरने देना।

'तुम स्वस्थ ही हो। कुछ नहीं होगा।'

मंजरी हँसी और काक के शरीर से लिपट गई।

'मृत्यु परीक्षा ले रही है प्रियतम ! एक घड़ी या दो घड़ी के लिए शान्ति कैसी ? नाथ ! अपना हाथ लाओ। मुझे कैसा अच्छा लग रहा है। मुझे हाथ में ले लो। मेरे पास आओ। सुधा रस बरसाती हुई चाँदनी का आनंद कब मिलेगा। अभी भी थोड़ा ही समय है।'

'हाँ, मैं ले रहा हूं।' काक ने उसे बाहों में ले लिया। उसका शरीर जल रहा था।

'आह !' मंजरी बोली, 'मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।' उसने काक के मुँह पर हाथ फेरा, 'मैंने यम को पराजित किया। नाथ ! ओ नाथ ! बोलो न ?

'हाँ, बोल रहा हूँ। सुन तू घबरा मत।

'मैं घबराती नहीं। मेरे सौभाग्य स्वामी ! बच्चे प्रसन्न हैं···भेज दिये···उन्हें देखना···मैं तो चली।' थक जाने के कारण वह थोड़ी देर

अचेत पड़ी रही ।

'नाथ ! नाथ !' फिर वह बोलने लगी, 'मुझे जाना अच्छा नहीं लगता । जाते हुए मेरे प्राण दुखी हो रहे हैं । हमारे संसार का मनोरथ कैसे पूरा होगा ? तुम्हारी कीर्ति कौन गाएगा ? थके-हारे कहाँ जाओगे ?' मंजरी को खाँसी आ गई इसलिए मुँह से खून मिले हुए झाग निकले । काक घबराया । उसने मणिभद्र को आवाज दी ।

'क्यों बुला रहे हो ? हम अकेले ही बैठेंगे । प्राण ! आप आओ, आओ न ! आवाज धीमी पड़ने लगी और वह अचेत हो गई ।

मणिभद्र लप्सी बनाकर लाया था । उसे रखने के लिए काक ने कहा और सब समाचार पूछे । मणिभद्र ने सारा इतिहास काक से कहा ।

'यह क्या आवाज हो रही है ?। काक ने पूछा । उसने मंजरी का सिर बिस्तर पर रक्खा और खिड़की से देखने लगा ।

उत्तर की ओर क्षितिज पर कुछ कोलाहल हो रहा था । वहाँ आग लग गई हो ऐसा दिखाई दिया ।

'जो भी हो !' कहकर वह फिर मंजरी के पास आ बैठा, और उसके मुँह में थोड़ा पानी डाला । ओंठ बन्दकर उसने अपनी विचार-धारा रोक दी । उसको यहाँ आना न आना एक-सा ही लगा । सहसा मंजरी ने चौंककर आँखें खोलीं ।

'मैं अपने वीर की अर्धांगिनी हूं, शेष की विजेता की पत्नी हूँ, मैं क्यों गढ़ छोड़ दूँ ?'

'मंजरी ! मंजरी !' काक ने पुकारा और उसका सिर फिर गोद में लिया । वह लप्सी मुँह में डालगे लगा पर मंजरी ने अपनी गर्दन मोड़ ली । उसकी आवाज मंजरी के कान में गई । 'मेरे नाथ !' उसने मंद स्वर में कहा, 'मैं ठीक हूँ, मुझे आज्ञा दो। आज्ञा···आ···ज्ञा स्वामी···मेरे देव आज्ञा···' वह फिर अचेत होकर गिर पड़ी और काक ने उसके मुँह में पानी डाला ।

दो-तीन घड़ी तक वह इसी प्रकार अचेत होकर पड़ी रही और

उसकी धमनियाँ धक्-धक् करती रहीं। वह पुनः जागृत हुई और बड़े ही धीमे स्वर में बोली···'कहां गये ? जा रही हूँ···तुम्हारी···हां···तुम्हारी···।'

और उसका श्वास उखड़ गया। काक ने उसे आलिंगन दिया··· चुम्बन दिया। मरती हुई प्रियतमा को हृदय में चित्रित किया। उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया।

उसके मस्तिष्क में विभिन्न भावों का तूफान मचा। फिर क्षणभर में अन्धकार छा गया। तुरन्त ही उसने कठोर प्रयत्न कर अपने मन को वश में किया। भावों के तूफान को निरंकुश होने देने का उसका स्वभाव नहीं था।

'मणिभद्र ! स्नान के लिए पानी ला।' काक ने आवाज दी परन्तु मणिभद्र के आने से पहले ही मंजरी की देह ने अन्तिम प्रयाण किया। नारी-श्रेष्ठ मंजरी का शव मात्र ही काक के हाथों में रह गया।

## ४०

काक ने उत्तर दिशा में क्षितिज पर हलचल देखी थी वह रेवापाल की सेना थी।

लाट का थोड़ा-बहुत भाग अपने अधिकार में कर विश्वामित्री के किनारे रेवापाल का सैन्य पड़ाव डाले पड़ा था। वहीं आँधी की तरह पाटण की सेना उस पर टूट पड़ी थी।

लाट में विद्रोह हो गया यह सुनकर चाँपानेव, खंभात, कर्णवती और खेटकपुर के पट्टणी लश्कर आगे बढ़ रहे थे। गोधरा के आगे वह सब मिले और नया सैन्य लेकर मुंजाल महेता के भेजे हुए सोमेश्वर और वाग्भट ने पट्टणी सेना का नायकत्व ग्रहण किया। वह अबाध गति से बढ़ते हुए, रेवापाल की छावनी खोजते हुए विश्वामित्री आ पहुंचे।

पाटण की सेना अनुभवी और व्यवस्थित थी। रेवापाल की सेना नई और अव्यवस्थित। दोनों सेनाओं के बीच तुमुल युद्ध हुआ। रेवापाल को हार हुई और उसका बहुत-सा सैन्य तितर-बितर हो गया और बहुत सा भृगुकच्छ की ओर भाग खड़ा हुआ।

सोमेश्वर और वाहड़ का ध्येय भृगुकच्छ का गढ़ था इसलिए उन्होंने रेवापाल का पीछा किया। तितर-बितर होते, इकट्ठे होते, टकराते, गिरते-पड़ते, मरते-खपते हुए रेवापाल के अनुयायी आधीरात होते-होते भृगुकच्छ में आ पहुँचे। सेना क्षीण हो गई थी और पीछे चौगुनी पट्टणी सेना बढ़ी चली आ रही थी। रेवापाल शहर में आ पहुंचा और हारे हुए लश्कर में तथा नागरिकों में घबराहट फैल गई।

रेवापाल क्या करे, उसकी समझ में नहीं आया। उसका पाटण की शक्ति की ओर ध्यान गया। उसने पद्मविजय धनुष की डोरी का टुकड़ा ब्रह्मानन्द स्वामी के पास भिजवाया। ध्रुवसेन सेनापति भगवे कपड़े उतार दे तभी लोगों में कुछ हिम्मत आ सकती थी।

वचनबद्ध ध्रुवसेन ने इच्छा के विरुद्ध छोड़ कर संन्यास त्यागा और कवच पहनकर रेवापाल की सहायता के लिए आ पहुंचा। नागरिकों में तथा हताश सैनिकों में कुछ जान आई। ध्रुवसेन और रेवापाल ने मिल कर मंत्रणा की और सवेरे भृगुकच्छ के दुर्जय गढ़ पर कब्जा कर वहां घुस बैठने का निश्चय किया।

प्रातःकाल होते ही रेवापाल तथा उसके आदमी गढ़ की ओर बढ़े। उन्होंने खाई के पास आकर ऊपर देखा, तो हृदय कांप उठा।

गढ़े में से निकल कर दो आदमी एक अरथी उठाकर ला रहे थे। पीछे चार-पांच आदमी थोड़ी दूर पर आ रहे थे। आगे वाले ने केवल एक भीगी धोती पहन रक्खी थी। सब ने उसकी ओर देखा, उसको पहचाना। जैसे बिजली गिर पड़ी हो इस प्रकार सब चौंक पड़े। जूना-गढ़ में मरा हुआ समझा गया भृगुकच्छ का दुर्गपाल अग्निवर्षा करते हुए नेत्रों से सब को भयभीत करता हुआ अर्थी उठाए गढ़ से उतरा चला

पड़े, ऐसी आवाज हुई—और लाट की स्वतन्त्रता का पुजारी निर्जीव लकड़ी की तरह जमीन पर गिर पड़ा ! लोगों में हाहाकार मच गया।

'चांडाल ! तूने मेरी स्त्री को मरने दिया—वचन का पालन नहीं किया—और उसका पूरा अग्नि-संस्कार भी नहीं करने देता !' काक ने कठोर स्वर में कहा। उसकी गर्जना भूखे सिंह की तरह त्रासदायक थी।

लोग डरकर पीछे हट गये। काक ने उनकी ओर कड़ी दृष्टि से देखा, 'तुम्हारे भृगुकच्छ की शोभा—मंजरी—गढ़ में मर गई। उसका अग्नि-संस्कार करने दो, फिर मेरा जो जी में आये सो करना।' कहकर काक ने कुल्हाड़ी फेंक दी।

मणिभद्र ने मंजरी के शव का मुंह उघाड़ा और वहां एकत्रित लोगों के हृदय उद्वेग से कांप उठे। उनमें से किसी ने पास से, किसी ने दूर से—देवी सदृश्य देदीप्यमान और सरस्वती स्वरूप, संस्कारी दुर्गपाल की पत्नी को देखा था, प्रत्येक को उसके प्रति सम्मान था। उसका तेज, उसका रूप, उसका यौवन और उसकी विद्या के संस्मरणों से उसे मृत मानना असम्भव था; फिर भी उसके शव को वहां पड़ा हुआ देखकर लोग लाट के स्वातन्त्र्य का विग्रह भूल गये और महान् खेद का अनुभव करने लगे। कितने ही आंसू पोंछने लगे और कितने ही अपनी सिसकियां नहीं रोक पाये।

काक निश्चिन्त था। उसने थोड़ी दूर खाई में पानी था वहां जाकर स्नान किया और गीले कपड़ों से फिर शव को दशाश्वमेध घाट के तीर्थ पर पहुँचाया।

लोगों ने मार्ग दे दिया और शोक, भय तथा अनिश्चितता के बीच हिचकोले खाते हुए काक के पीछे पीछे श्मशान तक गये।

एक वृद्ध वणिक पीछे से आधी मींची हुई आंखों से यह घटना देख रहा था। उसने काक को देखा, रेवापाल को गिरते हुए देखा, मरी हुई मंजरी को देखा और लोगों की प्रवृत्ति देखी। उसने हृदय पर पड़े हुए

आघात को दबा दिया। वह समझ गया कि लाट की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। उसने विचार किया, यह अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। पास खड़े हुए घोड़े पर वह सवार हुआ और और भृगुकच्छ के प्राचीर के दरवाजे की ओर गया। बन्द दरवाजे के बाहर सोमेश्वर तथा बाहड़ का लश्कर आ पहुँचा था और घेरा डालने का यत्न कर रहा था।

बूढ़े ने दरबान से दरवाजा खोलने के लिए कहा।

'क्यों ?'

'मुझे पहचानता नहीं ? मैं तेजपाल नगरसेठ हूँ, मूर्ख ! रेवापाल मेरा बेटा मारा गया। गढ़ में से आदमी लेकर काक आ पहुँचा है, बाहर पट्टणी सेना आ गई है। मरने के लिए दरवाजे बन्द रख रहे हो ?' दरबान विरोध नहीं कर सका। राजनीतिज्ञ तेजपाल को सब पहचानते थे। उसने दरवाजा खोल दिया।

तेजपाल नगरसेठ ने पट्टणी सेना के सेनापती को खोज निकाला और सोमेश्वर को देखकर रेवापाल तथा मंजरी की मृत्यु का समाचार दिया। शोकग्रस्त सोमेश्मर तथा वाग्भट सेना लेकर नगर में घुसे और थोड़े से आदमियों को नगर पर अधिकार करने का काम सौंप कर सेना के साथ दशाश्वमेघ गये।

चिता जल रही थी। हाथ में बाँस लेकर चिता को कुदेरता हुआ भयंकर काक स्थिर नेत्रों से अग्नि की ज्वाला में मृत प्रियतमा का मुख दर्शन कर रहा था !

सोमेश्वर ने शस्त्र फेंक दिये और काक के निकट खड़ा होकर चिता को अश्रुपूण नेत्रों से देखता रहा।

वाग्भट ने वहाँ बैठे हुए एक श्मशान-यात्री से आँबड़ महेता के समाचार पूछे। मणिभद्र ने जमीन पर औंधे पड़े हुए एक आदमी की ओर संकेत किया। वाग्भट वहाँ गया। गंदे कपड़ों और निस्तेज शरीरवाले, दीर्घश्वास भरते हुए निराधार प्राणी को अपने भावुक भाई के रूप में

पहचानने में उसे समय लगा ।

'भाई !' वाग्भट ने उसे पुकारा ।

रो-रो कर सूजा हुआ मुख आंबड़ ने ऊपर किया, और अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसने पूछा, 'कौन वाहड़ ?'

'भाई ! यह क्या है ?'

'वाहड़ ! अन्त में वह जीवित नहीं रही ।' दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए, आंबड़ ने कहा । वाग्भट की समझ में नहीं आया ।

'कौन ?'

'मेरी देवी, मेरी माँ !'

वाग्भट को लगा कि उसके भाई का दिमाग खराब हो गया है ।

चिता जल चुकी थी । आग बुझने लगी । अस्थियों का रेवाजी में विसर्जन हुआ और एक अक्षर बोले बिना या एक आँसू गिराये बिना काक सबके साथ श्मशान से लौट चला ।

गाँव में बात फैल गई थी, इसलिए रास्ते में विलाप करती हुई स्त्रियाँ सामने मिलीं । एक स्त्री ने दो बच्चे काक के सन्मुख कर दिए, एक बच्चे ने पुकारा—'बापू !'

काक ने दृष्टि फेरी और महाश्वेता तथा वौसरी को देखा । वह एक छलांग भरकर बच्चों के पास गया, उन्हें छाती से लगा लिया । निर्दोष बालक बाप के मिलने से गद्गद् हो उठे ।

## अन्तिम

भृगुकच्छ पर फिर कुक्कुटध्वज फहराने लगा। 'जय सोमनाथ' की घोषणा चारों ओर गरज उठी।

संवत् ११६९ की आषाढ़ सुदी प्रतिपदा की पुण्य तिथि थी। उस दिन राजाबलिविराजित, बर्बरकजिष्णु, परम भट्टारक महाराजाधिराज जयसिंहदेव वर्मा निर्धारित महोत्सव के लिए भृगुकच्छ पधारे। उस सोरठ और लाट की विजय का उत्सव था। उस दिन नर्मदा के किनारे सोमनाथ महादेव के मंदिर पर कलश चढ़ाया जाने वाला था। उस दिन जयसिंहदेव वर्मा 'त्रिभुवनगंड' की प्रतापी पदवी धारण करने वाले थे और उस महाप्रतापी नरपति के पराक्रमों की अमर कीर्ति विक्रमादित्य की कीर्ति के समान हो जाने के कारण, उस दिन से 'सिंह' नामक संवत् प्रारम्भ किया जाने वाला था।

भृगुकच्छ में आनन्द का कोलाहल मचा हुआ था। पट्टणी और लाटीय सेनाओं का ऐसा प्रभाव और उनके धनाढ्यों का आडम्बर किसी ने कभी देखा या सुना नहीं था। लोगों में आनन्द समाता नहीं था। स्त्रियाँ शृंगार कर घूम रही थीं और उनकी हंसी किसी भी तरह रोके नहीं रुकती थी।

मध्यान्ह के बाद तीन घड़ी, छत्तीस पल और बारह विपल पर कलश चढ़ाने का, पदवी धारण करने का, संवत् की स्थापना करने का शुभ मुहूर्त प्रत्येक गाँव और शहर के ज्योतिषियों ने निश्चय किया था।

नगर का एक भाग उजाड़ जैसा दीख रहा था—वह था साम्बा वृहस्पति का बाड़ा। वहाँ आदमी आते-जाते थे पर उत्साहरहित।

परन्तु वहाँ एक दिन पहले रात में पट्टणी सफेद पगड़ी पहने हुए ऊंचे कद का और वृद्ध राजपुरुष और दूसरा कीमती शाल ओढ़े हुए, इस प्रकार दो पुरुष चुपचाप आये थे। एक मुंजाल महा-आमत्य था

'क्या ?'

लजाते हुए वाग्भट को चुपचाप बैठा रहने देकर आंबड़ ने धीरे से कुछ कहा। काक के मुँह पर फीकी हँसी आई, 'वह जो गाती थी वह न ?'

'हां।'

'पर वह बात तो···।'

'भटराज ! परशुराम तुम्हारे अतिरिक्त और किसी की बात मानने वाला नहीं।' प्यारे बेटे की तरह आंबड़ ने कहा, 'और मेरा भाई कवि है, कहीं पागल हो गया तो···।'

'अच्छा, देखूंगा।'

'भटराज !' वाग्भट बोला, मैं आपका उपकार जन्म-जन्मांतर तक नहीं भूलूंगा।'

काक दोनों की ओर देखता रहा। कहाँ तो उदा मेहता और कहाँ उसके पुत्र ? उसको विधि का वैचित्र्य देखकर हँसी आई।

मध्याह्न को राजा की सवारी निकली।

महाराज की अम्बारी के पीछे महाअमात्य मुंजाल और भटराज काक भी बैठे थे।

मध्याह्नोपरान्त तीन घड़ी, छत्तीस पल और बारह विपल के मंगल मुहूर्त पर सोमनाथ भगवान को कलश चढ़ा, जयसिंहदेव ने 'त्रिभुवनगंड' की उपाधि धारण की, और सिंह संवत की स्थापना हुई। डंके-निशान गड़गड़ा उठे।

प्रतापी जयसिंहदेव महाराज की कीर्ति और समृद्धि देखकर वहाँ एकत्र हुआ गुजरात तथा लाट मुग्ध हो गया।

उधर महाराज ने पदवियों का वितरण किया।

भटराज काक सेनापति हुए, आंबड़, वाहड़, सोमेश्वर और दूसरे असंख्य वीर भटराज हुए।

सर्वत्र जयजयकार गूंज रहा था।

रात को परशुराम दंडनायक के डेरे में में एक पागल जैसी लड़की गा रही थी—

'वाहड़ महेता ने की चतुराई कि झट रिझा लिया रे!'

और पाटण के महाराजाधिराज की कीर्ति सदा सर्वदा के लिए दसों दिशाओं में फैल गई।